कर जोड़ के, जिनराज का स्मरण किया ॥ ६ ॥ इन्होंने अवतार ले, सत्य धर्म को प्रगट किया । चौथमल होवे सुखी, जिनराज का स्मरण किया ॥ ७ ॥

तर्ज़ पूर्ववत् ।

ग़ज़ल सत्संग की ।

लाखों पापी तिर गए, सत्संग के परताप से । छिन में बेड़ा पार है, सत्संग के परताप से ॥ टेर ॥ सत्संग का दरिया भरा, कोइ न्हाले इस में आनके । कटजाय तन के पाप सब, सत्संग के परताप से ॥ १ ॥ लोह का सुवर्ण बने, पारस के परसंग से । लट की भंवरी होती है, सत्संग के परताप से ॥ २ ॥ राजा परदेशी हुवा, कर खून में रहते भरे । उपदेश सुन ज्ञानी हुवा, सत्संग के परताप से ॥ ३ ॥ संयती राजा शिकारी, हिरन के मारा था तीर । राज्य तज साधू हुवा, सत्संग के परताप से ॥ ४ ॥ अर्जुन माला कारने, मनुष्य की हत्या करी । छः मास में मुक्ति गया, सत्संग के परताप से ॥ ५ ॥ एलायची एक चोर था, श्रेणिक नामा भूपति । कार्य सिद्ध उनका हुवा, सत्संग के परताप से ॥ ६ ॥ सत्संग की महिमा बडी, है दीन दुनियां बीच में । चौथमल कहे हो भला, सत्संग के परताप से ॥ ७ ॥

तर्ज़ पूर्ववत्.

गज़ल नवयुवकों की।

उठो श्रादर कस कमर, तुम धर्म की रक्षा करो। श्री वीर के तुम पुत्र होकर, गीदड़ों से क्यों डरो ॥ टेर ॥ दुर्गति पड़ते जो प्राणी, को धर्म का आधार है। यह स्वर्ग मुक्ति में रखेगा, धर्म की रक्षा करो ॥ १ ॥ धर्मी पुरुष को देख पापी, गज स्वान वत् निन्दा करे। दो सिंह मुआफिक जवाब दो, तुम धर्म की रक्षा करो ॥ २ ॥ धन को देकर तन रखो तन देकर रखो लाज को। धन लाज, तन अर्पण करो, तुम धर्म की रक्षा करो ॥ ३ ॥ माता पिता भाई, जंवाई, दोस्त फिर तो डर नहीं। प्रचार धर्म से मत हटो, तुम धर्म की रक्षा करो ॥४॥ धैर्य का धारो धनुष्य, और तीर मारो तर्क का। कुयुक्ति खंडन करो. तुम धर्म की रक्षा करो ॥ ५ ॥ धर्मसिंह मुनि, लवजी ऋषि लोकाशाह संकट सहा। धर्म को फैला दिया, तुम धर्म की रक्षा करो ॥ ६ ॥ गुरू के परसाद से, कहे चौथमल उत्साहियों। मत हटो पीछे कभी, तुम धर्म की रक्षा करो ॥ ७ ॥

तर्ज़ पूर्ववत्.

गज़ल नौजवानों के जगाने की।

अय जवानों चेतो जल्दी, करके कुछ दिखलाइयो। उठो

अब बांधो कमर तुम करके कुछ दिखलाइयो ॥ टेर ॥ किस नींद में सोते पड़े, क्या दिल में रखा सोच के, बेकार वक्त मत गमावो, करके कुछ दिखलाइयो ॥ १ ॥ यश का डंका बजा, इस भूमि को रोशन करो । ऐश में भूलो मती, तुम कर के कुछ दिखलाइयो ॥ २ ॥ हिम्मत विना दौलत नहीं दौलत विना ताकत कहां । फिर मर्द की हुर्मत कहां, करके तो कुछ दिखलाइयो ॥ ३ ॥ हिक़ारत की नज़र से, सब देखते तुम को सही । मरना तुम्हें इस से बेहतर, करके कुछ दिखलाइयो ॥ ४ ॥ जापान यूरप देश ने, कीनी तरक्की किस क़दर । वे भी तो इन्सान है, करके तो कुछ दिखलाइयो ॥५ ॥ उठर के गफ़लत का पड़दा, सुधारलो हालत सभी । इन्सान को मुश्किल नहीं, करके तो कुछ दिखलाइयो ॥ ६ ॥ जो इरादा तुम करो तो, बीच में छोडो मती । मज़बूत रहो निज कोल पर, करके तो कुछ दिखलाइयो ॥ ७ ॥ नीति, रीति, शान्ति क्षमा कर्त्तव्य में मशगूल रहो । खुद और का चाहो भला, करके तो कुछ दिखलाइयो ॥ ८ ॥ काम अपना जो बज़ाना, तो लोकों से डरना नहीं । उत्साह से बढते चलो करके तो कुछ दिखलाइयो ॥ ९ ॥ सन्तान का चाहो भला रंडी नचाना छोडदो । वृद्ध, बाल विवाह बंद करो, करके तो कुछ दिखलाइयो ॥१०॥ फिज़ूल ख़र्ची दो मिटा, मुंह फूट का काला करो । धर्म जाति की उन्नति, करके तो कुछ दिखलाइयो ॥ ११ ॥ दुनियां अ-

ब्वल सुधर जा तो दीन कोई मुश्किल नहीं। चौथमल कहे इस लिये करके तो कुछ दिखलाइयो ॥ १२ ॥

तर्ज़ पूर्ववत्।

गज़ल नेक नसीहत की।

दिल सताना नहीं रवा, यह खुदा का फरमान है। खास इबादत के लिये, पैदा हुआ इन्सान है॥ टेर॥ दिल बडी है चीज़ जहां में, खोल के देखो चशम। दिल गया तो क्या रहा, मुर्दा तो वह स्मशान हैं॥ १ ॥ जुल्म जो करता उसे, हाकिम भी यहां पर दे सज़ा। मुआफ हरगिज़ होता नहीं, कानून के दरम्यान है॥ २॥ जैसे अपनी जान को आराम तो प्यारा लगे। ऐसे गैरों को समझ तूं, क्यों बना नादान है॥ ३॥ नेकी का बदला नेक है, यह कुरान में लिखा सफा। मत बदी पर कस कमर, तूं क्यों हुआ बेईमान है॥ ४॥ बे गुफ्तगु दोजख में, गिरफ्तार तो होगा सही। नहीं गिनती है वहां पर, राजा या दीवान है॥ ५ ॥ बैठ कर तू तख्त पर गरीबों की तूं नहीं सुनी। फरिश्ते वहां पीटते, होता बड़ा हैरान है॥६॥ गले कातिल के वहां फेरायगा लेके छुरा। इन्सान होके नहीं गिनी कहो यह भी कोई जान है॥ ७॥ रहम को लाके जरा तूं, सख्त दिलको छोडदे। चौथमल कहे हो भला, जो इस तरफ कुछ ध्यान है॥ ८॥

तर्ज़ पूर्ववत् ।

ग़ज़ल क्रोध (गुस्सा) निषेध पर ।

आदत तेरी गई बिगड़, इस क्रोधके परताप से। अज़ीज़ों को बुरा लगे, इस क्रोध के परताप से ॥ टेर ॥ दुश्मन से बढ़ कर है यही, मोहब्बत तुड़ावे मिनिट में । सर्प मुआफिक डरे तुझसे, क्रोध के परताप से ॥ १ ॥ सलवट पड़े मुंह पर तुरत कम्पे मानिन्द जिन्दके । चश्म भी कैसे वने, इस क्रोध के परताप से ॥ २ ॥ जहर या फांसीको खा, पानीमेंपड़ कई मर-गये । वतन कर गये तर्क कई, इस क्रोध के परताप से ॥ ३ ॥ बाल बच्चों को भी माता क्रोध के वश फैंकदे । कुछ सूझता उसमें नहीं, इस क्रोधके परतापसे ॥ ४ ॥ चंडरुद्र आचार्यकी, मिसाल पर करिये निगाह । सर्प चंडकोसा हुवा इस क्रोध के परताप से ॥ ५॥ दिल भी काबू नहीं रहे, नुकसान कर रोता वही । धर्म कर्म भी नहीं गिने, इस क्रोध के परताप से ॥६॥ खुद जले परको जलावे विवेककी हानि करे । सूख जावे खून उसका, क्रोध के परताप से ॥ ७ ॥ जनके लिये हँसना बुरा, चिरागको जैसे हवा । क्यों इन्सान के हकमें समझ, इस क्रो-ध के परताप से ॥ ८ ॥ शैतानका फरजन्द यह और जाहिलों का दोस्त है । वदकार का चाचा लगे, इस क्रोधके परतापसे ९ ॥ इबादत फाका कसी, सब खाक में देवे मिला । दो-

जम का मुंह देखेगा, इस क्रोध के परताप से ॥ १० ॥ चा-
ण्डाल से बदतर यही, गुस्सा बड़ा हराम है । कहे चौथमल-
कब हो भला, इस क्रोध के परताप से ॥ ११ ॥

तर्ज़ पूर्ववत् ।

गज़ल गरूर (मान) निषेधपर ।

सदा यहां रहना नहीं तूं, मान करना छोडदे । शहनशाह
भी नहीं रहे तू मान करना छोडदे ॥ टेर ॥ जैसे
खिले हैं फूल गुल्शन में, अज़ीज़ों देखलो । आखिर तो
वह कुम्हलायगा, तूं मान करना छोडदे ॥ १ ॥ नूर से वे पूर
थे, लाखों उठाते हुक्म को । सो ख़ाक में वे मिल गये, तूं
मान करना छोडदे ॥ २ ॥ परशु ने क्षत्री हने, शम्भूम ने मारा
उसे । शम्भूम भी यहां नहीं रहा, तूं मान करना छोडदे ॥ ३ ॥
कंस जरासिंध को, श्री कृष्ण ने मारा सही । फिर जर्द
ने उनको हना, तूं मान करना छोडदे ॥ ४ ॥ रावण से इन्दर
दबा, लक्ष्मण ने रावण को हना । न वह रहा न वह रहा, तूं मान
करना छोडदे ॥ ५ ॥ रब्ब का हुक्म माना नहीं, अज़ाज़िल
काफिर बन गया । शैतान सब उसको कहे, तूं मान करना
छोडदे ॥ ६ ॥ गुरू के परसाद से कहे, चौथमल प्यारे सुनो ।
आजिज़ी सब में बड़ी, तूं मान करना छोडदे ॥ ७ ॥

तर्ज़ पूर्ववत् ।

ग़ज़ल दगाबाज़ी (कपट) निषेध पर ।

जीना तुझे यहां चार दिन तूं दगा करना छोडदे । पाक रख दिल को सदा तूं दगा करना छोडदे ॥ टेर ॥ दगा कहो या कपटजाल फरेब या तिरघट कहो । चीता चोर कबानवत्, तूं दगा करना छोडदे ॥ १ ॥ चलते उठते देखते, बोलते हँसते दगा । तोलने और नापने में, दगा करना छोडदे ॥ २ ॥ माता कहीं बहनें कहीं, पर नार को छलता फिरे । क्यों जाल कर ज़ाहिल बने, तूं दगा करना छोडदे ॥३॥ मर्द की औरत बने, औरत का ना पुरुष हो । लख चोरासी योनि भुगते, दगा करना छोडदे ॥ ४ ॥ दगा से आ पोतना ने, कृष्ण को लिया गोद में । नतीज़ा उसको मिला, तूं दगा करना छोडदे ॥ ५ ॥ कौरवों ने पांडवों से, दगा कर जूवा रमी । हार कौरवों की हुई, तूं दगा करना छोडदे ॥ ६ ॥ कुरान पुरान में है मना, कानून में लिखी सज़ा । महावीर का फ़रमान है, तूं दगा करना छोडदे ॥ ७ ॥ शिकारी करके दगा, जीवों की हिंसा वह करे । मंजार और बुग कपट से हो, दगा करना छोडदे ॥ ८ ॥ इज्जत में आता फ़रक, भरोसा कोई नहीं गिने । मित्रता भी टूट जाती, दगा करना छोडदे ॥ ९ ॥ ... । लेजायगा, तूं गौर कर इस पर जरा । चौथमल

कहे सरल हो, तूं दगा करना छोडदे ॥ १० ॥

तर्ज पूर्ववत् ।

गज़ल सबर (संतोष) की ।

सबर नर को आती नहीं, इस लोभ के परताप से । लाखों मनुष्य मारे गये, इस लोभ के परताप से ॥ टेर ॥ पाप का वालिद वडा, और जुल्म का सरताज़ है । वकील दोजख का वना, इस लोभ के परताप से ॥ १ ॥ अगर शहनशाह वने, सर्व मुल्क तावे में रहे । तो भी ख्वाहिश नहीं मिटे, इस लोभ के परताप से ॥ २ ॥ जाल में पत्ती पड़े, और मच्छी कांटे से मरे । चोर जावे जेल में, इस लोभ के परताप से ॥ ३ ॥ ख्वाव में देखा न उसको, रोगी क्यों नहीं नीच हो । गुलामी उस की करे, इस लोभ के परताप से ॥ ४ ॥ काका भतीजा भाई माई, वालिद या वेटा सज्जन । वीच कोर्ट के लड़े, इस लोभ के परताप से ॥ ५ ॥ शम्भूम चक्रवर्त्ती राजा, सेठ सागर की सुनो । दरियाय में दोनों मरे, इस लोभ के परताप से ॥ ६ ॥ जहां के कुल माल का, मालिक वने तो कुछ नहीं । प्यारी तज परदेश जा इस लोभ के परताप से ॥ ७ ॥ वाल वच्चे वेच दे, दुख दुर्गुणों की खान है । सम्यक्त्व भी रहती नहीं, इस लोभ के परताप से ॥ ८ ॥ कहे चौथमल सत्गुरू वचन, संतोष इसकी है दवा । और नसीहत नहीं लगे, इस लोभ के परताप से ॥ ९ ॥

तर्ज़ पूर्ववत् ।

गज़ल कुव्यसन निषेध पर ।

लाखों व्यसनी मर गए, कुव्यसन के परसंग से । अय अज़ीज़ो बाज आओ, कुव्यसन के परसंग से ॥ टेर ॥ प्रथम जूआ है बुरा, इज्जत धन रहता कहां । महाराज नल वनवास गए, कुव्यसन के परसंग से ॥ १ ॥ मांस भक्षण जो करे, उसके दया रहती नहीं । मनुस्मृति में लिखा, कुव्यसन के परसंग से ॥ २ ॥ शराव यह खराव है इन्सान को पागल करे । यादवों का क्या हुवा, कुव्यसन के परसंग से ॥ ३ ॥ रण्डी बाज़ी है मना, तुम से सुता उन के हुवे । दामाद की गिनती करे, कुव्यसन के परसंग से ॥ ४ ॥ जीव सताना नहीं रवा, क्यों कत्ल कर कातिल बने । दोजख़ का मिजमान हो, कुव्यसन के परसंग से ॥ ५ ॥ माल जो पर का चुरावे, यहां भी हाकिम दे सजा । आराम वह पाता नहीं, कुव्यसन के परसंग से ॥ ६ ॥ इश्क बुरा परनार का, दिल में जरा तो गौर कर । कुछ नफ़ा मिलता नहीं, कुव्यसन के परसंग से ॥ ७ ॥ गांजा चड़स चण्डू अफीम, और भंग तमाखू छोडदो । चौथमल कहे नहीं भला, कुव्यसन के परसंग से ॥ ८ ॥

तर्ज़ पूर्ववत् ।

गज़ल द्यूत (जूवा) निषेध पर ।

कदर जो चाहे दिला तूं, जूवा बाजी छोडदे । सर्व व्य-सन (बदकार) का सरदार है, तूं जूवा बाजी छोडदे ॥ टेर ॥ इश्क इसका है बुरा, नापाक दिल रहता सदा । रंजो गम की खान है, तू जूवा बाजी छोडदे ॥ १ ॥ द्रौपदी के चीर छीने, पा-एडवों के देखते । राज्य भी गया हाथ से, तूं जूवा बाजी छो-डदे ॥ २ ॥ महान् राजा नल से, वनवास मे फिरते फिरे और तो क्या चीज़ है, तूं जूवा बाजी छोडदे ॥ ३ ॥ अक़्ल तेरी गुम करे, सत्य धर्म से करती जुदा । धनवान को नि-र्धन करे, तूं जूवा बाजी छोडदे ॥ ५ ॥ मकान और दुकान जेवर, रखे गिरवे जायके । मा बाप जोरू नहीं कहे, तूं जूवा बाजी छोडदे ॥ ६ ॥ कई बावे बन गये, कई कम उमर में मर गये । फ़ायदा कुछ भी नहीं, तू जूवा बाजी छोडदे ॥ ७ ॥ दुनियां का रहे नहीं दीन का, गुरू का रहे नहीं पीर का । नर जनम भी जावे निफल, तूं जूवा बाजी छोडदे ॥ ८ ॥ गुरू के परसाद से, कहे चौथमल सुन तो जरा । मान ले आराम होगा, जूवा बाजी छोडदे ॥ ९ ॥

तर्ज़ पूर्ववत् ।

गज़ल गोश्त (मांस) निषेध पर ।

सख़्त दिल हो जायगा तूं, गोश्त खाना छोडदे । रहम फिर रहता नहीं तूं, गोश्त खाना छोडदे ॥ टेर ॥

दिल में न रहे, तो रहेमान फिर रहता है कैबे। वह बशरें फिर कुछ नहीं, तूं गोश्त खाना छोडदे ॥ १ ॥ जिस चीज़ से नफ़रत करे, वह ही गोश्त का पैदाश है। वह पाक फिर कैसे हुवा, तूं गोश्त खाना छोडदे ॥ २ ॥ गौ बकरे बैल भैंसा, लाखों कई कट गए। दूध दही महँगा हुवा, तूं गोश्त खाना छोडदे ॥ ३ ॥ दूध में ताकत बडी, वह गोश्तमें है-भी नहीं। पूँछले कोई डाक्टरों से गोश्त खाना छोडदे ॥ ४ ॥ गोश्त खोर हैवान का चिन्ह, मिलता नहीं इन्सान में। नेक स्वादी मत बने तूं, गोश्त खाना छोडदे ॥ ५ ॥ कुरान के अन्दर-लिखा, खुराक आदम के लिये। पैदा किया गेहूं मेवा, तूं-गोश्त खाना छोडदे ॥ ६ ॥ कत्ल हैवानात के बिना, गोश्त कहो कैसे मिले। कातिल निज्जात पाता नहीं, तूं गोश्तखाना छोडदे ॥ ७ ॥ जैन सूत्रके बीचमें, महावीर का फरमान है। मांस आहारी नर्क जा तूं, गोश्त खाना छोडदे ॥८॥ जिसका मांस खाता यहां, वह उसको वहां पर खायगा। मनु ऋषि भी कहगए, तूं गोश्त खाना छोडदे ॥९॥ नफस हरगिज़ नहीं मरे, फिर इबादत होती कहां। चौथमल की मान नसीहत, गोश्त खाना छोडदे ॥ १० ॥

तर्ज़ पूर्ववत्।

गज़ल शराब निषेध पर।

अकल भ्रष्ट होती पलक में, शराब के परताप से। लाखों

घर गारत हुवे (बरबाद हुवे), शराब के परताप से ॥ टेर ॥ शराबी शोख़ महा बुरा, खुदकी खबर रहती नहीं। जाना कहां आवे कहां, शराब के परताप से ॥ १ ॥ इज्जत और दानिशमंदी, जिस पर दे पानी फिरा। धनवान कई निर्धन बने, शराबके परताप से ॥ २ ॥ बकते २ हँस पड़े और, चौंक के फिर रो उठे। बेहोश हो हथियार ले, शराब के परताप से ॥३॥ चलते२ गिर पडे, कपड़ा हटा निर्लज्ज बने। मक्खियें भिनक मुंह पर करें, शराब के परताप से ॥ ४ ॥ जेवर को लेवे खोल लुच्चे, ले जेब से पैसे निकाल। कुत्ते देवे मूत मुह पर, शराब के परताप से ॥ ५ ॥ इन्साफ़ को करते अदल जो, हज़ार की रक्षा करें। खुद की रक्षा नहीं बने, शराब के परताप से ॥ ६॥ कम उमर में मर गये, कई राज्य राजों का गया। यादवों का क्या हुवा इस, शराब के परताप से ॥ ७ ॥ नशे से पागल बने, पुलिस भी लेवे पकड। कानून से मिलती सज़ा, शराब के परताप से ॥ ८॥ आठ आने वह कमावे, खर्च रुपये का करे। चोरी को फिर वह करे, शराब के परताप से ॥९ ॥ जैन वैष्णव, मुसलमान, अंजील में भी है मना। कई रोगी बनगये, शराब के परताप से ॥ १० ॥ चौथमल कहे छोडदे तू, मान ले प्यारे अज़ीज़। आराम कोई पाता नहीं, शराब के परताप से ॥ ११ ॥

तर्ज़ पूर्ववत् ।

गज़ल रण्डीबाजी निषेध पर ।

अय जवानों मानो मेरी, रण्डीबाजी छोड दो । कपट का भंडार है, तुम रण्डीबाजी छोड दो ॥ टेर ॥ पौशाक उम्दा जिस्म पर सज, पान से मुंह को रचा । टेढ़ी निगाह से देखती तुम्हें, रण्डीबाजी छोड दो ॥ १ ॥ धन होवे किस कदर, इस चिन्ता में मशगूल रहे । मतलब की पूरी यार है । तुम रण्डीबाजी छोड दो ॥ २ ॥ काम अन्ध पुरुष को, मकड़ी के मुआफिक फांसले । गुलाम अपना वह बनावे, रण्डीबाजी छोड दो ॥३॥ विषय अन्ध होके सभी, वह माल घर का सौंप दे । मतलब बिना आने न दे, तुम रण्डीबाजी छोड दो ॥ ४ ॥ इस की सोहबत में बडों का, बडप्पन रहता नहीं । पानी फिरावे आबरू पर, रण्डीबाजी छोड दो ॥ ५ ॥ सुज़ाक गर्मी से सड़े, मुंह पर दमक रहती नहीं । कमज़ोर हो कई मरगए, तुम रण्डीबाजी छोड दो ॥६ ॥ भरोसा कोई नहीं गिने, धर्म कर्म का होता है नाश । चौथमल कहे अय रफीको, रण्डी-बाजी छोड दो ॥ ७ ॥

तर्ज पूर्ववत् ।

गज़ल शिकार निषेध पर ।

।।ह दिल होजायगा, शिकार करना छोडदे । कातिल

बने मत अय दिला, शिकार करना छोडदे ॥ टेर ॥ क्यों जुल्म कर जालिम बने, पापों से घट को क्यों भरे । दिन चार का जीना तुझे, शिकार करना छोडदे ॥ १ ॥ सूअर सांभर रोज़ हिरन, खरगोश जङ्गल के पशू । इन्सान को देखी डरे, शिकार करना छोडदे ॥ २ ॥ तेरा तो एक खेल है, और उसके तो जाते हैं प्राण । मत खून का प्यासा बने, शिकार करना छोडदे ॥ ३ ॥ बे कसूरों को सतावे, खौफ तूं दाता नहीं । बदला फिर देना पडे, शिकार करना छोडदे ॥ ४ ॥ जैसी प्यारी जान तुझको, ऐसी गैरों की भी जान । रहम ला दिल में जरा, शिकार करना छोडदे ॥ ५ ॥ जितने पशु के बाल हैं, उतने जन्म कातिल मरे । मनुस्मृति देखले, शिकार करना छोडदे ॥ ६ ॥ हैवान आपस में लड़ाना, निशाना लगाना जान का । हदीस में लिखा मना, शिकार करना छोडदे ॥ ७ ॥ गर्भवती हिरनी को, श्रेणिक ने मारा तीर से । वह नर्क के अन्दर गया, शिकार करना छोडदे ॥ ८ ॥ खून से होती नरक, श्रीवीर का फरमान है । चौथमल कहे समझ ले, शिकार करना छोडदे ॥ ९ ॥

तर्ज़ पूर्ववत्

गज़ल चोरी निषेध पर ।

इज्जत तेरी घट जायगी, तूं चोरी करना छोडदे । मान

ले ससीहत मेरी, तूं चोरी करना छोडदे ॥ टेर ॥ माल देखी गैर का, दिल चोर का आशक हुवे । साफ नियत नहीं रहे, तूं चोरी करना छोडदे ॥ १ ॥ निगाह उसकी चौतरफ, रहती है मानिंद चील के । परतीत कोई नहीं गिने, तूं चोरी करना छोडदे ॥ २ ॥ पुलिस से छिपता रहे, एक दिन तो पकड़ा जायगा । बैंत से मारे तुझे, तूं चोरी करना छोडदे ॥ ३ ॥ नापने में तोलने में, चोरी महसूल की करे । रिशवत भी खाना है यही, तूं चोरी करना छोडदे ॥ ४ ॥ हराम पैसों से कभी, आराम तो मिलता नहीं । दीन दुनियां में मना, तूं चोरी करना छोडदे ॥ ५ ॥ नुकसान गर किस के करे तो, आह लगती है ज़बर । खाक में मिल जायगा, तूं चोरी करना छोडदे ॥६ ॥ सबर कर पर माल से, हक बात पर कायम रहे । चौथमल कहता तुझे, तूं चोरी करना छोडदे ॥ ७ ॥

तर्ज़ पूर्ववत्

गज़ल परनार निषेध पर ।

लाखों कामी पिट चुके, परनार के परसंग से । मुनिराज कहे सब बचो, परनार के परसंग से ॥ टेर ॥ दीपक की लो ऊपर, पड पतंग मरता है सही । ऐसे कामी कट मरे, परनार के परसंग से ॥ १ ॥ पर नार का जो हुश्न है, मानो अग्नि के सा । तन धन सब को होमते, परनार के परसंग से ॥२॥

झूठे निवाले पर लुभाना, इन्सान को लाज़िम नहीं । सुज़ाक गर्मी से सडे, परनार के परसंग से ॥ ३ ॥ चारसो सत्ताणुवां कानून मे, लिखा दफ़ा । सज़ा हाकिम से मिले, परनार के परसंग से ॥ ४ ॥ जैन सूत्रों में मना, मनुस्मृति देखलो, कुरान बाइबल में लिखा, परनार के परसंग से ॥ ५ ॥ रावण कीचक मारे गए, द्रौपदी सिया के वास्ते । मणीरथ मर नर्क गया, परनार के परसंग से ॥ ६ ॥ जहर बुझी तलवार से, अबन मुल्ज़िम बदकारने । हज़रत अली पर वहार की, परनार के परसंग से ॥ ७ ॥ कुत्ते को कुत्ता काटता, कत्ल नर नर को करे । पल में मोहब्बत टूटती, परनार के परसंग से ॥ ८ ॥ किसलिये पैदा हुवा, अय बेहया कुछ सोच तूं । कहे चौथमल अब सब्र कर, परनार के परसंग से ॥ ९ ॥

तर्ज पूर्ववत् ।

गज़ल (बद सोबत निषेध पर) ।

अगर चाहे आराम तो, जाहिल की सोबत छोडदे । मान ले नसीहत मेरी, जाहिल की सोबत छोडदे ॥ टेर ॥ अगर अक्लमन्द है, होशियार जो है तूं दिला । भूल के अखत्यार मत कर, जाहिल की सोबत छोडदे ॥ १ ॥ जाहिल से मिलता रत रहे, मानिंद शक्कर सीर के । भाग मुआफिक तीर के जाहिल की सोबत छोडदे ॥ २ ॥ दुश्मन भी अक्लमंद बेहतर, होवे जाहिल दोस्त के । परहेज़गारी है भली, जाहिल "

सोवत छोडदे ॥ ३ ॥ फलवद के जाहिलों से, नेकी तो मिलती नहीं। सिवा कोल बद के नहीं सुने, जाहिल की सोवत छोडदे ॥ ४ ॥ रहम दिल का पाक पन, इबादत भी नहीं हो। ईमान भी जावे विगड़, जाहिल की सोवत छोडदे ॥ ५ ॥ जाहिल तो आखिर ए दिला, दोज़ख के अन्दर जायगा। नेक आकबत कम बने, जाहिल की सोवत छोडदे ॥ ६ ॥ नशा पीना जुल्म करना, लड़ना लेना नींद का। गरूर आदत जाहिलों की, जाहिल की सोवत छोडदे ॥ ७ ॥ जाहिलपन की दवा मियां, लुकमान के घर में नहीं। सिविल सर्जन के हाथ क्या, जाहिल की सोवत छोडदे ॥ ८ ॥ गुरु के परसाद से, कहे चौथमल तूं कर निगाह। आलिम की सोवत कर सदा, जाहिल की सोवत छोडदे ॥ ९ ॥

तर्ज पूर्ववत्।

गज़ल (कुसंप) फूट निषेध पर।

लाखों घर गारत हुए, इस फूट के परताप से। सम्प गया इस देश से, इस फूट के परताप से ॥ टेर ॥ इल्म हुनर ईमान इज्जत, हमदर्दी गई कर विदा। हिंसक धुर्त्त कामी बने, इस फूट के परताप से ॥ १ ॥ जहां सम्प वहीं सम्पति, जहां फूट वहां सम्प कहां। अजब लीला होगई, इस फूट के [illegible]प से ॥२॥ मोहताज दौलतमन्द हुए, कई राज्य राजों का [illegible] इंडिया बरबाद हुवा, इस फूट के परताप से ॥ ३ ॥

॥ श्रीमद्वीरायनमः ॥

अथ चौबीसी पद

लिख्यते ॥

॥ढाल उमादे भटियाणी ए देशी ॥ श्री आ दीस्वर स्वामी हो प्रणमु सिरनामी तुम भणी॥ प्रभु अंतरजामी आप मोपर म्हैर करी जै हो मेटी जै चिंतामन तणीमांरा काटो पुराकृत पा ष ॥ श्री आदीस्वर स्वामी हो प्रणमुँ सिरनामी तुम भणी॥टेर॥१॥ आदि धरम की कीधी हो भर्तषेत्र सर्पणी कालमैं प्रभु जुगला धरम नि वार पहिला नरवर १ मुनिबर हो २ तिर्थंकर३ जिनहूवा ४ केवली ५ प्रभु तीरथ थाप्या चार

श्री ॥२॥ मामरू दिव्या थारी हो गज होदै मु
क्ति पधारिया तुम जनम्या ही परमाण पिता
नाभ म्हाराजा हो भव देव तणो कर नर थया
प्रभु पाम्यां पद निरबाण ॥श्री॥३॥ भरतादिक
सौ नँदन हो वे पुत्री ब्राह्मी सुँदरी ॥ प्रभु ए
थारा अंग जात सगला केवल पाया हो समा
या अविचल जोत में केइ त्रिभुवन में विख्या
त ॥४॥श्री॥ इत्त्यादिक वहू तारया हो जिन
कुल में प्रभु तुम ऊपना केइ आगम में अधि
कार और असंख्या तारया हो ऊधारया सेवक
आपरा प्रभू सरणाही साधार॥५॥श्री॥असरण
सरण कहो जैहो प्रभु विरधे विचारो सायवा
केइ अहो गरीब निवाज सरण तुम्हारी आयो
हो हूं चाकर निज चरना तणो म्हारी सुणिये
अरज अवाज॥६॥श्री॥ तू करुणा कर ठाकुर

हो ॥ प्रभु धरम दिवाकर जग गुरू केई भव
दुषदुकृतटालबिनयचंदनें आपौहोप्रभु निजगुण
पतसासतप्रभूदीनानाथदया।ला७।श्री।इति।१॥
ढाल ॥ कुविसन मारग माथैरे धिग २॥ ए देशी
श्री जिन अजित नमौ जयकारी तुम देवनको
देवजी जय सत्रु राजा नैं बिजिया राणा कौ
आतम जात तुमेवजी ॥१॥श्री जिन अजित
नमौ जयकारी ॥ टेर ॥ दूजा देव अनेरा जग
में ते मुझ दायन आवैजी ॥ तहमन तह चित्त
हमनैं एक तुहीज अधिक सुहावैजी ॥श्री।२।
सेव्या देव घणा भव २ मैंतो गिण गरज न
सारीजी ॥ अबकै श्रीजिन राज मिल्यौ तू पू
रण पर उपगारीजी ।३।श्री॥ त्रिभुवन में जस
उज्वल तेरो फैल रह्यो जग जानेंजी ॥ बंदनीक
पूजनीक सकल को आगम एम बखानेंजी ॥

।४।श्री।तू जग जीवन अँतरजामी प्राग आधार पियारोजी ॥ सब विधिलायक संत सहायक भगत बछल वृध थारोजी ॥ ५ ॥ श्री ॥ अष्ट सिद्धि नव निद्धि को दाता तो सम अवर न कोईजी ॥ बधै तेज सेवक को दिन २ जेथ तेथ जिम होइजी ॥ श्री ॥ ६॥ अनंत ग्यान दर्शण संपति ले ईश भयो अविकारीजी ॥ अविचल भक्ति विनै चँद कूँ देओ तो जाणूँ रिझवारीजी श्री॥७॥इति॥२॥ढाल॥ आज मारा पासजी ने चालो वँदन जइए।एदेशी॥आज म्हारा संभव जिनके हित चितसूं गुणगासां ॥ मधुर २ स्वर राग अलापी गहरे साद गूँजासां राज ॥ आ ज म्हारा संभव जिनके हित चितसूं गुण गा- सां ।आ॥१॥ नृप जितारथ सैन्या राणी तासुत सेवक थासां ॥ नवधा भक्त भाव सौं करनै

प्रेम मगन हुई जासां राज ॥ आ०॥२॥ मन
वच काय लाय प्रभु सेती निस दिन सास उ
सासां । संभव जिनकी मोहनी मूरति हिये नि
रंतर ध्यास्यां राज । ३ ॥ आ०॥ दान दयाल
दीन बँधव के खाना जाद कहासां । तनधन
प्रान समरपी प्रभु कों इन पर वेग रिझासां
राज॥आ०॥४॥ अष्ट कर्म दल अति जोरावर
ते जीत्यां सुख पासां ॥ जालम मोहमार कौ
जामैं साहस करी भगासां राज ॥ आ०॥५॥
ऊबट पँथ तजी दुरगति को सुभगति पंथ
सँभासां ॥ आगम अरथ तणे अनुसारैं अनु
भव दसा अभ्यासां राज । आ०॥६॥ काम क्रोध
मद लोभ कपट तजि निजगुणसुं लवलासां॥
विनैचँद सँभव जिन तूठो आवा गवन मिटा
सां राज आ० ।७ इति ३ ढाल। आदरजीवषीम्या

गुण आदर ॥ एदेशी ॥ श्री अभिनँदन दुःख निकँदन बँदन पूजन योग्यजी ॥ श्री ॥ संवर राय सिधारथा राणी जेहनो आतम जातजी प्रान पियारो साहिब साचौ तुहा जो मात नै तातजी ॥श्री॥ २ ॥ केई यक सेब करै शंक की केइ यक भजै मुरारिजी॥ गन पति सूर्य उमाकेई सुमेर हूं सुमरूँ अबिकारजी॥श्री॥देव कृपा सू पामें लछमी सौ इन भव कौ सुख जी ॥ तो तूठां इन भव पर भव में कदे इन व्यापै दुःखजी ॥श्री॥४॥ जदपी इन्द्र नरिन्द्र निबाजे तदपी करत निहारजी॥तुं पुजनीक नरिन्द्र इन्द्र कौ दीनदयालकृपालजी॥श्री॥५॥ जब लग आवागमन न छूटै तब लग करों अरदासजी ॥ संपति सहित ग्यान समकित गुण पाऊँ हढ बिसवासजी ॥श्री॥६॥ अधम

उधारन वृरुद तिहारो जोवो इण संसारजी॥ लाज बिनैचंद की अब तौनैं भव निधिपार उतारजी॥श्री॥७॥इति॥४॥ढाल॥ श्री सीतल जिन साहिबाजी ॥ एदेशी ॥ सुमति जिणेसर साहिबाजी॥ मेगरथ नृप नौ नंद॥ सू मंगला माता तणौजी तनय सदां सुख कंद॥१॥ प्रभू त्रिभवन तिलोजी ॥ आंकडी

सुमति सुमति दातार ॥ महा महिमानिलोजी ॥ प्रणमूँ बार हजार ॥ प्रभु त्रिभुवन तिलोजी ॥२॥प्रभू०॥ मधुकर नो मन मोहियौ जी॥ मालती कुसम सुवास॥ त्युं मुजमन मोह्यो सही ॥ जिन महिमा कवि मास॥३॥ प्रभु०॥ ज्यूं पंकज सूरज मुखीजी ॥ बिकसै सूर्य्य प्रकाश ॥ त्युं मुज मनडो गह गहे ॥ कबि जिन चरित हुलास॥४॥प्रभू०॥ पपइयौ

पीउ पीउ करैजी ॥ जानें तृषारितु मेह ॥ त्यूं
मोमन निस दिन रहै ॥ जिन सुमरन सू नेह
॥५॥प्रभु॥ काम भोगनी लालसाजी ॥ थिरता
न धरै मन्न ॥ पिण तुम भजन प्रतापथी ॥
दाझै दुरमति बन्न ॥६॥प्रभु०॥ भवनिधि पार
उतारियेजी॥भगत बच्छल भगवान॥ विनैचं
दकी वीनती मानौ किरपानिधान।७।प्र०इति५।

ढाल ॥ सांभ कैसे गज को फँद छुडायो
एदेशी ॥ पदम प्रभु पावन नाम तिहारो॥टेर॥
जदपि झीवर भील कसाई । अति पापिष्ट ज
मारो ॥ तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज ॥
पावैंभवदधि पारो॥१॥पदम॥गौ ब्राह्मण प्रमदा
बालक की॥मोटी हित्या च्यारो॥ तेहनो करण
हार प्रभु भजनै ॥ होत हित्या सु न्यारो ॥
२॥ पदम०॥ वेश्यां चुगल चंडाल जुवारी ॥

घोर महाभट मारो ॥ जो इत्यादि भजै प्रभु
तोने ॥ तो नृबृते संसारो ॥३॥ पदम०॥ पाप
पराल को पुंज बन्यों अति ॥ मानू मेरु अ-
कारो ॥ ते तुम नाम हुताशन सेती ॥ सह
ज्या प्रजलत सारो ॥ ४ ॥पदम॥ परम धर्म
को मरम महारस॥सो तुम नाम उचारो॥या
सम मंत्र नहीं कोई दूजो ॥ त्रिभुवन मोहन
गारो ॥ ५ ॥ पदम ॥ तो सुमरण बिन इण
कलजुग में ॥ अवरन को आधारो॥मैं बलि
जाऊ तो सुमरन पर॥दिन २ प्रीत बधारो॥
॥६॥पदम०॥कुसमा राणा को अंग जात तुं॥
श्रीधर राय कुमारो॥विनैचंद कहे नाथ निरं
जन जीवन प्रान हमारो ॥७॥पद०इति॥६॥
ढाल ॥ प्रभुजी दीन दयाल सेवक सरणें
आयो ॥ एदेसी

प्रतिष्ट सैन नरेस्वर कौसुत्त प्रथवी तुम मह तारी ॥ सगुण सनेही साहिब सांचौ ॥ सेवक नें सुखकारी ॥१॥ श्रीजिन राज सुपास पूरो आस हमारी ॥ आकंडी

धरम काम धन मुक्त इत्यादिक। मन वांछित सुखपूरो ॥ बार २ मुझ बिनती ऐही ॥ भव भव चिंता चूरो ॥२॥ श्री जिन॥जगत सिरोमणि भगत तिहारी॥कल्प बृक्ष सम जाणु पूरण ब्रह्म प्रभु परमेश्वर भव भव तुनें पिछाणु ॥ ३ ॥ श्रीजिन ॥ हूं सेवक तुं साहब मेरो ॥ पावन पुरुष बिग्यांनी ॥ जनम जनम जित थित जाऊं तौ पालै प्रीति पुरानी॥४॥ श्रीजिन ॥ तारन तरन अरु असरन सरनको बिरदइसो तुम सोहै ॥ तो सम दीन दयाल जगत में इन्द्र नरिन्द्र न को है ॥ ५॥श्री ॥

सँभूरमण बडौ समुद्रौ मैं ॥ सैल सुमेरू बि: राजै ॥ तू ठाकुर त्रिभुवन में मोटा ॥ भगत कियादुष भाजै ॥ ६ ॥ श्री जिन ॥ अगम अगोचर तूं अविनासी अलष अषंड अरू- पी ॥ चाहत दरस बिनैचंद तेरो । सत चित आनँद सरूपी ॥ ७ ॥ श्री जिनराज सुपास पूरो आस हमारी ॥ इति ॥७॥

ढाल ॥ चौकनी देशी ॥

जय जय जगत सिरोमणी हूँ सेबकने तूँ धणी ॥ अब तौसूँ गाढी बणी ॥ प्रभु आसा पूरौ हमतणी ।१॥ मुझ म्हेर करौ ॥ चँद प्रभू जग जीवन अँतरजामी ॥ भव दुःष हरौ ॥ सु णिये अरज हमारी ॥ त्रिभुवन स्वामी ॥ टेर॥ चँद पुरी नगरी हती ॥ म्हासेन नामा नरपती तसुराणी ॥ श्री लषमां सती ॥ तसुँ नँदन तू

चढती रती ॥२॥ मुझ॥ तूँ सरबज्ञ महाज्ञाता॥ आतम अनुभव को दाता ॥ तो तूठां लही ये सुखसाता ॥ धन २ जे जग में तुम ध्यात ।३। मुझ म्हैर ॥ सिव सुख प्रारथना करसूँ उज्वल ध्यांन हिये धरसूँ॥रसना तुम महिम॥ करसूँ ॥ प्रभु इम भवसागर से तिरसूँ।४।मुझ॥ चँद चकोरन के मनमें॥गाज अवाजहू वेघनमें ॥पय अभिलाखा ज्यों त्रियतनमें॥त्यों वसियो तूँ मो चितवन में ॥५॥ जो सुनजर साहिब तेरी ॥ तो मानों बिनती मेरी ॥ काटौ भरम करम बेरी॥ प्रभु पुनरपि नहि परूं भव फेरी॥ ॥६॥मुझ म्हैर ॥ आतम ज्ञान दसा जागी॥ तुम सेती मेरी लौ लागी ॥ अन्य देव भ्रमना भागी ॥ विनैचँद तिहारौ अनुरागी॥ ॥ मुझ म्हैर ॥ चँद प्रभु जग जीवन

अँतरजामी भव दुषहरो ॥ इति ॥८॥

ढाल॥ बुढापो बैरी आवीयो हो॥ काकँदी नगरी भली हो ॥ श्री सुग्रीव नृपाल ॥ रामा तसु पट रागनी हो ॥ तस सुत परम कृपाल ॥१॥ श्री सुविध जिणेसर वँदिये हो ॥

आँकडी ।

त्यागी प्रभुता राजनी हो ॥ लीधो सँजम भार ॥ निज आतम अनुभावथी हो । पाम्या प्रभु पद अविकार ।श्री॥२॥ अष्ट कर्म नो राजवीहो ॥ मोह प्रथम क्षय कीन ॥ सुध समकित चारित्रनो हो ॥ परम क्षायक गुणलीन ॥३॥ श्री ॥ ज्ञानावरणी दर्सना वरनी हो ॥ अँतराय के अँत॥ ज्ञान दरसन बल ये त्रिहूँ हो प्रगट्या अनँता अनँत ॥श्री॥ अव्या बाह सुख पामीयाहो । वेदनी करम खपाय ॥ अव

गाहण अटल लहीहो ॥ आठ क्षै करनैं श्री
जिन राय ॥५॥ श्री० ॥ नाम करम नौ क्षै
करीहो ॥ अमूर तिक कहाय ॥ अगुर लघू-
पण अनुभव्याहौ ॥ गौत्र करम मुकाय॥६॥
श्री ॥ आठ गुणा कर ओलष्याहौ ॥ जात
रूप भगवँत॥ विनैचंद के उरबसौ हौ ॥ अह
निस प्रभु पुष्पदंत ॥ ७ ॥ इति ॥९॥

ढाल ॥ जिंदवारी देशी ॥

श्री दृढरथ नृपतो पिता॥नँदा थारी माय।
रोम रोम प्रभुमो भणो सीतल नाम सुहाय
॥१॥ जय जय जिन त्रिभुवन धणी ॥ करुणा
निध करतार ॥ सेव्यां सुर तरु जेहवो ॥
वँछित सुख दातार ॥ २ ॥ जय० ॥ प्राण
पियारो तू प्रभु पति भरतापति जेम॥लगन
नेरँतर लगरही ॥ दिन दिन अधिको प्रेम

॥जय०॥३॥सीतल चँदन नीपैं जपतां तिस दिन जाप ॥ बिषै कषायना ऊपनै ॥ मेटौ भव दुखताप ॥ ४ ॥ जय० ॥ आरत रुद्र प्रणाम थी उपजै चिंता अनेक॥ते दुख कापो मानसी ॥ आपौ अचल बिबेक ॥५॥जय०॥ रोगादिक क्षुधा त्रिषा॥सब सस्त्र अस्त्र प्रहार सकल सरीरी दुख हरौ ॥ दिलसूँ बिरुद बिचार ॥जय॥ ६॥ सुप्रसन होय सीतल प्रभू तू आसा बिसराम ॥ बिनैचँद कहै मो भणी दीजै मुक्ति मुकाम ॥ ७ ॥ जय जय जिन त्रिभुवन धणी सेव्या सुरतरू जेहवौ॥बँछत सुख दातार ॥जय०॥इति॥१०॥

ढाल ॥ राग काफी देसी होरी की॥

चेतन जाण कल्यांण करन कौ ॥ आन मिल्यो अबसररे ॥ सास्त्र प्रमान पिछान प्रभू

गुन ॥ मन चंचल थिर कररे ॥ १ ॥ श्री अंस जिनंद सुमररे ॥

टेर। सास उसास विलास भजन को ॥ दृढ विस्वास पकररे ॥ अजपा ध्यास प्रकाश हिये बिच ॥ सो सुमरन जिन बररे ॥ २ ॥ श्री ॥ कँद्रप क्रोध लोभ मद माया ॥ ए सबही पर हररे ॥ सम्यक्क दृष्टि सहज ॥ सुख प्रगटे ॥ ज्ञान दशा अनुसररे ॥ ३ ॥ श्री अंस ॥ झूँठ प्रपँच जीवन तन धन अरू ॥ सजन सनेही घररे ॥ छिनमें छाड चलें पर भव कूँ ॥ बँध सुभा सुभ थिररे ॥ श्री ॥ ४ ॥ मानस जनम पदारथ जिनकी ॥ आसा करत अमररे ॥ तें पूरव शुकृत करिपायौ ॥ धरम मरम दिलधररे ॥ ५ ॥ ॥ श्री ॥ विश्नसेन नृप विस्नाराणी को नँदन तू न विसररे ॥ सहजे मिटे अज्ञान अविद्या

मुकत पंथ पग भररे ॥६॥श्री॥ तूं अबिकार बिचार आतम गुन ॥ भ्रम जंजाल मपररे ॥ पुद्गल चाय मिटाय बिनैचंद ॥ तुं जिन तैन अवररे ॥ ७ ॥ श्री ॥इति॥११ ॥

ढाल फूलसी देह पलक में पलटै ॥

एदेशी ॥प्रणमूं वास पूज्य जिन नायक॥ सदां सहायक तूं मेरो ॥ टेर ॥ बिषमी बाट घाट भयथानक ॥ परमासय सरनो तेरो ॥ खल दल प्रबल दुष्ट अति दारुण चौतरफ दियै घेरो ॥ तौ पिण कृपा तुम्हारी प्रभुजी ॥ अरियनभी प्रगटै चैरो ॥ २ । प्रणमु० । बिकट पहार उजार बिचालै । चोर कुपात्र करै हेरो । तिण बिरियां करिये तो सुमरण ॥ कोई न छीन सकै डेरो ॥३॥ प्रणमु ॥ राजा पात साह कोइ कोपै अति तफाम करै छेरो

तदपी तू अनुकूल हूवैतो ॥ छिनमें छूट जाय केरौ ॥ ४ ॥ प्रणमू० ॥ राकस भूत पिसाच डांकिनी ॥ संकनी भय नावैं नेरौ ॥ दुष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागै ॥ प्रभु तुम नाम भज्यां गहरौ ॥ प्रणमू ॥ ५ ॥ बिस्फोटक कुष्टादिक संकट ॥ रोग असाध्य मिटै देहरौ॥ बिष प्यालौ अमृत होय प्रगमें ॥ जो बिस बास जिनँद करौ ॥ ६ ॥ प्रणमु० ॥ मात जया वसु नृप के नंदन ॥ तत्व जथारथ बुध प्रेरौ ॥ कर जोरि बिनैचँद बिनवै ॥ बेग मिटै मुझ भव फेरौ ।७। प्रणमु बास पूज्य जिन नायक सदां सहायक तुम मेरौ ॥१२॥ इति॥

ढाल अहो शिवपुर नगर सुहावणो ।एदेशी॥ विमल जिणेसर सेविये ॥ थांरी बुध निर्मल व्हायरे॥जी॥ बिषय बिकार बिसार नै॥ तूं

मोहनी करम खपायरे ॥ १ ॥ जीवा० ॥

आँकडी ॥

सुषम साधारण पणौ ॥ परतेक बनास पती मायरे ॥ जीवा० ॥ छेदन भेदन तैसही॥ मर मर ऊपज्यौ तिण कायरे ॥जीवा० ॥२॥ काल अनंत तिहागम्यौ ॥ तेहना दुख आ-गमथी सँभालरे ॥ जीवा० ॥ पृथ्वी अप्प तेउ वायुमें ॥ रह्यौ असँष्या २ तौ कालरे ॥ जीवा० ॥३॥ एकेन्द्री सूँ बेंद्रीथयौ ॥ पुन्याइ अँनती वृधरे ॥ जीवा० ॥ सनीपचेंद्री लगें पुनबंध्या ॥ अनँता अँनता प्रसिधरे ।जीवा। ॥४॥ देव नरक तिरजँच में ॥ अथदा माणस भवनीचरें ॥ जीवा ॥ दीन पणें दुष भोगव्या । इणपर चारों गति बीचेर ॥ जीवा ॥ ५ ॥ अबकै उत्तम कुल मिल्यौ ॥ भेट्या उत्तम

गुरू साधुरे ॥जीवा॥ सुण जिन बचन सनेह
सू ॥ समकित ब्रत आराधरे ॥ जीवा ॥ ६॥
पृथ्वी पति कीरति भानु को ॥ सामाराणी
को कुमाररे ॥ जीवा ॥ बिनैचँद कहेते प्रभू॥
सिर सेहरो हिवडारो हाररे ॥ जीवा ॥ १३ ॥

ढाल बिगा पधारोरे म्हलथी ॥

एदेशी ॥ अनँत जिनेसर नित नमो ॥
अद्भुत जोत अलेष॥ ना कहिये ना देखिये
जाके रूप न रेख ॥ १ ॥ अनँत ॥ सुखसूर्थी
सुख्यम प्रभू चिदानंद चिद्रूप ॥ पवन सबद
आकासथी ॥ सुख्यम ज्ञान सरूप॥२॥अनँत॥
सकल पदारथ चिंतवुं ॥ जेजे सुक्षम जाय।
तिणथी तु सुक्षम महा ॥ तो सम अवर न
आय ॥३॥ अनंत ॥ कवि पंडित कह कह
कै ॥ आगम अर्थ विचार ॥ तौ पिण तुम

अनुभव तिको ॥ न सके रसनां उचार ॥४॥
अनँत ॥ पर्मनँ श्री सुख सरस्वती ॥ देवि
आपो आप ॥ कहि न सकै प्रभु तुम अस्तु
ती ॥ अलख अजपा जाप ॥ ५ ॥ अनँत॥
मन बुध बांणी तौ बिखै ॥ पहुचैनहीं लगार ।
साखी लोका लोकनो ॥ निराविकलप निरा
कार ॥६॥अनँत॥मातु जसा सिंहरथ पिता॥
तसु सुत अनंत जिनद॥बिनैचंद अब ओ-
ळख्यो साहिब सहजा नँद॥७॥अनंत॥इति॥१४॥

ढाल आज नहैं जोरे दीसै नाहलौ ॥

एदेशी ॥ धरम जिणेसर मुज हिवडै बसो
प्यारो प्राण समान ॥ कबहूं न विसरूं हो ॥
चितारूँ नहीं ॥ सदा अखंडत ध्यान ॥ १ ॥
धरम० ॥ ज्यूं पनिहारी कुँभ न वीसरै ॥ नट
वो चारित्र निदान ॥ पलक न बिसरै हो पद

गुरु साधुरे ॥जीवा॥ सुण जिन बचन समेह सू ॥ समकित व्रत आराधरे ॥ जीवा ॥ ६॥ पृथ्वी पति कीरति भानु कौ ॥ सामाराणी कौ कुमाररे ॥ जीवा ॥ बिनैचँद कहेते प्रभू॥ सिर सेहरौ हिवडारौ हाररे ॥ जीवा ॥ १२॥

ढाल बिगा पधारौरे म्हलथी ॥

एदेशी ॥ अनँत जिनेसर नित नमो ॥ अद्भुत जोत अलेष॥ ना कहिये ना देखियें जाके रूप न रेख ॥ १ ॥ अनँत ॥ सुखमथी सुख्यम प्रभू चिदानंद चिद्रूप ॥ पवन सबद आकासथी ॥ सुख्यम ज्ञान सरूप॥२॥अनँत॥ सकल पदारथ चिंतवुं ॥ जेजे सुक्षम जोय। तिणथी तु सुक्षम महा ॥ तो सम अवर न कोय ॥३॥ अनंत ॥ कवि पंडित कह कह थके ॥ आगम अर्थ बिचार ॥ तौ पिण तुम

अनुभव तिको ॥ न सके रसना उवह्र ॥४॥
अनँत ॥ पभनैं श्री सुख सरस्वती ॥ देवि
आपै आप ॥ कहि न सकै प्रभु तुम अस्तु
ती ॥ अलख अजपा जाप ॥ ५ ॥ अनँत॥
मन बुध बांणा तो विखै ॥ पहुचैनहीं लगार ।
साखी लोका लोकनो ॥ निराविकलप निरा
कार ॥६॥अनँत॥मातु जसा सिंहरथ पिता॥
तसु सुत अनंत जिनद॥विनैचंद अब ओ-
लख्यो साहिब सहजा नँद॥७॥अनंत॥इति॥१४॥

ढाल आज नहैं जोरे दीसै नाहलै ॥

एदेशी ॥ धरम जिणसर मुज हिवडै बसो
प्यारो प्राण समान ॥ कबहूं न विसरूं हो ॥
चितारूँ नहीं ॥ सदा अखंडत ध्यान ॥ १ ॥
धरम० ॥ ज्यूं पनिहारी कुँभ न वीसरै ॥ नट
वो चरित्र निदान ॥ पलक न विसरै हो पद

मनि पिउमणी।।चकवि न विसरैरे भान।।२।।
धरम० ।। ज्यूँ लोभी मन धनकी लालसा ।।
भोगी के मन भोग ।। रोगी के मन माने
औषधी ।। जोगी के मन जोग ।।३।।धरम०।।
इणपर लागी हो पूरण प्रीतडी ।। जाव जीव
परियँत ।। भव भव चाहूं हो न पडै आंतरो
भय भँजन भगवंत ।।४।। धरम ।। काम क्रोध
मद मच्छर लोभथी ।। कपटी कुटिल कठोर।।
इत्यादि अवगुण कर हूँ भर्यौ ।।उदै कर्मकेरे
जोर ।। ५ ।। धरम ।। तेज प्रताप तुमारौ पर-
गटे ।। मुज हिवडा में रे आय ।। तो हूँ आ
तम निज गुण संभालनैं।अनँत वली कहिवाउं।।
।। ६ ।। धरम० ।। भानू नृप सुब्रत्ता जननी
तणो ।। अँग जात अभिराम ।। बिनैचंद
नैरेवल्लभ तूं प्रभु ।। सुध चेतन गुण धाम ।।

॥ ७ ॥ धरम जिणे० ॥ १५ ॥इति॥

ढाल ॥ प्रभुजी पधारो हो नगरी हमतणी एदेशी ॥ बासु सैन नृप अचला पटरागनी॥ तसु सुत कुल सिणगार हो सोभागी जनमति सँति करी निजदेसमें ॥ मरी मार निवार हो ॥ १ ॥ सोभागी० ॥ सँत जिनेसर साहिब सोलमो० ॥ आंकडी

संति दायक तुम नाम हो ॥ सोभागी॥तन मन वचन सुधकर ध्यावता ॥ पूरै सघली हामहो ॥ २ ॥ सोभागी ॥ विघन न व्यापै तुम सुमरन कीयां ॥ नासै दारिद्र दुखहो ॥ सोभागी० ॥ अष्ट सिद्ध नव निद्ध मिलै ॥ प्रगटै नवला सुक्ख हो ॥ ३॥ सोभागी० ॥ जेहनै सहाइक सँत जिनँद तु ॥ तेहनै कुमी यन काय हो ॥ सोभागी ॥ जेजे कारज मन

में ते बढे ते ते सफला थाय हो ।सोभागी०।
॥ ४ ॥ दूर दिसावर देश प्रदेशमें ॥ भटके
भोला लोक हो ॥ सोभागी ॥ सानिधकारी
सुमरन आपरो ॥ सहजे मिटै सो कहो ॥५॥
आगम साख सुणी छै एहवी ॥ जो जिण
सेवक होय हो ॥ तेहनिआसा पूरै देवता ॥
चौसठ इन्द्रादिक सोय हो ॥ ६ । सोभागी।
भव भव अंतरजामी तुम प्रभु ॥ हमने छै
आधार हो॥ बेकरजोर बिनचंद विनवेआपो
सुख श्री कार हो।' सोभागी ॥७॥१६॥इति॥

ढाल रेखतो॥ कुंथु जिण राज तू ऐसो ॥
हीं कोई देवता जैसो ॥
टेर ॥ त्रिलोकी नाथ तूँ कहिये ॥ हमारी
ह दृढ गहिये ॥ १ ॥ कुंथु० ॥ भवो दधि
वतो तारो ॥ कृपा निधि आसरो थारो ॥

भरोसे आपको भारी ॥ विचारो विरद उप
गारी ॥ २ ॥ कुंथु० ॥ उमाहो मिलन को
तौसै ॥ नराखौ आतरो मौसै ॥ जिसी सिधि
अवस्था तेरी ॥ तिसी चेतन्यता मेरी॥ ३ ॥
कुंथु० ॥ करम भ्रम जाळ को दपट्यौ ॥ विषे
सुख ममत में ळपट्यौ । भ्रम्यों हूं चिहूं गति
मांहीं ॥ उदैकर्म भ्रमकी छांही ॥ ४ ॥ कुंथु ॥
उदै कौ जोर है जौळूं ॥ न छूटै विषै सुख
तोळूं ॥ कृपा गुरु देवकी पाई ॥ निजातम
भावना आई ॥ कुंथु ॥ ५॥ अजव अनुभूति
उरजागी ॥ सुरति निज सूर्य में लागी ॥
तुमाहि हम एकतो जाणूं ॥ छतै भ्रम
कलपना मानूं ॥ ६ ॥ श्री देवी सूर नृप
नँदा ॥ अहो सरवज्ञ सुखकंदा ॥ विनैचद
ळीन तुम गुन में ॥ न व्यापै अविद्या उन

मैं ॥ ७ ॥ कुंथु जिन राज० ॥इति॥१८॥

ढाल अलगी गिराली ॥

एदेशी ॥ तु चेतन भज अरह नाथनें ॥ ते प्रभु त्रिभवन राय ॥ तात सुदरसण देवी माता ॥ तेहनों पुत्र कहाय ॥ १ ॥ साहिब सीधो ॥ अरह नाथ अविनासी सिव सुख लीधो ॥ बिमल विज्ञान बिलासी॥१॥साहिब० कोड जतन करता नहीं पामें ॥ एहवी मोटा माम ॥ ते जिन भक्ति करि नै लहिये ॥ मुक्ति अमोलक ठाम ॥ २ ॥ साहिब० ॥ समकितसहित कीयां जिन भगता ॥ ज्ञान दरसन चारित्र ॥ तप बीरज उपियोग तिहांरा ॥ प्रगटे परम पवित्र ॥४॥ साहिब ॥ सो उपियोग सरूप चेतोनंद ॥ जिनवर ने तू एक ॥ द्वैत अविद्या विभ्रम मेटो ॥ वाधे

सुध विवेक ॥ ५ ॥ साहिब ॥ अलप अरूप अखँडित अविचल । अगम अगोचर आपै॥ निर विकल्प निकलँक निरँजन॥अदभुत जोतिअमापै॥६॥साहिब॥ओलख अनुभव अमृत याकौं ॥ प्रेम सहित निज पीजै ॥ हूँ तूं छोड विनैचँद अँतस ॥ आतम राम रमीजै। साहिब सोधौ ७ ॥ १८ ॥इति॥

ढाल लावणी ॥

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी ॥ कुँभ पिता पर भावती मईया तिनकी कूमारी ॥ मल्लि० ॥

आँकडी

मानी कूँख कँदरा माँहि॥उपना अवतारी॥ मालती कुसुम मालनी बांछा ॥ जननी उर धारी ॥ १ ॥ म० ॥ तिणथी नाम मल्लि जिन थाप्यो ॥ त्रिभुवन प्रिय कारी॥ अद्भुत

चरित्र तुम्हारो पूछुंजी ॥ भेद धरयो नारी ॥ ॥म०॥३परणन काज जान सज आए॥भूपति छे:भारी ॥ सिहला पुरी घेरि चौतरफा॥सैना बिस्तारी॥म०॥३॥ राजा कुँभ प्रकासी तुमपै। कीतक बिधसारी ॥ छेहूँनृप जान करी तो पर नन्न ॥ आया अंहकारी ॥ म० ॥ ४ ॥ श्री सुख धीरप दीध पिताने ॥ राषै हुशियारी ॥ पुतली एक रची निज आकृत ॥ थोथी ढकवारी ॥ म० ॥ ५ ॥ भोजन सर्स भरासा पुतली ॥ श्रीजिण सिण गारी ॥ भूपति छहूँ बुलाया मँदिर वीच वहू नपारी ॥ म० ॥ ६ ॥ पुतली देख छहूँ मोह्या अबसर बीचारी ॥ ढाक उघार नौ पुतली को ॥ भभक्यौ अनबारी॥म० ॥ दुस्सह दुर्गन्ध सही नहीं जावै ॥

उठ्या नृप हारी॥तब उपदेश दियो श्रीमुखसूँ॥ मोह दूसाटारी ॥ म० ॥ ८ ॥ महा असार उदारक देही ॥ पुतली इव प्यारी ॥ सगकियां पटकें भव दुख में नारि नरक वारी ॥म०।९॥ नृप छहूँ प्रति बोधे मुनि होय ॥ सिवगत सँभारी ॥ बिनैचँद चाहत भव भव में ॥ भक्ति प्रभुधारी ॥ १० ॥ म० ॥ ११ ॥इति॥

ढाल चेतरे चेतरे मानवी ।

एदेशी ॥ श्रीमुनि सुब्रत साथबा दीन दयाल देवां तणा देवके ॥ तारण तरण प्रभू तो भणी उज्वल चित सुमरूं॥ नितमे के ॥ १ ॥ श्री मुनि सुब्रत साहिबा ॥ हूँ अपराधी अनादि को ॥ जनम २ गुना किया भरपूर के ॥ लूटिया प्राण छः कायजा सेविया पाप अठार करूरकै ॥ श्री मुनि सुब्रत साहिबा

॥२॥ पूरन असुभकर्म्मव्यता ॥ ते हमना प्रभू तुम बिचारकै ॥ अधम उधारण बिरध छौ॥ सरन आयो अब कीजियै सारके॥ श्री सुनि सुब्रत सा.बा ॥३॥ किंचित पुन्य प्रभावथा इणभव आलखियोजिन धर्म्म कै ॥ नृबृतु नरक निगोदथी एहवो अनुग्रह करो पर ब्रह्म के ॥ ४ ॥ श्री ॥ साधूपणो नहिं संग्रहो श्रावक बृत न कीया अंगीकार कै ॥ आदरया तौन अराधिया ॥ तेहथी रुलीयो हूं अनंत संसार कै ॥ ५ ॥ श्री मुनि सुब्रत साहिबा० ॥ अब सम कित ब्रत आदरयौ ॥ पे आराधक उतरूपारकै ॥ जनम जीत लौ हुवै ॥ इणपर बीनवूं वार हजार ॥ ६ ॥ श्री मुनि सुब्रत साहिबा ॥ सुम- ात्रिपसुत पिता॥धन धन श्रीपदमावती

मायकै ॥ तसु सुत त्रिभुवन तिलक हुँ ॥ बंदत बिनैचँद सीस निवाय के ॥ श्री मुनि सुव्रत साहिबा० ॥७॥ २० ॥इति॥

ढाल ॥ सुणियोरे बाबा कुटिल मँजारी तोता लेगई ॥

एदेशी ॥ बिजैसैन नृप बिप्राराणी ॥ नेमी नाथ जिन जायौ ॥ चौसठ इन्द्र कियौ मिल उत्सब सुरनर आनँद पायोरे॥ १ ॥ सुज्ञानी जीवा भजलै किन इक बिसमैाम० ॥

आँकडी

भजन किया भवभवना दुकृत ॥ दुख दो भाग मिटजावै ॥ काम क्रोध मद मच्छर त्रिसना ॥ दुरमत निकट न आवैरे ॥ २ ॥ सुज्ञानी जीवा० ॥

जीवादिक नव तत्व हीये धर॥ गेय हेय

समुझीजे ॥ तीजी उपादेय उलखाने ॥ समकित निरमल कीजेरे ॥ सुज्ञानी० ॥ ३ ॥ जीव अजीव बंध एतीनूं ॥ गेय जथारथ जानौ ॥ पुन्य पाप आस्रव पर हरिये हेय पदारथमानोंरे ॥ सुज्ञानी०॥४॥संवर मोष निर्जरा ये निज गुण ॥ उपादेय आदरिये।कारन कारज समझ भली विधि ॥ भिन भिन निरणो करियेरे ॥ ५ ॥ सुज्ञानी० ॥ कारन ज्ञान सरूपी जीवको ॥ कारज क्रिया पसारो दे।तुंकी साखी सुद्धअनुभव आयोनीज जिहारोरे ॥ ६ ॥ सुज्ञानी०॥ तू सो प्रभू प्रभू सो तू है द्वैत कलपना मेटौ । सत चेतन आनन्द विनै चँद परमातम प्रभू भेटोरे॥७॥सु०॥२१॥इति॥

ढाल ॥ नगरी खूब बणीछेजी ॥एदेशी॥ श्री जिनमोहनगारोछै॥जीवनप्राणहमारोछै॥

समुद्र बिजै सुत श्री नेमीसर ॥ जादब कुल को टीकौ ॥ रतन कुँख धारनी सेवा ॥ देवी जैहनै नंद नीकौ ॥ १ ॥

ऑंकडी

सुन पुकार पसु की करुना कर जाण जगत सुखफीकौ ॥ नव भव नेह तज्यौ जोबन में ॥ उग्रसैन नृप धीकौ ॥ २ ॥श्री॥ सहस्र पुरुष सों सँजम लीधौ ॥ प्रभुजी पर उपगारी धन धन नेम राजुल की जोड़ी ॥ महाबाल ब्रह्मचारी ॥ श्री ॥ ३ ॥ बोधानँद सरूपा नंद में ॥ चित एकाग्र लगायो ॥ आतम अनुभव दशा अभ्यासी ॥ सुकल ध्यान जिन ध्या-यौ ॥ श्री ॥ ४ ॥ पूरणानंद केवलि प्रगटे परमानंद पद पायौ ॥ अष्ट करम छेदी अल बेसर सहजानंद समायौ ॥ श्री ॥५॥ नित्या

नंद निराश्रय निश्चल॥ निरविकार निर्वाणी निरांतक निरलेप निरामय ॥ निराकार वरणानी ॥ श्री ॥ ६ ॥ एहवौ ज्ञान समाधि संयुक्तो ॥ श्री नेमी सर स्वामी ॥ पूरण कृपा बिनैचंद प्रभु की अबते ओलखपामी ॥ ७॥ श्री नेमी ॥ २१ ॥इति॥

ढाल॰ जीवरे तूं सील तणौ कर संग ॥
एदेशी

अस्व सैननृप कुल तिलोरे ॥ वामा देवी नौ नंद ॥ चिंतामणि चित में बसै ॥ तौदुर टलै दुष द्वंद ॥ १ ॥ जीवरै तु पार्श्व जिनै सरवँद ॥ जड चेतन मिश्रतपणैरे ॥ करम सुभा सुभथाय ॥ ते विभ्रम जग कल्पनारे आतम अनुभव न्याय ॥ २ ॥जी॰॥ वैमी भय मानै जथारे ॥ सुनै घर वे ताल॥

त्युं मुरष आतम विषैरे ॥ मेट्यौ जग भ्रम जाल ॥३॥ जीवरे० ॥ सरप अंधारै रासडीरै रूपौ सीप मझार ॥ मृग तृसना अंबुज मृषारे। त्युं आतम में संसार ॥४॥ जीवरे० ॥ आग्नि विषै जौ मणि नहींरे ॥ सिंह सुसै सिरनाय कुसम न लागै व्यौम मेंरे ॥ ज्युं जग आतम माहि ॥ ५ ॥ जीवरे० ॥ अमर अजौनी आतमारे ॥ हूं निश्चै तिहूकाल ॥ विनैचंद अनुभव जगीरै तू निज रूप संभाल ॥ ६ ॥ जीवरे तु पार्श्व जिने सर वंद ॥२३॥ इति॥

ढाल श्रीनव कारजपोमन रगैं ॥

एदेशी

तुम पितु जनक सिद्धारथ राजा॥तुम त्रस लाडे मातरे प्राणी ॥ ज्यांसुत जाया गोद

खिलायो॥बर्धमान बिख्यातैरे प्राणी !!१॥ श्री महाबीर नमो बरणानी ॥ सासन जेहनो जांणरे ॥ प्रा० ॥ प्रवचन सार बिचारहीयामै कीजै अरथ प्रमाणरे ॥ प्रा० ॥ २ ॥ श्री महाबीर नमो बरणानी ॥

सूत्र बिनय आचार तपस्या॥चार प्रकार समाधिरे ॥ प्रा० ॥ ते करिये भवसागर तिरियै ॥ आतम भाव अराधिरे ॥प्रा०॥३॥ श्री महाबीर नमो बरणानी ॥

ज्यों कंचन तिहूँकाल कहीजै ॥ भूषन नाम अनेकरे ॥ प्रा० ॥ त्यों जगनाम चराचर जांनी ॥ है चेतन गुन एकरे॥प्रा०॥४॥ श्री० ॥ अपणो आप बिषै थिर आतम ॥ सोहं हंस कहायरे ॥ प्रा० ॥

केबल ब्रह्म पदारथ परचे पुदगल भरम

मिटायरे ॥ प्रा० ॥श्री० ॥६॥

सबद रूप रस गंधन जामें ना सपरस तष छाहिरे ॥ प्रा० ॥

तिमर उद्योत प्रभा कछु नाहीं आतम अनुभव माहिरे ॥ प्रा० ॥ श्री० ॥

सुष दुष जीवन मरन अवस्था ॥ ए दस प्रान संगातरे ॥ प्रा० ॥

इनथी भिन्न बिनैचंद रहिये ॥ ज्यों जल में जल जातरे ॥ प्रा० ॥ ७ ॥

श्री महावीर नमो बरनाणी ॥ २४ ॥इति॥

॥ कलश ॥

चौबीस तीरथ नाम कीरति गावतां मन गह गहैं ॥ कुंभट गोकुलचंद नन्दन बिनै चंद इणपर कहैं ॥ उपदेश पूज्य हमीर मुनि को तत्व निज उर में धरी ॥ उगणीस सौ छःके छमच्छर चतुर्बिंशति स्तुति इमकरी॥१॥

इति

प्रार्थना ।

विद्वज्जनों से सविनय यह प्रार्थना है कि मैंने इस पुस्तक में जैसा कि देखा, सुना पढा उसी अनुसार संग्रह किया । अतः यदि इसमें कोई काना, मात्रा, छन्दोभंग एवं ह्रस्व दीर्घादि जो कुछ अशुद्धियां रह गई हों उनको आप सज्जन कृपाकर स्वयं शुद्ध कर लेवें तथा उन अशुद्धियों से मुझे भी सूचित कर कृतार्थ करें, तदुपरान्त यह भी विनय है कि इस पुस्तक को खुले मुख तथा दीपक के सम्मुख नहीं पढें क्योंकि ऐसा करना जैनधर्म से विरुद्ध है ।

विनीत

रतनलाल महता.

॥ अथ श्री नवकार मंत्र ॥

नमो अरिहन्ताणम्—अरिहन्त प्रभु को नमस्कार होवो। अरिहन्त प्रभु कैसे हैं के ज्ञानावरणी-दर्शनावरणी मोहनी अन्तराय कर्म ये चार कर्म रूपी शत्रु को जीतकर केवल ज्ञान, केवल दर्शन सहित माहाविदेह क्षेत्र में जीवन मुक्त बिराजमान हैं वे सर्व देख सर्व जाणे आप (प्रभु) से कोई बात छिपी नहीं है ऐसे प्रभु को बारम्बार नमस्कार करता हुं।

(सिद्ध)

नमो सिद्धाणम्-सिद्ध प्रभु को नमस्कार होवो। सिद्ध प्रभु कैसे हैं के ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय-वेदनीय,मोहनीय-आयुष्य-नाम गोत्र अन्तराय ये आठ कर्म क्षयकर केवल

ज्ञान, केवल दर्शन सहित मोक्ष नगर में विदेह मुक्त विराजमान हैं। आप सर्व देखते हैं सर्व जानते हैं। आप प्रभु से कोई बात छिपी नहीं है ऐसे सिद्ध परमात्मा को मेरा नमस्कार होवो।

नमोआयरीयाणं—आचार्यजी को मेरा नमस्कार हो। आचार्य महाराज कैसे हैं—ज्ञानाचार्य[1]-दर्शनाचार्य[2]-तपाचार्य[3]-चारित्ताचार्य[4] वीर्याचार्य ये पांच आचार्य आप पाले, औराने पलावे, पालता हुवाने भला जाणे। आचार्य-मर्यादा में रहने वाले उन आचार्यजी को मेरा नमस्कार हो।

नमो उवज्झायाणं—उपाध्यायजी को मेरा नमस्कार हो। उपाध्यायजी कैसे हैं आप ज्ञान पढ़े, दुसराने पढ़ावे, पढ़ता हुवाने भला जाणे

उन उपाध्यायजी को मेरा नमस्कार हो ।

नमोलोय सव्व साहुणं—सब साधुजी को मेरा नमस्कार होवो साधुजी कैसे हैं। सतरा प्रकार का सयंम पृथ्वी अप, तेऊ, वायु, वनस्पति काय, बेइन्द्री, तेइन्द्री, चौरन्द्री, पंचेन्द्री, पीया, ऊपीया, पुजणीया, पठावणीया-अजीवकाया, मनवचनकाया, संयम- ये १७ प्रकार का सयंम आप पाले, औरा ने पलावे, पालता हुवा ने भलो जाणे उन साधुजी को मेरा नमस्कार हो ।

अनानुपूर्वी ।

१	२	३	४	५
१	२	३	५	४
१	२	४	३	५
१	२	४	५	३
१	२	५	३	४
१	२	५	४	३

(१)इस अनादि अनन्त ससार में यह जीव अनादि काल से चौरासी लत्त जीवयोनी में भ्रमण करता है तथा दुःख सहता है। दुःख से प्राप्त हुवा ऐसा चिन्तामणी रत्न समान मनुष्य जन्म पाकर यदि वि-

१	३	२	४	५
१	३	२	५	४
१	३	४	२	५
१	३	४	५	२
१	३	५	२	४
१	३	५	४	२

षय सुख, तृष्णा में लुप्त होकर धर्म नहीं करता है और प्रमादवश होकर उत्तम जन्म को वृथा गुमा देता है जैसे समुद्र में डूबता हुवा, उत्तम वाहन को छोड़ कर पत्थर को ग्रहण करता है तथा मुसीबत से प्राप्त किये हुवे चिन्तामणी रत्न को आलस्य से समुद्र में डालता है इस मनुष्य जन्म को शास्त्रकारों ने बहुत प्रकार से दुर्लभ बताया है।

१	४	२	३	५
१	४	२	५	३
१	४	३	२	५
१	४	३	५	२
१	४	५	२	३
१	४	५	३	२

(२) जिनेश्वर देवकी भक्ति गुरू की सेवा, प्राणीपर दया, सुपात्रदान, गुणी पर प्रीति और शास्त्र श्रवण यह छः बातें मनुष्य जन्म रूप वृक्ष का फल है। इसवास्ते मनुष्य

१	५	२	३	४
१	५	२	४	३
१	५	३	२	४
१	५	३	४	२
१	५	४	२	३
१	५	४	३	२

को चाहिये कि ऐसा उत्तम योग पाकर अपना समय वृथा न गुमावें। (३) धर्म अर्थ तथा काम इन तीन वर्गों के साधन बिना मनुष्य का आयुष्य पशु के तुल्य निष्फल है। इन तीनों वर्गों में धर्म को श्रेष्ठ कहा है इसके बिना अर्थ तथा काम नहीं बन सकता। चौथा मोक्ष वर्ग है पुरुपार्थ से साधा जाता है।

अनानु पूर्वी ।

२	१	३	४	५
२	१	३	५	४
२	१	४	३	५
२	१	४	५	३
२	१	५	३	४
२	१	५	४	३

(४) यह शरीर अनित्य है तथा वैभव 'धन' है सो भी अस्थिर है और हमेशा मृत्यु उपस्थित है इसवास्ते धर्म का सग्रह जरूर करना चाहिये

(५) सचा देव वह है जो

२	३	१	४	५
२	३	१	५	४
२	३	४	१	५
२	३	४	५	१
२	३	५	१	४
२	३	५	४	१

१३ दुषण रहित १२ गुण सहित ३४ अतिशय ३५ वाणी गुण करके युक्त हो तथा ६४ इन्द्रों करके पूजित हो, सोही परमात्मा अरिहंत देव है, ऐसे चौवीस तीर्थंकर प्रत्येक उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल में होते हैं वे प्रवृति मार्ग को त्याग कर निवृति मार्ग को ग्रहण करते हैं और सदुपदेश देकर तीर्थ को प्रवर्ताते हैं ।

अनानु पूर्वी ।

२	४	१	३	५
२	४	१	५	३
२	४	३	१	५
२	४	३	५	१
२	४	५	१	३
२	४	५	३	१

अष्ट कर्मों को क्षय करके केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न करके अजर अमर अविनाशी ऐसे सिद्ध मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं। (६) परमेश्वर की भाव युक्त पूजा

२	५	१	३	४
२	५	१	४	३
२	५	३	१	४
२	५	३	४	१
२	५	४	१	३
२	५	४	३	१

करने से पाप दूर होता है, और दुर्गति का निवारण, आपत्ति का विनाश, पुण्य की वृद्धि लक्ष्मी का विस्तार, आरोग्यता का पोषण, सर्वजनों के विषे प्रशंसा, प्रीति का प्रसूत होना, यश की वृद्धि, देवता की पदवी और परम्परा करके मोक्ष पद भी प्राप्त होता है।

अनानुपूर्वी ।

३	१	२	४	५
३	१	२	५	४
३	१	४	२	५
३	१	४	५	२
३	१	५	२	४
३	१	५	४	२

(७) सच्चे गुरु वे हैं जो पांच महाव्रत धारक हो ५ सुमति समित ३ गुप्ति, गुप्त, पंचाचार पालन समर्थ, पांच इन्द्रिय संवरक चुतुर्विध कषाय मुक्त हो सोही महात्मा

३	२	१	४	५
३	२	१	५	४
३	२	४	१	५
३	२	४	५	१
३	२	५	१	४
३	२	५	४	१

निर्ग्रंथ गुरु हैं । ऐसे साधु इच्छा का निरोध कर संसार दशा से विरक्त रहते हैं और वे सम्यक्त्व सहित शुद्ध चारित्र (संयम) पालते हुए उच्चगति को प्राप्त होते हैं ऐसे मुनि को शुद्ध भाव से वंदन वैयावच्च तथा भक्ति करना चाहिए ।

३	४	१	२	५
३	४	१	५	२
३	४	२	१	५
३	४	२	५	१
३	४	५	१	२
३	४	५	२	१

(८) सच्चा धर्म वह है जो अनेकान्त स्याद्वाद करके युक्त पक्षपात रहित, हिंसा करके वार्जित और ६ तत्व ७ नय ४ निक्षेप सप्तभगी, चार प्रमाण करके संयुक्त हो, हेय, ज्ञेय, उपादेय तथा उत्पादव्य ध्रुव सहित हो, सोही पर केवली भाषित धर्म है। ऐसा उत्कृष्ट परम्परा का धर्म श्रद्धा सहित पाल कर प्राणी शुभगति को प्राप्त होते हैं। श्री जिन प्रणीत सिद्धान्त श्रवण करने का फल।

३	५	१	२	४
३	५	१	४	२
३	५	२	१	४
३	५	२	४	१
३	५	४	१	२
३	५	४	२	१

अनानुपूर्वी ।

४	१	२	३	५
४	१	२	५	३
४	१	३	२	५
४	१	३	५	२
४	१	५	२	३
४	१	५	३	२

(९) जैनागम रूपी चक्षु रहित न तो सुदेव को जानते हैं न अधर्म को न गुणी को जानते हैं न निर्गुणी को न योग्यायोग्य कार्य को न सुख दुःखादि कारणों को

४	२	१	३	५
४	२	१	५	३
४	२	३	१	५
४	२	३	५	१
४	२	५	१	३
४	२	५	३	१

जानते हैं इसवास्ते जिनेन्द्र भगवान कथित शास्त्र श्रवण या स्वाध्याय कर अपना जन्म सफल करें (४) दान देने से लक्ष्मी प्राप्त होती है, शील से सुख सम्पत्ति मिलती है। तपश्चर्या करने से कर्मों का क्षय होता है और भावना भाने से भव का नाश होता है।

अनानुपूर्वी ।

४	३	१	२	५
४	३	१	५	२
४	३	२	१	५
४	३	२	५	१
४	३	५	१	२
४	३	५	[illegible]	१

(११) सर्व विरति साधु वह है जो १७ प्रकार का संयम पालते हों ६ काय की रक्षा षट आवश्यकी क्रिया दश प्रकार का यति धर्म २२ परिषह सहन करते हों ४२ दुषण रहित आहार ग्रहण व १२ प्रकार के तप करते हों अठारह सहस्र शिलग के धारी तथा सर्वज्ञ प्रवचन प्ररुपणा प्रवीण हो सो ही संयमी साधु हैं । इस प्रकार साध्वी को भी समझ लेवें ।

४	५	१	२	३
४	५	१	३	२
४	५	२	१	३
४	५	२	३	१
४	५	३	१	२
४	५	३	२	१

५	१	२	३	४
५	१	२	४	३
५	१	३	२	४
५	१	३	४	२
५	१	४	२	३
५	१	४	३	२

(१२) मनुष्य मात्र को चाहिये कि न्याय, नीति सत्य के साथ तथा पांच प्रकार के विरोध टाल कर और द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव देख कर द्रव्य को

५	२	१	३	४
५	२	१	४	३
५	२	३	१	४
५	२	३	४	१
५	२	४	१	३
५	२	४	३	१

उपार्जन करे, न कि झूठ कपट दंगा धोखा तथा चालाकी के साथ करे। कहा है:-

चौबीस तीर्थंकर का स्तवन ।

ऋषभ अजित सम्भव अभिनंदन, निरं-
जन निराकार, सुमति पदमसुपार्श्व चन्दा
प्रभु,मेट्या विषय विकार श्रीजिनमुझ ने पार
उतारो प्रभु हूं चाकर चरणारो !! श्रीजिन० ॥
सुविधिशीतल श्रेयासं वास पूज्य मुक्ति
तणा दातारो विमल अनन्त धर्मनाथ शान्ति
जिन साताकारी संसारो ॥ श्री जिन० ॥ कुंथु
अरनाथ मल्ली मुनिसुव्रत पाम्या भवजल
पारो, नमीए नेमनाथ पार्श्व महावीरजी
शासन ना सिरदारो ॥ श्री जिन० ॥ ग्यारह
गणधर बीस विरहमान सर्व साधु अणगारो
अनंती चौबीस ने नित्य २ बन्दु करगया
खेवा पारो ॥ श्री जिन० ॥ अधम उधारण,
बिरद सुणी प्रभु शरण लियो चरणारो,

अधम उधारण परम पदगामि अजर अमर अविकारो ॥ श्री जिन० ॥ रागद्वेषकर्म बीजजे बालिया बालीकिंधा सर्वेछारो, केवल ज्ञान ने केवल दर्शन, निज गुण लिनो लारो ॥ श्री जिन० ॥ दान शियल तप भावना भावो, दया धर्म तत्व अराधो ऋषी लाल-चन्दजी एणीवद विनये, प्रभु मारो करोनी निस्तारो श्रीजिन मुझने पार उतारो ॥ इति ॥

---

२० विहरमानों के नाम ।

१ श्रीमंदिरस्वामीजी
२ श्रीजुगमंदिरस्वामीजी
३ श्रीबाहुस्वामीजी
४ श्रीसुबाहुस्वामीजी
५ श्रीसुजातस्वामीजी
६ श्रीस्वयंप्रभुजी
७ श्रीऋषभानन्दजी
८ श्रीअनंतवीर्यजी
९ श्रीसूर्यप्रभुजी
१० श्रीविशालजी
११ श्रीवृजधरजी
१२ श्रीचन्द्राननजी
१३ श्रीचंन्द्रबाहुजी
१४ श्रीभुजंगजी
१५ श्रीईश्वरजी
१६ श्रीनेमप्रभुजी
१७ श्रीवीरसेनजी
१८ श्रीमहाभद्रजी
१९ श्रीदेवयशजी
२० श्रीअजितवीरजी

श्री मन्दिर स्वामी विधि में बिराजे वर्तमान काले अमर धुन गाजे जिनों के चरण शीश धरू धरू शरण। अंग अठारे मिटे जन्म मरण।

---

११ गणधर।

---

१ श्रीइन्द्रभूतिजी
२ श्रीअग्निभूतिजी
३ श्रीवायुभूतिजी
४ श्रीविगतभूतिजी
५ श्रीसुधर्मजी
६ श्रीमंडीपुत्रजी
७ श्रीमोरीपुत्रजी
८ श्रीअकाम्पितजी
६ श्रीअचलभूतिजी
१० श्रीमेतारजजी
११ श्रीप्रभासजी

१६ सतियां

१ श्रीब्राह्मीजी	६ श्रीसीताजी
२ श्रीसुंदरीजी	१० श्रीसुभद्राजी
३ श्रीचन्दनवालाजी	११ श्रीसिवाजी
४ श्रीराजमतीजी	१२ श्रीकुंताजी
५ श्रीद्रोपदीजी	१३ चेलणाजी
६ श्रीकौशल्याजी	१४ श्रीप्रभावतीजी
७ श्रीमृगावतीजी	१५ श्रीदमयंतीजी
८ श्रीसुलसाजी	१६ श्रीपद्मावतीजी

अथ श्री सोलसतीनों छन्द .

आदिनाथ आदे जिनवर वंदी सफल मनोरथ कीजिये ॥ प्रभाते उठी मंगलिक

कामे सोल सातिना नाम लीजिये ॥ १ ॥
बालकुमारी जगहितकारी ब्राह्मी भरतनी
बनड़ीए ॥ घट घट व्यापक अक्षर उपे सोल-
सतिमां जे बडीए ॥ २ ॥ बाहुबल भगिनी
सतिय शिरोमणी सुंदरी नाम ऋषभसुताए
अंक स्वरुपी त्रिभुवन मांहे जेह अनोपम
गुण जुताए ॥ ३ ॥ चन्दन बाला बालप-
णेथी शीयलवंती शुद्ध श्राविकाए ॥ अड़-
दना बाकुला वीर प्रति लाभ्या केवल लही-
व्रत भाविकाए ॥ ४ ॥ उग्रसेन धुया धारिणी
नंदनी राजेमती नेम बल्लभाए, जोबन वेशे
काम ने जीत्या संयम लइ देव दुल्लभाए ॥ ५ ॥
पंच भरतारी पांडव नारी द्रुपद तनया वखा-
णिए एक सो आठे चीर पुराणा शीयल महिमा
तस जाणीए ॥ ६ ॥ दशरथ नृपनी नारी

नीरूपम कौशल्या कुल चन्द्रिकाए शीयल सलुणी रामजनेता पुन्य तणी प्रनालीकाए ॥ ७ ॥ कोसंविक ठामे संतानिक नामे राज्य करे रंग राजीयोए तसघर धरणी मृगावती सतीसुर भुवने जस गाजियोए ॥८॥ सुलसा साची शोयलन काची राची नहीं विपया रसए मुखडुं जोतां पाप पलाए, नाम लेता मन उल्लासेए ॥ ९ ॥ राम रघुवंशी तेहनी कामीनि जनक सूती सीता सतीए जग सहु जाणे धीज करंता अनल शीतल थयो शीयलथीए ॥१०॥ सुरनर वंदित शीयल अखंडित शीवा शीव पदगामनी ए ॥ जेहने नामे निर्मल थइए, बलिहारी तस नामनीए ॥ ११ ॥ काचे तांतणे चालणी बांधी, कुप-थकी जल काढीयुंए ॥ कलंक उतारवा सतीय

सूभद्रा चंपा वार उघाड़ीयुंए ॥ १२ ॥ हस्ती-नागपुरे पांडुरायनी कुंता नामे कामिनीए ॥ पांडव माता दसे दशारनी व्हेन पतीव्रता पद्मनीए ॥ १३ ॥ शीलवती नामे शीलव्रत धारणी त्रीविधे तेहने वंदियेए ॥ नाम जपंता पातक जायें, दरीसणे दुरीत नीकंदीए ॥१४॥ नीषधानगरी नलह नरींदनी दमयन्ती तस-गेहनीए ॥ शंकट पड़ता शीयलज राख्यूं त्रीभुवन कीर्ति जेहनिए ॥ अनंग अजीता जग जन पुजीता पुफचुला ने प्रभावतीए ॥ विश्व वीरख्याता कामीत दाता, सोलमी सती पद्मावतीए ॥ १६ ॥ वीरे भाखी शास्त्र साखी, उदयरतन भाखे मुदाए ॥ व्हाणु बातां जे नरभणशे, ते लेशे सुख सम्पदाए ।

अथ श्री पांसठीयां यन्त्रनो छन्द ।



२२	३	९	१५	१६
१४	२०	२१	२	८
१	७	१३	१९	२५
१८	२४	५	६	१२
१०	११	१७	२३	४

श्रीनेमीश्वर संभवशाम, सुविधि धर्म, शान्ति अभिराम ॥ अनंत सुव्रत नमीनाथ सुजाण श्री जीनवर मुजकरो कल्यान ॥ १ ॥ अजीतनाथ चन्द्रप्रभु धीर आदीश्वर सुपार्श्व गंभीर ॥ वीमलनाथ वीमलजग जाण श्री

जीनवर ॥ २ ॥ मल्लीनाथ जिन मंगलरुप पचवीश धनुष सुन्दर स्वरुप ॥ ॥ श्री अर-नाथ नमु वर्द्धमान श्री जीनवर ॥ ३ ॥ सुमती पद्मप्रभु अवतंस वासु पूज्य शीतल श्रेयांस कुंथु पार्श्व अभीनन्दन भाण श्री जीन-वर ॥ ४ ॥ इणी परे जीनवर संभारीय दुःख दारिद्र विघ्न निवारीये पच्चीस पांसठ परमाण श्री जीनवर ॥ ५ ॥ इम भणता दुःख नावे कदा जो निज पासे राखो सदा ॥ धरीये पंच तणु मन ध्यान श्री जीनवर ॥ ५ ॥ श्री जीनवर नामे वंछित मले मन वांछित सहु आशा फले ॥ धर्मसिंह मुनी नाम निधान श्री जीनवर ॥ ७ ॥ इति

अथ श्री पांसठीयां यन्त्रनो छन्द ।



२२	३	९	१५	१६
१४	२०	२१	२	८
१	७	१३	१९	२५
१८	२४	५	६	१२
१०	११	१७	२३	४

श्रीनेमीश्वर संभवशाम, सुविधि धर्म, शान्ति अभिराम ॥ अनंत सुव्रत नमीनाथ सुजाण श्री जीनवर मुजकरो कल्यान ॥ १ ॥ अजीतनाथ चन्द्रप्रभु धीर आदीश्वर सुपार्श्व गंभीर ॥ वीमलनाथ वीमलजग जाण श्री

जीनवर ॥ २ ॥ मल्लीनाथ जिन मंगलरुप पच्चवीश धनुष सुन्दर स्वरुप ॥ ॥ श्री अर-नाथ नमु वर्द्धमान श्री जीनवर ॥ ३ ॥ सुमती पद्मप्रभु अवतंस वासु पूज्य शीतल श्रेयांस कुंथु पार्श्व अभीनन्दन भाण श्री जीन-वर ॥ ४ ॥ इणी परे जीनवर संभारीय दुःख दारिद्र विघ्न निवारीये पच्चीस पांसठ परमाण श्री जीनवर ॥ ५ ॥ इम भणता दुःख नावे कदा जो निज पासे राखो सदा ॥ धरीये पंच तणु मन ध्यान श्री जीनवर ॥ ५ ॥ श्री जीनवर नामे वंछित मले मन वांछित सहु आशा फले ॥ धर्मसिंह मुनी नाम निधान श्री जीनवर ॥ ७ ॥ इति

धर्म शिक्षा।

(१) यदि समाज हित का भाव दृढ़ धार्मिकता से जागृत होतो वह समाज हित का भाव खूब अच्छीतरह चमक उठेगा।

(२) जिसका परमात्मा के सिवाय और कोई अवलंब नहीं हैं वह जानता ही नही कि संसार में पराभाव भी कोई चिज है।

(३) मेरा विश्वास है कि बिना धर्मका जीवन बिना सिद्धान्त का जीवन होता है। और बिना सिद्धान्त का जविन वैसा ही है जैसा कि बिना पतवारका जहाज इधर से उधर मारा २ फिरेगा और कभी अपने उद्दष्ट स्थान

तक नहीं पहुंचेगा, उसी तरह धर्म हीन मनुष्य भी संसार सागर में इधर उधर मारा मारा फिरेगा और कभी अपने उद्दिष्ट स्थान तक न पहुचेगा।

(४) केवल एक ही विश्वव्यापी धर्म है और वह परमात्मा की भक्ति है।

(५) आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना हमारा सबसे पहिला और आवश्यक कर्तव्य है।

(६) धर्म की नाप तो प्रेम से दया से और सत्य से होती है।

(७) मैंने जीवन का एक सिद्धान्त निश्चित किया है। वह सिद्धान्त यह है कि किसी मनुष्य का चाहे वह कितनाही महान

करें उससे कुछ भी सुधार न होवेगा, इसलिये धर्म के कार्य में उद्यम करें ।

भिन्न भिन्न धर्म एक ही स्थान पर पहुंचने के मार्ग है हमने जुदा २ रास्ते पकड़े हैं तो क्या हुआ ? इसमें क्या आपत्ति है, कर्म क्षय किये विगर मोक्ष किसी का नहीं होता, इसलिये कर्मक्षय का उद्योग करें ।

(१) श्री ठाणांगजी सूत्र में फरमाते हैं कि जो लोग स्वहाथ से उल्लास से लक्ष्मी का सदुपयोग नहीं करते हैं उसकी लक्ष्मी चोर, रा... अग्नी, जल, देवता, कुटुम्ब या पृथ्वी ले जाती है ।

(२) लक्ष्मी अभयदान, ज्ञानदान में खर्च की उसने सर्वदान दिया है ।





क्या ईश्वर जगत्कर्त्ता है?



"पाठको, खोलो पलक, आंखें उघाड़ो देख लो।
ज्ञानदिनकर का उजाला होगया है देख लो॥
अंधश्रद्धा की कठिन ज़ंजीर को अब तोड़ दो।
सत्यकी कर खोज अपना पक्ष झूठा छोड़ दो॥



ईश्वरको सृष्टिकर्त्ता माननेवाले महाशय अपने पक्षके समर्थनमें यह कहा करते हैं कि मेज, कुरसी, बेंच, लेम्प, चारपाई, टोपी, जूता, कुरता, कागज, कलम, स्याही, लड्डू, पेडा, बूरा, खांड, मिठाई वगैरह जितनी चीजें हम देखते है, वे सब किसी न किसीकी बनाई हुई हैं, बिना बनाये नही बनीं। इसी तरह इतने बडे जगत्का भी कोई न कोई बनानेवाला जरूर है, बिना बनाये नही बन गया, इसका बनानेवाला सर्वव्यापक, सर्व-शक्तिमान, दयालु, परमात्मा है। इसके उत्तरमें निवेदन है कि यदि बिना बनानेवालेके कोई चीज़ नहीं बन सकती और हरएक चीजका बनानेवाला जरूर

कोई न कोई है तो जगत्कर्ता ईश्वरका कर्ता कौन है? उसको किसने बनाया और फिर उसके बनानेवालेको किसने बनाया? इस तरह कोई अन्त न आगया और किसी न किसीको मानना पडेगा जिसको किसीने नहीं बनाया। और यह मानते ही यह सिद्धांत कि बिना बनानेवालेके कोई चीज नहीं बन सकती, गलत हो जायगा। अगर थोड़ी देरके लिये, आपकी युक्ति मान भी ली जाय कि बिना किसीके बनाये हुये कोई चीज नहीं बनती है, तो यह भी जरूर है कि उस चीजके बनानेका कोई न कोई वक्त जरूर होगा जब कारीगरने उसको बनाया। अब बतलाइये कि अगर ईश्वरने इस जगत्को बनाया तो कब बनाया और कितनी देरमें बनाया? 'बनाने' शब्दसे यह ज्ञात होता है कि किसी चीजसे किसी चीजको बनाया। सो बतलाइये कि ईश्वरने जगत्को किससे और किस चीजका बनाया? अगर यह कहो कि किसी औजार वगैरहसे प्रकृति वगैरह चीजोंको बनाया, तो उन औजार और प्रकृति वगैरहको किसने बनाया? यदि स्वयं ईश्वरने बनाया तो ईश्वर निराकार है या साकार? यदि निराकार कहोगे तो निराकारसे साकार जगत् कैसे बन गया? साकारसे साकार बनता है, निराकारसे साकार नहीं बन सकता। यदि ईश्वर साकार है तो उसमें ससारी जीवोंके समान हाथ, पैर, नाक, कान

वगैरह होने चाहिये और इनके होनेसे ईश्वरमें और ससारी जीवोंमें कुछ भी भेद न रहा और उन्होंके समान वह रागद्वेषयुक्त क्रिया-चर्यावाला ठहरा, अतएव ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं है।

इसके पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि सृष्टि बनानेसे पहिले क्या हालत थी? यदि कुछ भी नहीं थी तो यह जगत् कहासे बना दिया और कहा बना दिया? पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष, सूरज, चांद, नदी, पहाड वगैरह चीजें कहांसे आई और किस तरह आई और जहां इनको रक्खा वहा पर पहिले क्या था? क्या शून्य था? यदि दयानन्दियोंकी तरह यह कहो कि प्रलयके बाद ईश्वर जगत्को जो प्रलयकालमे सूक्ष्म परमाणुओंकी हालतमें रहता है, स्थूल रूपमे बनाता है, तो यह बतलाओ कि वे परमाणु किस हालतमे थे और कहा थे? यदि पृथ्वीपर थे तो ये परमाणु और पृथ्वी किसने बनाये और कब बनाये? प्रलयकालमे ये परमाणु एकसे ही थे या छोटे बडे? सब समान गुणोंके धारी थे या भिन्न २? जड या चैतन्य? या कुछ जडरूप और कुछ चैतन्यरूप? चैतन्यका जडसे सम्बन्ध था या नहीं? चैतन्य सुखकी हालतमे था या दुःखकी? सब जीवोंकी दशा एकसी थी या पृथक् २? उनमें और मुक्त जीवोंमें क्या भेद था? फिर प्रलयके बाद ईश्वरने उनको कैसी शक्ल दी

कोई न कोई है तो जगत्कर्ता ईश्वरका कर्ता कौन है ? उसको किसने बनाया और फिर उसके बनानेवालेको किसने बनाया ? इस तरह कोई अन्त न आगया और किसी न किसीको मानना पडेगा जिसको किसीने नहीं बनाया। और यह मानते ही यह सिद्धांत कि बिना बनानेवालेके कोई चीज नही बन सकती, गलत हो जायगा। अगर थोड़ी देरके लिये, आपकी युक्ति मान भी ली जाय कि बिना किसीके बनाये हुये कोई चीज नहीं बनती है, तो यह भी जरूर है कि उस चीजके बनानेका कोई न कोई वक्त जरूर होगा जब कारीगरने उसको बनाया। अब बतलाइये कि अगर ईश्वरने इस जगत्को बनाया तो कब बनाया और कितनी देरमें बनाया ? 'बनाने' शब्दसे यह ज्ञात होता है कि किसी चीजसे किसी चीजको बनाया। सो बतलाइये कि ईश्वरने जगत्को किससे और किस चीजका बनाया ? अगर यह कहो कि किसी औजार वगैरहसे प्रकृति वगैरह चीज़ोंको बनाया, तो उन औजार और प्रकृति वगैरहको किसने बनाया ? यदि स्वय ईश्वरने बनाया तो ईश्वर निराकार है या साकार ? यदि निराकार कहोगे तो निराकारसे साकार जगत् कैसे बन गया ? साकारसे बनता है, निराकारसे साकार नहीं बन सकता। यदि ईश्वर है तो उसमें संसारी जीवोंके समान हाथ, पैर, नाक, कान

वगैरह होने चाहिये और इनके होनेसे ईश्वरमें और ससारी जीवोंमें कुछ भी भेद न रहा और उन्होंके समान वह रागद्वेषयुक्त क्रिया-चर्यावाला ठहरा, अतएव ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं है ।

इसके पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि सृष्टि बनानेसे पहिले क्या हालत थी ? यदि कुछ भी नहीं थी तो यह जगत् कहासे बना दिया और कहा बना दिया ? पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष, सूरज, चाद, नदी, पहाड वगैरह चीजें कहांसे आई और किस तरह आई और जहा इनको रक्खा वहा पर पहिले क्या था ? क्या शून्य था ? यदि दयानन्दियोंकी तरह यह कहो कि प्रलयके बाद ईश्वर जगत्को जो प्रलयकालमे सूक्ष्म परमाणुओंकी हालतमें रहता है, स्थूल रूपमें बनाता है, तो यह बतलाओ कि वे परमाणु किस हालतमें थे और कहां थे ? यदि पृथ्वीपर थे तो ये परमाणु और पृथ्वी किसने बनाये और कब बनाये ? प्रलयकालमें ये परमाणु एकसे ही थे या छोटे बडे ? सब समान गुणोंके धारी थे या भिन्न २ ? जड या चैतन्य ? या कुछ जडरूप और कुछ चैतन्यरूप ? चैतन्यका जडसे सम्बन्ध था या नहीं ? चैतन्य सुखकी हालतमें था या दुःखकी ? सब जीवोंकी दशा एकसी थी या पृथक् २ ? उनमे और मुक्त जीवोंमे क्या भेद था ? फिर प्रलयके बाद ईश्वरने उनको कैसी शक्ल दी

और किस तरह दी ? क्या हाथ पैर वगैरह इन्द्रियोंसे कुम्हार बढ़ईकी तरह बनाया या अपनी जबानसे केवल " बन जाओ " वगैरह कोई शब्द कह दिया जिससे सब चीज़े बन गईं। पहाड भी बन गये, जानवर भी बन गये। यदि हाथ पैर वगैरहसे बनें, तो ईश्वर हाथ पैर वगैरह वाला साकार ठहरा और इतने बडे ब्रह्मांडके बनानेमे उसे कुछ वर्ष जरूर लगे होंगे। कारण कि हाथ पैर वगैरहकी शक्ति परिमित है। यदि किसी वचनसे जगत् बना दिया, तो वह शब्द कहासे निकला और किसने सुना ? क्या ईश्वरके जबान थी और सूक्ष्म परमाणुओंके कान थे कि उसने कहा और उन्होंने सुना ? ऐसा होना बिलकुल असंभव और प्रत्यक्ष-विरुद्ध है। फिर सूक्ष्म परमाणुओंमें ऐसी शक्ति कैसे हो गई ? यदि यह कहो कि प्रलयका समय पूर्ण होनेपर सब चीज़े अपने अपने स्वभावानुसार बन गईं। सो प्रथम तो ऐसा स्वभाव होना ही असम्भव है, यदि मान भी लिया जावे तो फिर ईश्वरने क्या किया ? अपने आप ही हो गया। ईश्वरको जो प्रलयके बाद जगत्का बनानेवाला मानते हैं सो अव्वल तो ऐसा प्रलय ही नहीं हो सकता कि जब संसारकी सब चीजें सूक्ष्म परमाणुओंकी हालतमें हो जायँ और इतने ही दिनों तक यह हालत रहे जितने दिनों तक सृष्टि रही। दूसरे अगर हो भी तो बिना वर्षों लगाये, कल

एंजिनसे काम लिये, पचासों सैकडों इंजिनियर मजदूर लगाये, यह जगत् नहीं बन सकता, और इसमें भी स्त्री पुरुषके सयोग वगैर मनुष्य उत्पन्न नहीं हो सकते । सूक्ष्म परमाणुओंसे स्त्री पुरुषका होना नितांत असम्भव और प्रमाण बाधित है । यह बात कभी नये प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सकती और न बुद्धि ही इस बातको ग्रहण कर सकती है । सायस इस बातको बतला रही है कि ऐसा होना प्रकृतिके नियम विरुद्ध है । इससे जाहिर होता है कि ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं है ।

अस्तु, इस बातको जाने दीजिये । यह कहिये कि ईश्वरने जगतको क्यों बनाया ? बिना इच्छा या आवश्यकताके कोई किसीको नही बनाता है । जब हमको भूख लगती है तो हम भोजन करते हैं । जब ठंड लगती है तब कपडा ओढते हैं । इसी तरह बताइये कि ईश्वरको क्या इच्छा थी या क्या आवश्यकता थी कि उसने जगत् बनाया ? यदि उसे कुछ इच्छा थी तो क्या ? इच्छा तो रागीद्वेषियोंमें होती है । ईश्वर न रागी है न द्वेषी, फिर उसमें इच्छाका होना कैसे हो सकता है ? यदि ईश्वरमें इच्छा ही थी और वह इस बातकी थी कि लोग स्वतंत्रतापूर्वक कर्म करें और फिर उनका फल उनको दिया जावे तो इसमें ईश्वरने क्या भलाई सोची ? वह तो सर्वज्ञ था, जानता

था कि ये लोग निंद्यसे निंद्य कर्म करेंगे, अतएव इनको स्वतंत्रता न देनी चाहिये और इनको पैदा करके बुरे रास्ते पर न चलाना चाहिये। यदि इस अभिप्रायसे पैदा किया कि ये लोग मेरी भक्ति करेंगे, स्तुति करेंगे, तो यह उद्देश्य भी ईश्वरपनमें धब्बा लगाता है। उसको स्तुति और भक्तिकी क्या परवा? और फिर उनसे जिनको उसने स्वयं बनाया। मान लो यही इच्छा थी, तो यह तो पूर्ण नहीं हुई। नित्य देखनेमें आता है कि बहुतसे लोग ईश्वरकी स्तुति तो क्या उल्टा उसको गालियां देते हैं और उसका नाम तक भी नहीं लेते। क्या ईश्वर सर्वज्ञ न था? क्या उसको ज्ञान न था? यदि था तो ऐसा क्यों किया? यदि अपनी भक्तिकी तो उसे चाह न थी किन्तु वैसे ही सृष्टि बना दी कि देखें लोग क्या करते हैं, तो इससे तो कोई लाभ न निकला। यह तो तमाशा देखना हुआ। लोग तकलीफ उठावें, पीडा सहें, भूखसे मरें और ईश्वर चुपचाप तमाशा देखे। यह बिलकुल झूठ है और इससे जाहिर है कि ईश्वरने दुनियाको नहीं बनाया। उसको बनानेवाला माननेमें वह रागी द्वेषी ठहरता है और उसके सर्वज्ञपनेमें दूषण लगता है।

अस्तु, इसे भी जाने दीजिये। यह बतलाइये कि ईश्वरको यह इच्छा उसी समय क्यों हुई जब उसने यह सृष्टि बनाई? उससे पहले या पीछे क्यों न हुई? इन प्रश्नोंका कुछ भी

उत्तर नहीं। इससे भी जाहिर होता है कि ईश्वरने सृष्टि नहीं बनाई। इसको भी जाने दीजीये। यह बतलाइये कि सृष्टिकी आदिमे ईश्वरने प्रथम क्या चीज़ बनाई? जीव बनाया या कर्म? या दोनों? यदि एक बनाया तो उसका दूसरेसे सम्बन्ध कैसे किया और क्यों किया? यदि दोनों साथ साथ बनाये, तो पहले शुभ कर्म बनाये या अशुभ और जीवका किसके साथ मेल किया? पहिले जीव किस दशामें और किस शरीरके धारण करनेवाले बनाये और शेष शरीरधारी कब और क्यों बनाये? मनुष्य जैसा हम पहिले कह आये हैं बिना पिताके वीर्य्य और माताके रजके संयोगके उत्पन्न ही नही हो सकते। अगर यह कहा जाय कि ईश्वर सर्व-शक्तिमान है उसने बना दिये तो यह बताओ कि ईश्वरने अपनी सर्वशक्तिसे बुरी बातोंको क्यों न रोक दिया? क्यों जहरीले जानवर, कडवी बदबूदार दुख देनेवाली चीज़ें बनाई? जो हिंसा, झूठ, चोरी वगैरह पापकर्म देखनेमें आते हैं इनको क्यों न मिटा दिया? शराब वगैरह धर्म कर्मको नाश करनेवाली चीज़ोंको जाहिर ही क्यों होने दिया? इन बातोंमें ईश्वर अपनी शक्तिको काममें क्यों न लाया? यदि यह कहा जावे कि अगर ये चीज़ें न होती तो लोगोंको अच्छे बुरे कामोंकी क्या तमीज़ रहती? ये तो इस ही लिये हैं कि लोग इनको छोडे, धर्मानुकूल चले और ईश्वरक

प्रसन्न करें। महाशयो, कैसी अनोखी बात है ! इससे तो यह सिद्ध हुआ कि ईश्वरने ही मनुष्योंसे बुरे काम कराये। जब बनाते समय जीव कर्म रहित थे और वे सब बराबर थे, तब उनको शरीरधारी बनाकर क्या लाभ निकाला ? उलटा उनको जीवन, मरण, रोग, शोक, दुःख, भयसे ग्रसित करके अच्छेसे बुरा बना दिया। फिर यदि बनाया भी था तो अच्छी २ बातोंको क्यों न रक्खा ? इसमें क्या हर्ज था ? बुरी बातोंसे सिवाय हानिके क्या लाभ हुआ और उसका जवाब देह ईश्वरके सिवा और कौन है ? आजकल देखनेमे आता है कि १०० में ८० आदमी बुरे काम करते हैं और ईश्वरकी आज्ञाके विरुद्ध कार्य करते हैं। जिधर देखो भलाईके बदले बुराई ही बुराई हो रही है। ईश्वर तो आगेकी बात जानता था। उसने क्या जान बूझकर बुराई पैदा करके लोगोंको बुरे कामोंकी तरफ झूकाया या लोगोंने उसकी आज्ञाके विरुद्ध मनमानी की ? यदि जान बूझकर किया तो ईश्वर हितैषी नहीं और जब हितैषी ही नहीं तो फिर हमको उसपर श्रद्धा और उससे क्या आशा हो सकती है ? वह तो हमारा शत्रु ठहरा। यदि लोगोंने मनमानी की तो ईश्वरने ऐसा क्यों होने दिया ? अपनी क्तिका प्रयोग क्यों नहीं किया ? यदि प्रयोग करते हुये भी लोग नें तो ईश्वरकी शक्ति कहां रही ? ऐसा माननेसे वह सर्वशक्तिमान

ी नहीं ठहर सकता। ईश्वरको हितैषी पूज्य पिता कहते हैं, परन्तु
सको कर्ता माननेसे वह कदापि हितैषी पिता नहीं हो सकता।
सारी हितैषी पिता सदा अपने प्रिय पुत्रको बुरे कामोंसे हटाता
, रात दिन उसके सुधारनेका उद्योग करता है और उसमें अपनी
ाक्त्यनुसार बहुत कुछ सफलता देखता है। परंतु पूर्ण सफलता इस
ारणसे नहीं होती कि उसकी शक्ति बहुत थोड़ी है। यदि उसमें
र्वशक्ति हो तो वह एक मिनटमें अपने पुत्रको खोटे मार्गसे हटाकर
ाच्छे मार्ग पर ले आवे किन्तु परमात्मा तो सर्वशक्तिमान हितैषी
पेता है, वह तो अपनी शक्तिसे सब कुछ कर सकता है। फिर
ाम लोगोंको क्यों एकदम ऐसी बुद्धि नहीं देता कि हम तुरत बुरी
ातोंको छोड दें? लेकिन ऐसा देखनेमें नहीं आता। इससे यह
सेद्ध हुआ कि वह इस कर्ताहर्तापनके झगड़ेमें नहीं है। यदि है
ो वह अल्पशक्तिधारी और हमारा द्वेषी है, पिता नहीं कुपिता है
ाल्कि शत्रु है।

यदि यह कहा जावे कि ईश्वरने प्रारम्भसे ही जीवोंको कर्म
ारनेके लिए स्वतंत्र किंतु फल भोगनेके लिए परतंत्र बनाया है, तो
ाह बतलाइए कि जीवको जो ज्ञान शुरूमें दिया गया उससे जीव
ुरे कामोंकी ओर झुका या बुरे काम और बुरी बातोंको देखकर
ुरे काम करने लगा? यदि ज्ञानसे, तो ऐसा ज्ञान जीवको क्यों

दिया ? इसका दोषी ज्ञानदाता अर्थात् ईश्वर है। यदि और चीज़ोंसे ऐसा हुआ, तो वे चीजें भी ईश्वरने बनाई हैं, अतएव इस दशामें भी ईश्वर ही दोषी ठहरता है। इससे भी जाहिर है कि ईश्वरने जगत्को नहीं बनाया।

यदि यह कहा जाय कि जीव प्रकृति आदि हैं, ईश्वरने इनको नहीं बनाया, किंतु कर्मानुसार जीवको अच्छा बुरा शरीर दिया और उसको सुख दुःख पहुंचाया, तो इससे स्वयं सिद्ध है कि सृष्टि जो जीव, प्रकृति इन दो चीजोंका ही समुदाय है अनादिसे है, इनको किसी ईश्वरने नही बनाया। यदि यह कहा जाय कि प्रलयके बाद जीव प्रकृतिको शकल दी, तो फिर वही प्रश्न उठता है कि शकल देनेसे पहिले क्या दशा थी, वह शकल किस तरह दी और कैसे दी ?

यह भी जाने दीजिए, अब फल देनेको भी देखिये। यदि यह कहा जावे कि ईश्वर कर्मानुसार जीवोंको फल देता है तो यह बताइए कि फल ठीक कर्मानुसार ही देता है या दया करके अथवा क्रोध करके उससे कम जियादह भी कर सकता है और करता है। यदि कम या जियादह न करके ठीक कर्मानुसार ही देता है, तो वह कर्मके आधीन हुआ और उससे स्तुति, विनती, प्रार्थना वगैरह करना सब व्यर्थ ठहरा। कारण कि ईश्वर तो वैसा ही फल देगा,

जैसा कर्म करेंगे। फिर क्या जरूरत है कि प्रार्थना वगैरह करके अपने समयको नष्ट करें और चिन्ता करें। यदि ईश्वर कर्मफलको कम जियादह भी कर सकता है और करता है तो न्यायवान् न रहा। सब कुछ प्रार्थना वगैरह पर ही रहा। घोरसे घोर पाप करके प्रार्थना कर ली जाय, क्षमा हो जायगी और ऐसा होनेसे अच्छे बुरे कर्मोंका कुछ भी विचार न रहेगा। इससे जाहिर है कि ईश्वर फलदाता नही है। ईश्वर मानना सर्वथा प्राण—बाधित और युक्ति—शून्य है। क्योंकि यदि ईश्वरको कर्मफलदाता माना जाय, तो जीव कर्म करनेमें भी कदापि स्वतंत्र नही हो सकता। जैसे किसी जीवने कोई ऐसा कर्म किया कि जिसका फल यह होता है कि उसका धन नाश हो जाय, ऐसा होनेमे कोई ईश्वर साक्षात् तो कर्मफल देता ही नही किंतु किसी दूसरेके ही द्वारा दिलाता है। मान लिया जाय कि ईश्वरने किसी चोरको भेजकर उसका धन चुरवा लिया और किसीके द्वारा कुछ कष्ट दिलवाया जिससे उस जीवको उसके कर्मोंका फल प्राप्त हुआ। अगरचे चोर या और कोई जिसके द्वारा कर्मका फल मिला ईश्वरकी आज्ञा पालनेसे सर्वथा निर्दोष हैं। परन्तु उसको भी दण्ड मिलता है और बुरा कर्म करनेके कारण ईश्वरका भी अपराधी ठहरता है। इस तरह डबल सजा मिलती है। संसारमे राजाके नौकरको राजाकी आज्ञानुसार अपराधीको दण्ड देनेसे किसी

प्रकारका कोई दण्ड नहीं मिलता, परंतु ईश्वरका काम करनेवालेको मिलता है। इससे भी सिद्ध हुआ कि जगत्कर्ता और कर्मफलदाता ईश्वर नहीं है।

इसे भी जाने दीजिये। जगत्कर्ता माननेवाले महाशय ईश्वरको सर्वव्यापक मानते हैं अर्थात् ईश्वर आकाशकी तरह सब जगह पर है। इस कथनमें पूर्वापर विरोध है। यदि ईश्वर सर्वव्यापक है तो वह जगत्कर्ता कभी नहीं हो सकता। क्योंकि विना हिलन–चलन किये कोई काम नही हो सकता और जो सर्वव्यापी होता है वह हिलनचलन कर नहीं सकता। जैसे आकाश। कारण कि हिलन–चलनके लिये स्थानकी जरूरत होती है और सर्वव्यापक होनेसे स्थान कही रहता नहीं। या तो ईश्वरको कर्ता मानो और उसके सर्वव्यापकपनेसे इनकार करो, या ईश्वरको सर्वव्यापक मानो और जगत्कर्ता माननेको छोडो। दोनों एक दूसरेसे विरोधी बातें ईश्वरमे नही रह सकतीं। इससे भी सिद्ध हुआ कि ईश्वर जगत्कर्ता नहीं है।

इसके अतिरिक्त जब ईश्वरको जगत्कर्ता और सर्वव्यापी दोनों मानते हो, तो दान पुण्य करनेवाला भी ईश्वर हुआ और लेनेवाला भी ईश्वर भी रहा। इस तरह लेने देनेमें भेद न हुआ। ईश्वरने अपना दान आप ले लिया। इससे तो दान वगैरह करना ही व्यर्थ हुआ। ऐसे ही मारनेवाला भी ईश्वर है। और मरनेवाला भी ईश्वर

है । अतः ईश्वरने ईश्वरको मारा । कोई किसीका शत्रु मित्र न रहा। चौर जब चोरी करता है, उसमे भी ईश्वर है, व्यभियारी जब व्यभिचार करता है उसमे भी ईश्वर है, यदि ऐसा ही है और एक ईश्वर सब जगह है तो चांडाल, राजा वगैरेहको ऊंचा नीचा करनेसे क्या गरज ? ये बातें निरी भद्दी है और इनसे जाहिर है कि ईश्वर जगत्कर्ता कदापि नही है और जब कर्ता नहीं तब हर्ता भी नहीं हो सकता ।

जहा तक विचार करके देखते हैं ईश्वरको जगत्कर्ता माननेमें अनेक शंकाएं उठती है और सैकडों प्रश्न पैदा होते हैं। उसके सारे गुण नष्ट हो जाते हैं । न वह सर्वज्ञ रहता है न हितोपदेशी और न सर्वशक्तिमान सर्वव्यापी रहता है। किंतु रागी द्वेषी, संसारी मनुष्यके समान परिमित शक्ति और ज्ञानका धारी ठहरता है । ऐसा मानना एक प्रकारसे ईश्वरका अविनय करना है और उसको गालियां सुनाना है । अतएव ईश्वर कभी जगत्कर्ता नही है और उसको जगत्कर्ता न माननेमें कोई बाधा भी नही । विज्ञानशास्त्र इस बातको स्पष्टतया बतला रहे हैं और तजरबे कर करके दिखला रहे हैं कि संसारमें जितनी चीजें बनती हैं वे सब स्वयमेव एक दूसरेके मिलने बिछुरने और अपने वीर्यप्रभाव व स्वभावसे बनती रहती हैं । दो चीजोंके मिलनेसे तीसरी चीज बन जाती है और

समय समयपर उनकी शकल बदलती रहती है। न कोई चीज नाश होती और न कोई नवीन पैदा होती है। एक चीजकी हालतका बिलकुल बदल जाना दूसरी चीजको पैदा करता है और उस बदलनेवाली चीजका नाश होना कहलाता है, परन्तु उस चीजका गुण चाहे उसकी कैसी ही हालत हो जाय कभी नही बदलता वह सब सदा ज्योंका त्यों रहता है, यह द्रव्यका लक्षण है और इसी लक्षणके धारी जीव, अजीवी, दो द्रव्य अनादि कालसे इस संसारमे पाये जाते हैं। जीव अजीव (जड) से मिला हुआ है और जिस तरह शराब वगैरह जड चीजोंके पीनेसे स्वयं नशा हो जाता है अथवा ताकत देनेवाली चीजके खानेसे शरीरमें ताकत आती है, अगरचे शराब और ताकत देनेवाली चीजोंकी यह इच्छा नही होती और न उनको इस बातका ज्ञान ही होता है, इसी तरह जीव जड (पुद्गल) से मिला हुआ अपने मनके शुभ अशुभ विचारों जबानसे निकले हुये कडवे मीठे शब्दोंसे और शरीरसे किए हुए या कराये हुये अच्छे बुरे कामोंकी वजहसे पुद्गलरूप कर्मोंको अपनी ओर खींचता है और कषायानुसार उनको उसी प्रकार परिणमाता है जैसे आगसे तपा हुवा लोहेका गोला उसपर ए पानीको अपनी तरफ खींचकर अपनेमें मिला लेता है।

और कर्मरूप पुद्गलके इस एकमेक सम्बन्ध होनेको बंध

कहते है। ये बधे हुए कर्म कषायानुसार अच्छा बुरा फल देनेको समर्थ होते हैं। फल भोगनेमें किसी भी ईश्वरकी आवश्यकता नही। रहा पैदा करनेकी निस्बत, सो जैसा हम पहिले कह आए हैं पैदा तो कभी कोई चीज़ इस तरह हुई ही नहीं कि पहिले उसका अभाव हो, अब सद्भाव हो गया हो। जीव, अजीव जिनके सिवाय संसारमें कोई चीज नहीं, सदासे हैं और सदा रहेंगे। जीवका अनादि कालसे कर्मोके साथ सम्बन्ध है और इसी कारणसे संसारमें भ्रमण कर रहा है और जब तक कर्मोका बंधन दूर न होगा तब तक वह संसारमें संसरण करता रहेगा। बंधन दूर हो जानेपर आत्माका शुद्ध स्वरूप प्रगट हो जायगा और परमात्मा पदको पहुच जायगा। उसी दशाको पहुंचना जीवमात्रका उद्देश है और उसीके लिए उपाय करना उसका कर्तव्य है।

अब हम इस लेखको जियादह बढाना नही चाहते केवल इतना कहकर समाप्त करते हैं कि ईश्वरको सृष्टिकर्ता हर्ता मानना सर्वथा असत्य और उसके अनन्त गुणोंको घटाना है। ईश्वरमें कर्ता हर्ताका जरा भी दूषण नहीं है, वह कर्मफल रहित शुद्ध आत्मा है अनंत दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यका धारी है, भूख, प्यास, जन्म, मरण, रोग, शोक, भय, विस्मय, खेद, स्वेद, राग, द्वेष वगैरह दोषोसे रहित है। भावार्थ—सच्चा ईश्वर वही है, जो:—

न द्वेषी हो न रागी हो, सदानन्द वीतरागी हो।
वह सब विषयोंका त्यागी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥टेक॥
न खुद घट २में जाता हो, मगर घट २ का ज्ञाता हो। १
वह सत् उपदेश दाता हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥
न करता हो न हरता हो, नहीं अवतार धरता हो।
न मारता हो न मरता हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥

ज्ञानके नूरसे पुरनूर हो, जिसका नहीं सानी।
सरासर नूर नूरानी, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥
न क्रोधी हो न कामी हो, न दुश्मन हो न हामी हो।
वह सारे जगका स्वामी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो।
वह ज़ाते पाक हो, दुनियाके झगडोंसे मुबर्रा हो।
आलिमुलगैब हो बेऐब, ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥
दयामय हो शांतिरस हो, परम वैराग्यमुद्रा हो।
न जाबिर हो न काहिर हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥

---

१ प्रकाश। २ बराबरका। ३ सहायक। ४ रहित। ५ सर्वज्ञ, ...गे पीछेकी छिपी हुई बातोंको जाननेवाला ६। जुल्म करनेवाला, ...ी। ७ क्रोधी दुष्ट, अन्यायी।

निरञ्जन निर्विकारी हो, निजानन्दरसविहारी हो।
सदा कल्याणकारी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो॥
न जगजंजाल रचता हो, करम फलका न दाता हो॥
वह सब बातोंका ज्ञाता हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो॥
वह सच्चिदानन्दरूपी हो, ज्ञानमय शिवसरूपी हो।
आप कल्याणरूपी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो।
जिस ईश्वरके ध्यान सेती, बने ईश्वर कहै न्यामत।
वही ईश्वर हमारा है, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो॥





Printed by-

Moolchand Kasandas Kapadia at his "Jain Vijaya" Printing Press, near Khapatia Chakla, Laxminarayan's Wadi-Surat.

Published by-

Lala Chiranjilal Jain, Secretary Shree Atmanand Jain Tract Society, From AMBALA City.



प्रार्थना ।

हे प्रभो आनन्ददासिन्धो, बुद्धि मुझको दीजिये ।
हे दीनबन्धो पाप सब, मेरा निवारण कीजिये ।
इन्द्रियां औ मन मेरा, वश में रहे मेरे सदा ।
आया शरणमें आपके, मुझपे कृपा अब कीजिये ।
दुर्गुण मेरे में होय जो, कुछ आप शीघ्र नसाइये ।
शक्ति अपनी दीव्य अबतो, हे दयामय दीजिये ।
शूरता औ धीरता औ, तेज मुझमें हो सदा ।
हे दयानिधि अब मेरी, यह प्रार्थना सुन लीजिये ।
संगति सदा हो सज्जनोंकी, श्रेष्ठ पुरुषोंका चलन ।
अन्तःकरणमें भावना, मुनियोंकी सुन्दर दीजिये ।
ऐसी दया हो जो मेरा, यह ब्रह्मचर्य बना रहे ।
शान्ति सुख जिसमें मिले, उस परम पदको दीजिये
भावना प्रकटे हृदय में, मेरे समकित रत्न की ।
हे विभो निज भक्तको, अब आप अपना लीजिये ।

शान्ति प्रभुजी का स्तवन ।



शान्ति प्रभुजी शान्तिताका स्वाद हमको दीजिये
नष्ट करके कर्म सारे पार खेवा कीजिये ॥
भक्ति से तो शक्ति हमरी हो प्रकट परमात्मा ॥
सुधरे भारत की दशा होवे सभी धर्मात्मा ॥
हे प्रभु आनन्द दाता ज्ञान हमको दीजिये ॥
शीघ्र सारे सद्गुणों को पूर्ण हममें कीजिये ॥
लीजिये हमको शरणमें हम सदाचारी बने ॥
ब्रह्मचारी धर्मरक्षक शीलव्रत धारी बनें ॥
शान्ति प्रभुजी शान्तिताका स्वाद हमको दीजिये
नष्ट करके कर्म सारे पार खेवा कीजिये ॥



बोलो श्रीमहावीर स्वामी की जय !

बोलो जैन-धर्म की जय !

पहिला पाठ ।

नमोक्कार मन्त्र ।

नमो अरिहंताणं	अर्हन्तों को नमस्कार हो
नमो सिद्धाणं	सिद्धों को नमस्कार हो
नमो आयरियाणं	आचार्यों को नमस्कार हो
नमो उवज्झायाणं	उपाध्यायों को नमस्कार हो
नमो लोय सव्व साहूणं	लोकमें सब साधुओं को नमस्कार हो

नमस्कार मंत्र के पढ़ने का माहात्म्य ।

ऐसो पंच नमोक्कारो ।	यह पांच पद नमस्कार के
सव्व पावप्पणासणो ।	सर्व पापों के नाश करने वाले हैं ।

मंगलाणं च सव्वे सिं।	सर्व मांगलिक पदार्थों से वा—
पढ़मं हवइ मंगलं ।	सर्व मंगलों में पहिला मंगल नमस्कार मंत्र है ।

प्रश्नावली ।

१–नमोक्कार मंत्र को शुद्ध पढ़ो ?
२–तीसरा पद पढ़ो ?
३–पांचवां पद पढ़ो ?
४–पहिले पद का अर्थ क्या है ?
५–पांचवें पद का अर्थ क्या है ?
६–इस मंत्र के पढ़ने का माहात्म्य क्या है ?
७–इस मंत्र में किन २ को नमस्कार किया है ?



दूसरा पाठ ।

प्रश्न	उत्तर
इस पाठशाला का क्या नाम है ?	जैन ज्ञान पाठशाला
तुम्हारा धर्म क्या है?	जैन ।
तुम कौन हो ?	स्थानकवासी श्वेताम्बर जैन ।
तुम्हारे गुरु कौन हैं?	जैन मुनि 'साधू' और आर्या 'साध्वी'
उनके क्या२ चिन्ह हैं?	उनके मुख पर एक वस्त्र की मुखपत्ती बंधी हुई होती है एक उनके पास जीवरक्षा के लिये रजो-हरण 'ओघा' होता है ।

भोजन करनेके लिये उनके पास काठ के पात्र होते हैं और उनके सफेद वस्त्र होते हैं, वे कोड़ी पैसा नहीं रखते और पैदल ही चलते हैं, नंगेशिर नंगेपांव रहतेहैं।

मुखपत्ती वह किसलिये मुख पर बांधते हैं ?	यह उनका धर्म चिन्ह है और जीव रक्षाके लिये भी बांधते हैं।
तुम्हारे गुरु कहां से खाते हैं ?	वह निर्दोष भिक्षा घरोंसे मांग कर लाते हैं और वही खाते हैं।
तुम्हारे गुरु तुमको क्या शिक्षा देते हैं ?	वह कहते हैं कि जूआ मत खेलो, शराब न पीओ मांस न खाओ,

	शिकार न खेलो, वैश्या संग न करो, परस्त्री संग न करो, चोरी न करो, सत्य बोलो इत्यादि
वह ठहरते कहां पर हैं?	उनका कोई स्थान नियत नहीं है किन्तु जहां पर वे ठहरते हैं उसी स्थान को स्थानक कहते हैं।
तुम स्थानक में जाकर क्या करते हो ?	पहिले हम अपने गुरुओं को वन्दना नमस्कार करते हैं फिर सामयिकादि करके आत्मविचार करते हैं।
तुम्हारा बडा पर्व दिन कौनसा है ?	सम्वत्सरी का दिन हमारा बडा पर्व दिन है।

वह कब होता है ?	प्रायः भादो शुदी पंचमीको
तुम्हें छुट्टी कब होगी ?	सम्वत्सरी पर्व को ।
तुम अपने पर्वमें क्या २ काम करते हो ?	हम उस दिन विशेष हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह का त्याग करते हैं व्रत और पोषध करते हैं जीव रक्षाके लिए दानादि कार्य करते हैं, अपने किये हुए अपराधों का पश्चात्ताप करते हैं, और सर्व जीवों से क्षमा की प्रार्थना करते हैं ।

प्रश्नावली

१—तुम्हारा धर्म क्या है ?

२—तुम्हारे गुरु कौन हैं ?

३—तुम्हारे गुरुओं के चिन्ह क्या हैं ?

४—तुम्हारे गुरु तुमको क्या शिक्षा देते हैं ?
५—तुम्हारे गुरु कहां पर ठहरते हैं ?
६—तुम स्थानक में जाकर क्या काम करते हो ?
७—तुम्हारा पर्व दिन कौनसा है ?

तीसरा पाठ ।

प्रश्न	उत्तर
तुह्मारे देव कौनसे हैं ?	तीर्थंकरदेव (अर्हन्तप्रभु)
उनको कौनसा ज्ञान होता है ?	उनको केवल ज्ञान होता है इसलिये वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होते हैं।
सर्वज्ञ किसे कहते हैं ?	जो सब कुछ जानता हो ?
सर्वदर्शी किसे कहते हैं?	जो सब कुछ देखता हो ?
इस काल में तीर्थंकर देव कितने हो चुके हैं ?	चौबीस २४ ।
उनके शुभ नाम कौन कौन से हैं ?	उनके शुभनाम यह हैं:—

१ श्रीऋषभदेव २ श्रीअजितनाथ ३ श्रीसंभवनाथ ४ श्रीअभिनन्दनदेव ५ श्रीसुमतिनाथ ६ श्रीपद्मप्रभ ७ श्रीसुपार्श्वनाथ ८ श्रीचन्द्रप्रभ ९ श्रीसुविधिनाथ १० श्रीशीतलनाथ ११ श्रीश्रेयान्सनाथ ११ श्रीवासुपूज्य स्वामी १३ श्रीविमलनाथ १४ श्रीअनन्तनाथ १५ श्रीधर्मनाथ १६ श्रीशान्तिनाथ १७ श्रीकुन्थुनाथ १८ श्रीअरनाथ १९ श्रीमल्लिनाथ २० श्री मुनिसुव्रतस्वामी २१ श्री नमिनाथ २२ श्रीअरिष्टनेमिनाथ २३ श्रीपार्श्वनाथ २४ श्रीमहावीरस्वामी।

इनमें से ऋषभदेव स्वामी को आदिनाथ, सुविधिनाथ को पुष्पदन्त और महावीर स्वामी को श्री वर्द्धमान स्वामी वीर अति वीर कहते हैं।

प्रश्नावली।

१—तुम्हारे देव कौन से हैं ?

२—सर्वज्ञ किसे कहते हैं ?

३—चौवीस तीर्थङ्करों के नाम बोलो ?

४—पहिले और पिछले तीर्थङ्करदेव का नाम बताओ ?

५—कौन २ से तीर्थङ्करदेव के एकसे अधिक नाम हैं ?



चौथा पाठ।

श्रीमहावीर स्वामी के कितने हजार साधु थे ?	चौदा हजार।
श्रीवर्द्धमान स्वामी के मुख्य शिष्य कितनेथे ?	एकादश (इग्यारह) ११
मुख्य शिष्यों के नाम क्या २ हैं ?	१ इन्द्रभूति २ अग्निभूति ३ वायुभूति ४ व्यक्तस्वामी ५ सुधर्मास्वामी ६मंडित-पुत्र ७मौर्यपुत्र ८अकंपित

	स्वामी ६ अचलभ्राता १० मेताय स्वामी ११ प्रभास स्वामी ।
गौतम स्वामी कौन थे?	इन्द्रभूतिजी का ही नाम गौतम स्वामी था क्योंकि इनका गौतम गौत्र था।
गणधर किसे कहते हैं?	जो गण(समूह)का पालक है वही गणधर होता है। जैसे गौतम स्वामी।
श्रीमहावीर स्वामी की आर्यायें कितनीं थीं?	छत्तीस हजार ३६०००
छत्तीस हजार आर्यायों में मुख्य आर्या कौनथी	श्रीचन्दनबालाजी

प्रश्नावली।

१ गणधर किसे कहते हैं ?
२ एकादश गणधरों के नाम क्या हैं ?
३ गौतम स्वामी का दूसरा नाम क्या था ?
४ श्री महावीर स्वामी के शिष्य कितने थे ?
५ श्री महावीर स्वामी की आर्यायें कितनी थी ?
६ बड़ी आर्या का नाम क्या था ?
७ श्री महावीर स्वामी का दूसरा नाम बताओ ?

पांचवां पाठ।

प्रातःकाल(सवेरे) उठते ही नवकार मंत्र को पढ़ना चाहिए और चौबीस श्रीतीर्थंकर देवोंके नाम जपो। गुरु महाराजके पास स्थानक (उपाश्रय) में जाकर वन्दना करके उनके उपदेश को सुनो, माता पिता भाई आदि को "जी" कहे बिना मत बोलो और जो कुछ पाठशाला में पढ़ो उसे याद रक्खो।

प्रश्न	उत्तर
जैनी का दूसरा नाम क्या है ?	श्रावक ।
श्रावक किसे कहते हैं ?	जो जैनशास्त्रोंको सुनतेहैं।
तीर्थ कितने होते हैं ?	तीर्थ चार है साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका ।
जीव किसे कहते हैं ?	जो जीवित हो [ज्ञानवाला
जीवोंके कितने भेदहैं ?	दो २ हैं ।
वे कौन २ हैं ?	त्रस और स्थावर ।
त्रस किसे कहते हैं ?	जो चलता फिरता बढ़ता खाता पिता हो जैसे मक्खी मच्छर गाय भैंस आदि ।
स्थावर किसे कहते हैं ?	एकेन्द्रिय जीव, जैसे मिट्टी-पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति ।

प्रश्नावली ।

१ त्रस किसे कहते है ?

२ स्थावर किसे कहते हैं ?

३ जीव किसे कहते हैं ?

सिद्ध परमात्मा की स्तुति ।

तुम तरण तारण दुख निवारण, भविक जीव आराधनं ।
श्री नाभिनन्दन जगत वंदन, नमो सिद्ध निरंजन ॥ १ ॥

जगत् भूषण विगत दूषण, प्रवण प्राण निरूपकं ।
ध्यान रूप अनोप उपम, नमो सिद्ध निरंजन ॥ २ ॥

गगन मंडल मुक्ति पदवी, सर्व उर्ध्व निवासनं ॥
ज्ञान ज्योति अनन्त राजे, नमो सिद्ध निरजनं ॥ ३ ॥

अज्ञान निद्रा विगत वेदन, दलित मोह निरायुष ।
नाम गोत्र निरतराय, नमो सिद्ध निरजनं ॥ ४ ॥

विकट क्रोधा मान योधा, माया लोभ विसर्जन ।
राग द्वेष विमर्द अंकुर, नमो सिद्ध निरंजनं ॥ ५ ॥

विमल केवल ज्ञान लोचन, ध्यान शुक्ल समीरितं ।
योगीनातिगम्य रूपं, नमो सिद्ध निरजनं ॥ ६ ॥

योग ने समोसरण मुद्रा, परिपल्यं कासन ।
सर्व दीसे तेज रूप, नमो सिद्ध निरंजनं ॥ ७ ॥

जगत् जिनके दास दासी, तास आस निराशनं ।
चन्द्रपे परमानन्द रूप, नमो सिद्ध निरंजनं ॥ ८ ॥
स्वसमय सम्यग् दृष्टि जिनकी, सोए योगी अयोगिकं ।
देखतामां लीन होवे, नमो सिद्ध निरंजनं ॥ ९ ॥
तीर्थ सिद्धा अतीर्थ सिद्धा, भेद पंच दशाधिकं ।
सर्व कर्म विमुक्त चेतन, नमो सिद्ध निरंजनं ॥ १० ॥
चन्द्र सूर्य दीप मणिकी, ज्योति येन उलंघितं ।
ते ज्योतिथी अपरम ज्योति जिनकी, नमो सिद्ध निरंजनं ॥ ११ ॥
एक मांहि अनेक राजे, अनेक मांही एककं ।
एक अनेक की नांहि संख्या, नमो सिद्ध निरंजनं ॥ १२ ॥
अजर अमर अलख अनंतर, निराकार निरंजनं ।
परिब्रह्म ज्ञान अनंत दर्शन, नमो सिद्ध निरंजनं ॥ १३ ॥
अतुल सुख की लहर में प्रभु, लीन रहे निरंतरं ।
धर्म ध्यानथी सिद्ध दर्शन, नमो सिद्ध निरंजनं ॥ १४ ॥
ध्यान धूपं मन. पुष्प. पंचेन्द्रिय हुताशनं ।
क्षमा जाप संतोष पूजा, पूजो देव निरंजनं ॥ १५ ॥
तुमे मुक्ति दाता कर्म घाता, दीन जानि दया करो ।
सिद्धार्थ नन्दन जगत् वन्दन, महवीर जिनेश्वरं ॥ १६ ॥

महामहोपाध्याय श्रीगंगाधर जी के, जैनदर्शन के विषय में, असत्य आक्षेपों के उत्तर।

श्रीगिरिजापतये नमो नमः।

मै पवित्र काशीपुरी में कितने वरसों से प्राचीन न्याय पढ़ रहा हूँ। पढ़ते पढ़ते मैंने आजतक प्राचीन न्याय में गौतमभाष्य, न्यायवार्तिक, तात्पर्यटीका, श्लोकवार्तिक, ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, शावरभाष्य, सांख्यदर्शन, और बौद्धका न्यायविन्दु, माध्यमिकावृत्ति प्रभृति ग्रन्थोमें श्रीगुरुदेवकी परमदया से यथाशक्ति नैपुण्य पाया है. मैं गवेषी, जिज्ञासु, आत्मा हूँ. मेरा कहीं पर मिथ्या आग्रह नहीं है. मैं जैनों के और चार्वाकों के दर्शनों को भी देखने के लिये पिपासु हूँ. थोड़े ही दिनों के पहिले श्रीमाधवाचार्य विरचित 'सर्वदर्शनसंग्रह' मै पढता था, जव उसमें जैनमत आया तव मेरी वुद्धिको भी चक्कर आ गया याने जैनीयों के वास्तव मन्तव्य को मै जान नहीं सका. तव मुझे जैनतार्किकों के तर्कों को देखने की विशेष इच्छा हुई. उसकी परिपूर्णताके लिये मै शिवपुरी में घूमता था, इतने में परम-भाग्य से एक जैनश्वेताम्बर पाठशाला मुझको मिल गई. वहा के

वड़े वड़े छात्र मेरे अच्छे स्नेही हो गये. वहां के अध्यक्ष को मैंने प्रार्थनापूर्वक अपनी पूर्वोक्त इच्छा प्रकट की तव उन्होंने वड़े हर्ष के साथ एक अध्यापक के पास मुझको परिपूर्ण समय दिया. वहा भी कम से कम मै दो. वर्ष पढा, और जैनन्याय के स्याद्वादमञ्जरी, रत्नाकरावतारिका, अनेकान्तजयपताका, सम्मतितर्क आदि ग्रन्थों को समाप्त कर दिया, और भी कई जैन के आगमग्रन्थ भी देख डाले, इससे मुझे यह स्पष्ट ज्ञात हुआ कि जैनदर्शन में परस्पर जरासा भी विरोध नहीं है, और सव प्राचीन जैनग्रन्थ एक ही मन्तव्य पर चलते है. और वेदानुयायि, नैयायिक, सांख्य, वैशेषिक. वेदान्तादि दर्शनो में वहुतसा विरोध स्पष्ट दिखाई देता है याने जो वेदकी श्रुति का नैयायिक लोक अर्थ करते है, उससे विपरीत ही सांख्य लोक करते है, तात्पर्य यह है कि पूर्व आर्यावर्त में सदैव सुभिक्ष होने से निश्चिन्ततासे प्राचीन ऋषिओ ने विचारे वेदकी मिट्टी को खराव कर दी है किसी कविने कहा है कि–

"श्रुतयश्च भिन्नाः स्मृतयश्च भिन्ना
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः" ॥ १ ॥

यह ठीक २ सुघटित होता है. और जैन दर्शन पढ़ने से मुझे

यह भी एक वड़ा लाभ हुआ की जो मेरा अटल निश्चय था की जैनलोग नास्तिक हैं, जैनलोग अस्पृश्य हैं, वह सब हवा में उड़ गया; और मनमें यह प्रतिभान हुआ की वेदानुयायि, कुमारिल, शकर, गौतम, वेदव्यास, वाचस्पति प्रभृतिने जैनीयों के विषय में जो कुच्छ भी लिखा है वह वादिप्रातिवादि की नीति से नहीं लिखा है, किन्तु छल से सब उटपटॉग घसीट मारा है, याने जैनीयों के सिद्धान्त दूसरे, और अपना खण्डन का बकवाद दूसरा, अब उसी निश्चय से मेरी लेखनी प्रवृत्त हुई है की सत्य सूर्य का उदय हो, असत्य घूकों का संहार हो. याने पूर्वोक्त ऋषि के और आधुनिकमहर्षिओं के झूठे आक्षेपोंका प्रत्युत्तर युक्तियुक्त लिखना चाहिये, परन्तु यहा तो मै ' प्रत्यासत्तिर्बलीयसी ' इस न्याय से आधुनिक कविचक्रशक्र महामहापोध्याय गगाधर जी महाशय से निर्मित ' अलिविलासिसंलाप ' नामक खण्डकाव्य की संक्षिप्त समालोचना करूंगा. इस महाशयजी ने भी 'बाप जैसा बेटा और वड तैसा टेटा' इस किंवदन्ती को सत्य की है याने पूर्वोक्त ऋषिओं की तरह इन्होंने भी जैनीयों के विषयमें मन'काल्पित अपना अभिप्राय प्रकट किया है इस लिये पाठकोंको 'अलिविलासिसंलाप' का चौथा शतक देखना चाहिये. मै भी दिखलाता हूँ की महाशयजी किस रीति से जैनीयों का झूठा पूर्व पक्ष खड़ा करते हैं और किस प्रकार उसका आपही आप उत्तर भी देते हैं.

"स्यादस्ति कार्यकरणेन समस्तवस्तु ।
स्यान्नास्ति तच्च विलयात् परतश्च बाधात् ॥ २५ ॥

यहां से २८ तक—

जैनदर्शन कार्य करनेसे ही सब वस्तु को सत् मानता है, और वस्तु नाश होने से याती इतरज्ञान से बाध होनेसे वस्तुओं को असत् मानता है इत्यादि । अब इस पूर्वपक्ष के खण्डन में महाशयजी अपनी न्यायप्रवीणता दिखलाते है की—

" हा ! हन्त ! संतमससंततवासधृक !
नानाविकल्पमयदुर्मतजङ्गपूक ! ।
प्रामाणिको न हि वदन् विरमेद् विकल्पेऽ-
प्रामाणिकोक्तिरपराध्यति वादकाले ॥ ३६ ॥
वस्तुस्थितिप्रमितिरेव हि मानकृत्यं
न त्वास्ति वस्तु युगपत् सदसद्द्विरूपम् ।
वस्तुन्यसद्द्विविधरूपमतिभ्रमः स्यात्
तां दोष एव जनयेद् न कदापि मानम् ॥ ३७ ॥
अन्योऽन्यबाधकमसत्त्वमथापि सत्त्व-
मेकत्र वक्षि युगपद् यदि संशयः सः ।
यत्सर्वसंशयनिवर्ति तदेव शास्त्रं
संशाययेत्तदपि चेत् शरणं किमन्यत् ? ॥ ३८ ॥

निर्णेतुमक्षमतया विविधागमार्थो-
च्छिष्टैकदेशलघुसंग्रहमात्रकारी ।
आचार्यलक्षणविहीनतया न मान्यः
संशायकोक्त्युपनमद्दृष्टजिनो जिनो नः ॥ ३९ ॥
स्याद्वादसिद्ध्युपगमे स्वमतस्य हानि-
स्तत्र प्रमाणकथनेऽपि स एव दोषः ।
साध्यप्रमाणविषये तु कथं प्रवृत्तिः
सेष्टा सदा मतिमतोऽध्यवसायपूर्वा ॥ ४० ॥
द्वित्रेतरेतरविरुद्धसशङ्कवाक्या-
न्यत्येकसारमपि शास्त्रमिति प्रवक्तुः ।
नीराजयन्तु वदनं कृतहस्तताला
जैनाङ्गना बहुलगोमयदीपिकाभिः ॥ ४१ ॥"

प्रथम ३६ में श्लोकमें तो पण्डितजी ने गेहेशूरता दिखलाई है याने डरपोक की तरह जैनतार्किकों को दो एक गालियाँ दी है, फिर आगे चल कर पण्डितजी अपनी पण्डिताई छांटते हुए कहते हैं की वस्तु याने पदार्थ की स्थिति की ठीक ठीक प्रमिति (ज्ञान) करानी यही प्रमाण का कार्य है. और वस्तु सद् और असद् ऐसे दो स्वभाववाली नहीं है, तब भी जो तुम यह कहते हो कि वस्तु सत् और असत् यह उभयस्वभावसहित है वह तुमको भ्रम है, तो

उस भ्रमका जनक दोष (अज्ञानादि) है क्यों कि प्रमाण तो कभी दोषका कारण हो ही नहीं सकता ॥ ३७ ॥ आपसमें शत्रुतावाले सत्त्व और असत्त्व हैं, याने वह दोनो कभी साथ रही नहीं सकते तब भी तुम कहते हो की यह दोनों पदार्थ में साथ रहते हैं यह तुमारा संदेह है, और जो संशयका छेदन करनेवाला शास्त्र हैं वह भी जो संशयको पैदा करै, दूसरा कौन शरण है ? ॥ ३८ ॥ निर्णय करने में असमर्थता होने से विविधप्रकारके शास्त्रों का उच्छिष्ट जो एक देश उसका अल्पसग्रह करनेवाला, और आचार्य (निश्चायक) के लक्षणों से रहित होने से, जिन (अर्हन्) हमको मान्य नहीं है ॥ ३९ ॥ और स्याद्वादकी सिद्धिको जो तुम निश्चित मानोगे तो तुमारा संशयपर्यवसायी सिद्धान्त नष्ट हो जायगा, और यदि उसमें प्रमाणकी प्रवृत्ति दिखलावोगे तब भी वही दोष आवेगा, और विद्वानों की प्रवृत्ति सदैव निश्चयपूर्वक होती है इस लिये तुमारे सिद्धान्त में कोई प्रवृत्ति नहीं कर सकता ॥ ४० ॥ जिसमें शङ्कित और परस्पर विरुद्ध वाक्यों कि पुनः पुनः आवृत्ति हो वह भी शास्त्र हैं ऐसा कहनेवालेके मुखकी आरती जैनाङ्गना उतारै ॥ ४१ ॥ यहां तक जो महाशयजी ने जैनियों का अभेद्य स्याद्वादका आक्षेपण किया है उसका पाठक महाशय निम्न लिखित उत्तर से पढै, "महाशयजी ने कहा है कि—जैनदर्शन कार्य करने से

हि वस्तु को सत् मानता है इत्यादि" ।

मै महाशयजी से प्रार्थना पूर्वक कहता हूँ की यदि आप अपना पक्षपातोपहतचक्षुः को दूर करते तो स्पष्ट मालूम होता की जैनदर्शनका वह (पूर्वोक्त) मन्तव्य नहीं है. परन्तु जैनदर्शनका यह मन्तव्य है कि वस्तुका स्वभाव ही सद्, असद् रूप है. याने स्वभाव से ही वस्तु भावाऽभाव उभयस्वरूप है. फिर शास्त्रीजी की स्थूल वुद्धिमें इस वातकी समझ न पड़ी तो कहा की क्या एकही वस्तु भावस्वरूप और अभावस्वरूप कभी होसक्ती है ?, तो मुझे कहना चाहिये की क्या आपमें पुत्रत्व, पितृत्व नहीं है ? क्या आप मनुष्यभावरूप और अश्वाऽभावरूप नहीं है ?, आपको अविलम्ब स्वीकार करना होगा विरुद्ध धर्म भी सापेक्ष होकर एक वस्तु में अच्छी रीति से रह सकते हैं, इसमें कोई प्रकार का विरोध नहीं है. देखिये और चित्त को सुस्थित रख कर पढ़िये—

"न हि भावैकरूप वस्त्विति, विश्वस्य वैश्वरूप्यप्रसङ्गात् । नाऽप्यभावरूपम्, नीरूपत्वप्रसङ्गात् । किन्तु स्वरूपेण स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैः सत्त्वात्, पररूपेण स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैश्चाऽसत्त्वात् भावाऽभावरूपं वस्तु । तथैव प्रमाणाना प्रवृत्तेः ।

यदाह—

"अयमेवेति यो ह्येष भावे भवति निर्णयः ।

होते हैं और प्रथम हास्य मनोहर पीछे दुःखप्रद होता है और हासीयुक्त जीव सत्यकी रक्षा करनेमें भी समर्थ नही होता है । इस लिये सत्य व्रतके धारण करनेवाले हास्यको कदापि भी आसेवन न करें । सो उपर लिखी पंच ही भावनाओं करके युक्त द्वितीय व्रतको धारण करना चाहिये ॥

तृतीय महाव्रतकी पंच भावनायें ॥

प्रथम भावना—निर्दोष वस्ती शुद्ध योगोंका स्थान जहांपर किसी प्रकारकी विकृति उत्पन्न नही होती, और वह स्थान स्वाध्यायादि स्थानों करके भी युक्त है, स्त्री पशु क्लीबसे भी वर्जित है अर्थात् जिनाज्ञानुकूल है ऐसे स्थानकी विधिपूर्वक आज्ञा लेवे अर्थात् विनाज्ञा कहींपर न ठहरे, तब ही तृतीय व्रतकी रक्षा हो सक्ती है, क्योंकि व्रतकी रक्षा वास्ते ही यह भावनायें हैं ॥

द्वितीय भावना–यदि किसी स्थानोपरि प्रथम ही तृणादि पड़े हो वह भी विनाज्ञान आसेवन न करे ॥

तृतीय भावना–पीठफलक–शय्या–संस्तारक इत्यादिकोंके वास्ते स्वयं आरंभ न करे अन्योंसे भी न करावे तथा अनुमोदन भी न करे और विषम स्थानको सम न करावे नाही किसी आत्माको पीड़ित करे ॥

चतुर्थ भावना–जो आहार पाणी सर्व साधुओंका भाग युक्त है वे गुरुकी विनाआज्ञा न आसेवन करे क्योंकि गुरु सर्वके स्वामी है वही आज्ञा दे सक्ते हैं अन्यत्र नही॥

पंचम भावना–गुरु तपस्वी स्थविर इत्यादि सर्वकी विनय करे और विनयसे ही सूत्रार्थ सीखे क्योंकि विनय ही परम तप है विनय ही परम धर्म है और विनयसे ही ज्ञान सीखा हुआ फलीभूत होता है और तृतीय व्रतकी रक्षा भी सुगमतासे हो जाती है, इसलिये तृतीय महाव्रत भावनायें युक्त ग्रहण करे॥

चतुर्थ महाव्रतकी पंच भावनायें॥

प्रथम भावना–ब्रह्मचर्यकी रक्षा वास्ते अलंकार वर्जित उपाश्रय सेवन करे क्योंकि जिस वस्तीमें अलंकारादि होते हैं उस वस्तीमें मनका विभ्रम हो जाना स्वाभाविक धर्म है, सो वस्ती वही आसेवन करे जिसमें मनको विभ्रम न उत्पन्न हो॥

द्वितीय भावना–स्त्रियोंकी सभामें विचित्र प्रकारकी कथा न करे तथा स्त्री कथा कामजन्य, मोहको उत्पन्न करनेवाली यथा स्त्रीके अवयवोंका वर्णन जिसके श्रवण करनेसे वक्ता श्रोतें सर्व ही मोहसे आकुल हो जाये इस प्रकारकी कथा ब्रह्मचारी कदापि न करे॥

तृतीय भावना—नारीके रूपको भी अवलोकन न करे तथा अंगनाके हास्य लावण्यरूप यौवन कटाक्ष नेत्रोंसे देखना इत्यादि चेष्टाओंसे देखनेसे मन विकृतियुक्त हो जाता है, इसलिये मुनि योषिताके रूपको अवलोकन न करे ॥

चतुर्थ भावना—पूर्वकृत क्रीडाओंकी भी स्मृति न करे क्योंकि पूर्वकृत काम क्रीडाओंके स्मृति करनसे मन आकुल व्याकुलता पर हो जाता है, क्योंकि पुनः २ स्मृतिका यही फल होता कि उसकी वृत्ति उसके वशमें नही रहती ॥

पंचम भावना—ब्रह्मचारी स्निग्ध आहार तथा कामजन्य पदार्थोंको कदापि भी आसेवन न करे, जैसे बलयुक्त औषधियें मद्यको उत्पन्न करनेवाली औषधियें, क्योंकि इनके आसेवनसे विना तप ब्रह्मचर्यसे पतित होनेका भय है, मनका विभ्रम हो जाना स्वाभाविक है। इसलिये ब्रह्मचर्यकी रक्षा वास्ते स्निग्ध भोजनका परित्याग करे और पांच ही भावनायें युक्त इस पवित्र महाव्रतको आयुपर्यन्त धारण करे ॥

पंचम महाव्रतकी पंच भावनायें ॥

प्रथम भावना—श्रोत्रेंद्रियको वशमें करे अर्थात् मनोहर शब्दोंको सुनकर राग, दुष्ट शब्दोंको श्रवण करके द्वेष, यह काम

कदापि भी न करे क्योंकि शब्दोंका इंद्रियमें प्रविष्ट होनेका धर्म है। यदि रागद्वेष किया गया तो अवश्य ही कर्मोंका बंधन हो जायगा, इसलिये शब्दोंको सुनकर शान्ति भाव रक्खे ॥

द्वितीय भावना—मनोहर वा भयाणक रूपोंको भी देखकर रागद्वेष न करे अर्थात् चक्षुरिन्द्रिय वशमें करे ॥

तृतीय भावना—सुगंध—दुर्गंधके भी स्पर्शमान होने पर रागद्वेष न करे अपितु घ्राणेन्द्रिय वशमें करे ॥

चतुर्थ भावना—मधुर भोजन वा तिक्त रसादियुक्त भोजनके मिलनेपर रसेंद्रियको वशमें करे अर्थात् सुंदर रसके मिलनेसे राग कटुक आदि मिलने पर द्वेष मुनि न करे ॥

पंचम भावना—सुस्पर्श वा दुःस्पर्शके होनेसे भी रागद्वेष न करे अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय वशमें करे ॥

सो यह *पंचवीस भावनाओं करके पंच महाव्रतोंको धारण करता हुआ दश प्रकारके मुनिधर्मको ग्रहण करे ॥ यथा—

दसविहे समण धम्मे पं. तं. खंत्ती

---

* पंचवीस भावनाओंका पूर्ण स्वरूप श्री आचाराङ्ग सूत्र श्री समवायाङ्ग सूत्र वा श्री प्रश्न व्याकरण सूत्रसे देख लेना ॥

मुत्ती अज्जवे मद्दवे लाघवे सच्चे संजमे तवे चियाए बंभचेरवासे ॥ ठाणांग सूत्र स्थान १० ॥

अर्थः—सब अर्थोंको सिद्ध करनेवाली आत्माको सदैव काल ही उज्ज्वलता देनेवाली अंतरंग क्रोधादि शत्रुओंका पराजय करनेवाली ऐसी परम पवित्र क्षमा मुनि धारण करे १॥ फिर संसारबंधनसे विमोचनता देनेवाली कष्टोंसे पृथक् ही रखनेवाली निराश्रय वृत्तिको पुष्ट करनेवाली निर्ममत्वता महात्मा ग्रहण करे २॥ और सदा ही कुटिल भावको त्याग कर ऋजुभावी होवे, क्योंकि माया (छल) सर्व पदार्थोंका नाश करती है ३ ॥ फिर सर्व जीवोंके साथ सकोमल भाव रक्खे अर्थात् अहंकार न करे परं मानसे विनयादि सुंदर नियमोंका नाश हो जाता है ४ ॥ साथ ही लघुभूत होकर विचरे अर्थात् किसी पदार्थके ममत्वके बंधनमें न फंसे। जैसे वायु लघु होकर सर्वत्र विचरता है ऐसे मुनि परोपकार करता हुआ विचरे ५ ॥ पुनः सत्यव्रतको दृढतासे धारण करे अर्थात् पूर्ण सत्यवादी होवे ६ ॥ संयम वृत्तिको निर्दोषतासे पालण करे। यदि किसी प्रकारसे परीषह पीड़ित करे तो भी संयमवृत्तिको कलंकित न करे ७ ॥ और तपके द्वारा आत्माको निर्मल करे ८॥ ज्ञानयुक्त होकर साधुओंको अन्नपाणीआदि ला-

कर दान देवे अर्थात् साधुओंकी वैयावृत्य करे ९ ॥ और मन वचन कायासे शुद्ध ब्रह्मचर्य व्रतको पालन करे जैसेकि पूर्वे लिखा जा चुका है १० ॥ ब्रह्मचर्यकी रक्षा तपसे होती है सो तप *द्वादश प्रकारसे वर्णन किया गया है ॥ यथा—

(१) व्रतोपवासादि करने या आयुपर्यन्त अनशन करना, (२) स्वल्प आहार आसेवन करना, (३) भिक्षाचरीको जाना, (४) रसोंका परित्याग करना, (५) केशलुंचनादि क्रियायें, (६) इन्द्रियें दमन करना, (७) दोष लगनेपर गुर्वादिके पास विधिपूर्वक आलोचना करके प्रायश्चित्त धारण करना, (८) और जिनाज्ञानुकूल विनय करना, (९) वैयावृत्य (सेवा) करना, (१०) फिर स्वाध्याय (पठनादि) तप करना, (११) अपितु आर्तध्यान रौद्रध्यानका परित्याग करके धर्मध्यान शुक्लध्यानका आसेवन करना, (१२) अपने शरीरका परित्याग करके ध्यानमें ही मग्न हो जाना ॥ अपितु द्वादश प्रकारके तपको पालण करता हुआ द्वाविंशति परीषहों-को शान्तिपूर्वक सहन करे ॥ जैसेकि—

---

* द्वादश प्रकारके तपका पूर्ण विवर्ण श्री उववाइ आदि सूत्रों-से देखो ॥

बावीसं परीसहा पं. तं. दिगछा परीसहे १ पिवासा परीसहे २ सीय परीसहे ३ उसिण परीसहे ४ दंसमसग परीसहे ५ अचेल परीसहे ६ अरइ परीसहे ७ इत्थी परीसहे ८ चरिया परीसहे ए निसीहिया परीसहे १० सिज्जा परीसहे ११ आक्कोस परीसहे १२ वह परीसहे १३ जायणा परीसहे १४ अलाभ परीसहे १५ रोग परीसहे १६ तणफास परीसहे १७ जल्ल परीसहे १८ सक्कार पुरक्कार परीसहे १ए पन्ना परीसहे २० अन्नाण परीसहे २१ दंसण परीसहे २२ ॥ समवायाङ्ग सूत्रस्थान २२ ॥

भाषार्थः—महात्माको महा क्षुधातुर होनेपर भी सचित आहारादि वा अकल्पनीय पदार्थ लेने योग्य नही है अर्थात् क्षु-

१ द्वाविंशति परीषहोंका पूर्ण स्वरूप श्री उतराध्ययन सूत्रजीके द्वितीयाध्यायसे देखना चाहिये ॥

धा परीषहको सम्यक् प्रकारसे सहन करे किन्तु जो वृत्तिसे विरुद्ध है ऐसे आहारको कदापि भी न आसेवन करे १ ॥ इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतुके आने पर निर्दोष जलके न मिलने पर यदि महापिपास (तृषा) भी लगी हो तो उसको शान्तिपूर्वक ही सहन करे, अपितु सचित जल वा वृत्ति विरुद्ध पाणी न ग्रहण करे, क्योंकि परीषहके सहन करनेसे अनंत कर्मोंकी वर्गना क्षय हो जाती है २॥ और शीत परीषहको भी सहन करे क्योंकि साधुके पास प्रमाणयुक्त ही वस्त्र होता है सो यदि शीतसे फिर भी पीड़ित हो जाय तो अग्निका स्पर्श कदापि भी न आसेवन करे ३ ॥ फिर ग्रीष्मके ताप होनेसे यदि शरीर परम आकुल-व्याकुल भी हो गया हो तद्यपि स्नानादि क्रियायें अथवा सुखदायक ऋतु शरीरकी क्षेमकुशलताकी न आकांक्षा करे ४ ॥ साथ ही ग्रीष्मताके महत्वसे मत्सरादिके दंश भी शान्तिपूर्वक सहन करे, उन क्षुद्र आत्माओंपर क्रोध न करे ५ ॥ वस्त्रोंके जीर्ण होनेपर तथा वस्त्र न होनेपर चिंता न करे तथा यह मेरे वस्त्र जीर्ण वा मलीन हो गये हैं अब मुजे नूतन कहांसे मिलेंगे वा अब जीर्ण वस्त्र परिष्ठापना करके नूतन लूंगा इस प्रकारसे हर्ष विषवाद न करे ६ ॥ यदि संयममें किसी प्रकारकी चिंता उत्पन्न हुई हो तो उसको दूर करे ७ ॥ और मनसे स्त्रियोंका

राग भी चिंतवन न करे अर्थात् स्त्रियोंको पंक (कीचड़) भूत जानके परित्याग करे ८ ॥ ग्रामों नगरोंमें विहार करते समय जो कष्ट उत्पन्न होता है उसको सम्यक् प्रकारसे सहन करे, ऐसे न कहे विहारसे बैठना ही अच्छा है ९ ॥ ऐसे ही बैठनेका भी परीषह सहन करे, क्योंकि जिस स्थानपें मुनि बैठा हो विना कारण वहांसे न ऊठे १० ॥ और सम विषम शय्या मिलनेसे भी शान्तिपूर्वक परिणाम रक्खे ११ ॥ यदि कोई आक्रोश देता हो वा दुर्वचनोंसे अलंकृत करता हो तो उसपर क्रोध न करे क्योंकि ज्ञानसे विचारे इसके पास यही पारितोषिक है १२॥ यदि कोई वध (मारने) ही करने लग जावे तो विचारे यह मेरे आत्माका तो नाश कर ही नही सक्ता अपितु शरीर मेरा है ही नही, इस प्रकारसे वध परीषहको सहन करे १३ ॥ फिर याचनाका भी परीषह सहन करे अर्थात् याचना करता हुआ लज्जा न करे १४ ॥ यदि याचना करनेपर भी पदार्थ उपलब्ध नही हुआ है तो विषवाद न करे १५ ॥ रोगोंके आनेपर शान्तिभाव रक्खे तथा सावद्य औषधि भी न करे १६ ॥ और संस्तारकादिमें तृणोंका भी स्पर्श सहन करे किन्तु तृणोंका परित्याग करके वस्त्रोंकी याचना न करे १७॥ स्वेदके आ जाने पर मलका परीषह सहन करे १८॥ इसी प्रकार सत्कार

अपमानको भी शान्तिसे ही आसेवन करे १९ ॥ बुद्धि महान होनेपर अहंकार न करे, यदि स्वल्प बुद्धि होवे तो शोक न करे २० ॥ फिर ऐसे भी न विचारे की मेरेको ज्ञान तो हुआ ही नही इस लिये जो कहते हैं मुनियोंको लब्धियें उत्पन्न हो जाती है वे सर्व कथन मिथ्या है, क्योंकि जेकर ज्ञान वा लब्धियें होती तो मुजे भी अवश्य ही होती २१ ॥ और षट् द्रव्य वा तीर्थंकरोंके होनेमें भी संदेह न करे अर्थात् सम्यक्त्वसे स्खलित न हो जावे २२ ॥ इस प्रकारसे द्वाविंशति परीषहोंको सम्यक् प्रकारसे सहन करता हुआ धर्मध्यान वा शुक्लध्यानमें प्रवेश करता हुआ मुनि अष्ट कर्मोंकी वर्गनासे ही मुक्त हो जाता है; अष्ट कर्मोंसे ही संसारी जीव संसारके बंधनोंमें पड़े हुए हैं इनके ही त्यागनेसे जीवकी मुक्ति हो जाती है ॥ यथा—ज्ञानावर्णी १ दर्शनावर्णी २ वेदनी ३ मोहनी ४ आयु ५ नाम ६ गोत्र ७ अंतराय कर्म ८ ॥ इन कर्मोंकी अनेक प्रकृतियें हैं जिनके द्वारा जीव सुखों वा दुखोंका अनुभव करते हैं, जैसेकि—ज्ञानावर्णी कर्म ज्ञानको आवर्ण करता है अर्थात् ज्ञानको न आने देता सर्वत्र काल प्राणियोंको अज्ञान दशामें ही रखता है, पांच प्रकारके ही ज्ञानोंको आवर्ण करता है और यह कर्म जीवोंको धर्म अधर्म की परीक्षासे भी पृथक् ही रखता है अर्थात् इस कर्मके बलसे

प्राणी तत्त्वविद्याको नही प्राप्त हो सक्ते हैं; किन्तु यह कर्म जीव षट् प्रकारसे बांधते हैं जैसेकि—

णाणावरणिज्ज कम्मा सरीरपओग बंधेणं भंत्ते कम्मस्स उदयणं गोयमा णाणपडिणीययाए १ णाणणिण्हवणयाए २ णाणंतराएणं ३ णाण प्पदोसेणं ४ णाणच्चासादणयाए ५ णाणविसं-वादणा जोगेणं ६ ॥ भगवती सू० शतक ८ उद्देश ९ ॥

भाषार्थः—श्री गौतम प्रभुजी श्री भगवान्से प्रश्न पूछते हैं कि हे भगवन्! जीव ज्ञानावर्णी कर्म किस प्रकारसे बांधते हैं॥ भगवान् उत्तर देते हैं कि हे गौतम! षट् प्रकारसे जीव ज्ञानावर्णी कर्म बांधते हैं जैसेकि—ज्ञानकी शत्रुता करनेसे अर्थात् सदैव काल ज्ञानके विरोधि ही बने रहना और अज्ञानको श्रेष्ठ जानना, अन्य लोगोंको भी अज्ञान दशामें ही रखनेका परिश्रम करना १ ॥ तथा ज्ञानके निण्हव बनना अर्थात् जो वार्त्ता यथार्थ हो उसको मिथ्या सिद्ध करना था ज्ञानको गुप्त करना, जैसेकि किसीके पास ज्ञान है उसने

विचार किया कि यदि मैंने किसी औरको सिखला दिया तो मेरी प्रतिष्ठा भंग हो जायगी २ ॥ और ज्ञानके पठन करनेमें अंतराय देना अर्थात् ऐसे २ उपाय विचारने जिस करके लोग विद्वान् न बन जावे और पूर्ण सामग्री होनेपर भी ज्ञानवृद्धिका कोई भी उपाय न विचारना ३ ॥ और ज्ञानमें द्वेष करना ४ ॥ ज्ञानकी आशातना करना ५ ॥ ज्ञानमें विपघाद करना तथा सत्य स्वरूपको परित्याग करके वितंडावादमें लगे रहना ६ ॥ इन कर्मोंसे जीव ज्ञानावर्णी कर्मको बांधते हैं जिसके प्रभावसे जाननेकी शक्तिसे भिन्न ही रह जाते हैं, और इन कर्मों (कारणोंसे) के परित्याग करनेसे जीव ज्ञानावर्णको दूर कर देते हैं, जिस करके उनको पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है॥ और दर्शनावर्णी कर्म भी जीव उक्त ही कारणोंसे बांधते है जैसेकि—दर्शनप्रत्यनीकता करनेसे १ दर्शननिण्हवना २ दर्शन अंतराय ३ दर्शन प्रद्वेषना ४ दर्शन आशातना ५ दर्शन विपवाद योग ६ ॥ इन कारणोंसे जीव दर्शनावर्णी कर्मको बांधकर चक्षुदर्शनादिका निरोध करते है २ ॥ और वेदनीय कर्म द्वि प्रकारसे बांधा जाता है जैसे कि सुख वेदनी १, दुःखवेदनी २। अर्थात् जिसने किसीको भी पीड़ा नही दी, सर्व रक्षा करता रहा, किसीको दुःखित नही किया, वह जीव सुखरूप वेदनी कर्म बांधता है और उसका सुखरूप ही फल भोगता है॥

और जिसने हिंसा की, जीवोंको दुःखित किया कभी भी परोपकार नही किया वह जीव दुःखरूप वेदनीय कर्म बांधते हैं और दुःखरूप ही उसके फळ भोगते हैं ॥ और क्रोध मान माया लोभ तथा सम्यक्त्व मोहनी मिश्रमोहनी मिथ्यात्वमोहनी इनके द्वारा जीव मोहनी कर्मको बांधते हैं जिस करके जीव मोहमें ही लगे रहते हैं । प्रायः कोई २ धर्मकी बातको भी सुनना नही चाहते हैं, संसारके ही कामों में लगे रहते हैं तथा क्रोधादिमें ही लगे रहते हैं, और आयुकर्मकी प्रकृतियें चार गतियोंकी चार २ कारणोंसे ही जीव बांधते हैं, जैसेकि नरक गतिकी आयु जीव चार कारणोंसे बांधते हैं-यथा महा आरंभ करने (हिंसादि कर्म करनेसे) से १ और महा परिग्रह (धनकी लालसा) के कारणसे २ पंचिंद्रिय जीवोंके वध करनेसे अर्थात् शिकारादि कर्म ३ और मांसभक्षणसे ४॥ और चार ही कारणोंसे जीव तिर्यग् योनिके कर्मोंको बांधते हैं जैसेकि माया करने (छल) से १ मायामें माया करना २ असत्य भाषण करना ३ कूट तोला मापा करना अर्थात् कूड़ तोलना कूड़ ही मापना ४ ॥ और चार ही कारणोंसे जीव मनुष्य योनिके कर्म बांधते हैं, जैसेकि प्रकृतिसे ही भद्र होना १ प्रकृतिसे ही विनयवान होना २ दयायुक्त होना ३ मत्सरता वा ईर्ष्या न करना ४ इन्हीं कारणोंसे जीव मनुष्य

योनिके कर्म बांधते हैं ॥ और चार ही कारणोंसे जीव देव आयुको बांधते हैं जैसेकि—सराग संयम पालण करना अर्थात् साधु वृत्ति राग सहित पालण करना १ श्रावकवृत्ति पालनेसे २ और अज्ञान कष्ट सहन करनेसे ३ अकाम निर्जरासे अर्थात् जिस वस्तुकी इच्छा है वह मिलती नही है और वासना नष्ट भी नही हुई उस कारणसे भी आत्मा देव आयुको बांध लेते हैं, अपितु मृत्यु समय जेकर शुभ परिणाम हो जावे तो ४ ॥ नाम कर्म भी जीव चार ही कारणोंसे बांधते हैं, जैसेकि—कायाको ऋजुतामें रखना १ भावोंको भी ऋजु करना २ भाषा भी ऋजु ही उच्चारण करनी ३ और मनमें कोई भी विपवाद न करना ४, इन कारणोंसे जीव शुभ नाम कर्मको बांधते हैं ॥ और यह चार ही वक्र करनेसे जीव अशुभ नाम कर्मको बांधते हैं और अष्ट कारणोंसे जीव ऊच्च गोत्र कर्मको बांधते हैं, जैसेकि—जातिका मद न करनेसे १ कुलका मद न करनेसे २ बलका मद न करनेसे ३ रूपका मद न करनेसे ४ तपका मद न करनेसे ५ लाभका मद न करनेसे ६ श्रुतका मद न करनेसे ७ ऐश्वर्यका मद न करनेसे ८ और आठ ही प्रकारके मद करनेसे जीव नीच गोत्रके कर्मोंको बांधते हैं । और पांच ही प्रकारसे जीव अंतराय कर्मोंको बांधते हैं, जैसेकि—दानकी अंतरायसे १ लाभान्तरायसे

और जिसने हिंसा की, जीवोंको दुःखित किया कभी भी परोपकार नही किया वह जीव दुःखरूप वेदनीय कर्म बांधते हैं और दुःखरूप ही उसके फल भोगते हैं ॥ और क्रोध मान माया लोभ तथा सम्यक्त्व मोहनी मिश्रमोहनी मिथ्यात्वमोहनी इनके द्वारा जीव मोहनी कर्मको बांधते हैं जिस करके जीव मोहमें ही लगे रहते हैं। प्रायः कोई २ धर्मकी वातको भी सुनना नही चाहते हैं, संसारके ही कामों में लगे रहते हैं तथा क्रोधादिमें ही लगे रहते हैं, और आयुकर्मकी प्रकृतियें चार गतियोंकी चार २ कारणोंसे ही जीव बांधते हैं, जैसेकि नरक गतिकी आयु जीव चार कारणोंसे बांधते हैं-यथा महा आरंभ करने (हिंसादि कर्म करनेसे) से १ और महा परिग्रह (धनकी लालसा) के कारणसे २ पंचिंद्रिय जीवोंके वध करनेसे अर्थात् शिकारादि कर्म ३ और मांसभक्षणसे ४॥ और चार ही कारणोंसे जीव तिर्यग् योनिके कर्मोंको बांधते हैं जैसेकि माया करने (छल) से १ मायामें माया करना २ असत्य भाषण करना ३ कूट तोला मापा करना अर्थात् कूड़ तोलना कूड़ ही मापना ४ ॥ और चार ही कारणोंसे जीव मनुष्य योनिके कर्म बांधते है, जैसेकि प्रकृतिसे ही भद्र होना १ प्रकृतिसे ही विनयवान होना २ दयायुक्त होना ३ मत्सरता वा ईर्ष्या न करना ४ इन्ही कारणोंसे जीव मनुष्य

योनिके कर्म बांधते हैं ॥ और चार ही कारणोंसे जीव देव आ-
युको बांधते हैं जैसेकि—सराग संयम पाळण करना अर्थात् साधु
वृत्ति राग सहित पाळण करना १ श्रावकवृत्ति पाळनेसे २
और अज्ञान कष्ट सहन करनेसे ३ अकाम निर्जरासे अर्थात्
जिस वस्तुकी इच्छा है वह मिळती नही है और वासना नष्ट
भी नही हुई उस कारणसे भी आत्मा देव आयुको बांध लेते हैं,
अपितु मृत्यु समय जेकर शुभ परिणाम हो जावे तो ४ ॥ नाम
कर्म भी जीव चार ही कारणोंसे बांधते हैं, जैसेकि—कायाको ऋजु-
तामें रखना १ भावोंको भी ऋजु करना २ भाषा भी ऋजु ही
उच्चारण करनी ३ और मनमें कोई भी विषवाद न करना ४,
इन कारणोंसे जीव शुभ नाम कर्मको बांधते हैं ॥ और यह
चार ही वक्र करनेसे जीव अशुभ नाम कर्मको बांधते हैं और अष्ट
कारणोंसे जीव ऊच्च गोत्र कर्मको बांधते हैं, जैसेकि—जातिका
मद न करनेसे १ कुळका मद न करनेसे २ बळका मद न क-
रनेसे ३ रूपका मद न करनेसे ४ तपका मद न करनेसे ५
लाभका मद न करनेसे ६ श्रुतका मद न करनेसे ७ ऐश्वर्यका
मद न करनेसे ८ और आठ ही प्रकारके मद करनेसे जीव नीच
गोत्रके कर्मोंको बांधते हैं । और पांच ही प्रकारसे जीव अंतराय
कर्मोंको बांधते हैं, जैसेकि—दानकी अंतरायसे १ लाभान्तरायसे

२ भोग अंतरायसे ३ उपभोग अंतरायसे ४ बल वीर्य अंतरायसे ५ । यह पांच ही अंतराय करनेसे जीव अंतराय कर्मोंको बांधते हैं जैसेकि कोई पुरुष दान करने लगा तब अन्य पुरुष कोई दानका निषेध करने लग गया और वह दान करनेसे पराङ्मुख हो गया तो दानके निषेध करताने अंतराय कर्मको बांध लिया । इसी प्रकार अन्य अंतराय भी जान लेने ॥

सो यह अष्ट कर्मोंके बंधन भव्य जीवापेक्षा अनादि सान्त हैं, यदुक्तमागमे—

तहा जीवाणं कम्मो वचय पुच्छा गोयमा अत्थेगइयाणं जीवाण कम्मो वचय सादिए सपज्जवसिए अत्थे गइयाणं जीवाणं कम्मो वचय अणादिए सपज्जवसिए अत्थे गइयाणं अणादिए अप्पज्जवसिए नोचेवणं जीवाणं कम्मो वचय सादिए अप्पज्जवसिए से गोयमा इरिया वहिया बंधयस्स कम्मो वचय सादिय सपज्जवसिए भवसिद्धियस्स कम्मो वचय अणादिए सपज्जवसिए अभवसिद्धियस्स कम्मो वचय

अणादिय अप्पज्जावसिय से वत्थेणं भंते किं सादिए सपज्जावसिय चउभंगो गो० वत्थे सादिय सपज्जावसिय अवसेस्य तिण्हविपडिसेहियव्वा जहाणं भंते वत्थे सादिय सपज्जावसिय नो अणादिय अप्प० नो अणादिय सपज्जा० नो अणादिय अप्पज्जा० तहा जीवा किं सादिया सपज्जवसिया चोभंगो पुच्छा गोयमा अत्थे० सादियाअचत्तारि विभाणियव्वा से गो० नेरइयतिरिक्खजोणिय मणुस्स देवा गइरागइं पडुच्च सादिया सपज्जवसीता सिद्धिगइं पडुच्च सादिए अपज्जवसिया भवसिद्धीलद्धिं पडुच्च अणादिया सपज्जावसिया अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणादिया अप्पज्जावसिया ॥ भगवती सूत्र शतक ६ उद्देश ३ ॥

भावार्थः—श्री गौतम प्रभुजी श्री भगवानसे प्रश्न पूछते हैं कि हे भगवन्! जीवोंके साथ कर्मोंका उपचय (सम्बन्ध) क्या

सादि सान्त है अथवा अनादि सान्त है तथा सादि अनंत है वा अनादि अनंत है ? श्री भगवान् उत्तर देते है कि हे गौतम ! कतिपय जीवोंके साथ कर्मोंका उपच्चय सादि सांत भी है और कतिपय जीवोंके साथ अनादि सान्त भी है और कतिपय जीवोंके साथ कर्मोंका उपचय अनादि अनंत भी है किन्तु जीवोंके साथ कर्मोंका उपचय सादि अनंत नही होता है । तब गौतमजी पूर्वपक्ष करते हैं कि हे भगवन् ! यह वार्ता किस प्रकारसे सिद्ध है ? श्री भगवान् उदाहरण देकर उक्त कथनको स्पष्टतया सिद्ध करते है कि हे गौतम ! इर्यावही क्रियाका बंध सादि सान्त है उपशम मोहमें वा क्षीण मोहनी कर्ममें ही इसका बंध है ॥

और भव्य जीव अपेक्षा *कर्मोंका उपचय अनादि सान्त है अपितु अभव्य जीव अपेक्षा कर्मोंका उपचय अनादि अनंत

---

* श्री पणवन्नाजी सुत्रमें अष्ट कर्मोंकी प्रकृतियें १४८ लिखी हैं जैसेकि—ज्ञानावर्णीकी ५ दर्शनावर्णीकी ९ वेदनीकी २ मोहनीकी २८ आयुकर्मकी ४ नामकर्मकी ९३ गोत्रकी २ अंतराय कर्मकी ५ ॥ और इनका बंध उदय उदीरणा सत्ता इत्यादिका रूप उक्त सूत्रमें वा श्री भगवती इत्यादि सुत्रोंसे ही देख लेना ॥

है, इस कारणसे हे गौतम ! कतिपय जीवोंके साथ कर्मोंका सम्बन्ध सादि सान्तादि कहा जाता है ॥ श्री गौतमजी पुनः पूछते हैं कि हे भगवन् ! जो वस्त्र है क्या वे सादि सान्त है वा अनादि सान्त है तथा सादि अनंत है वा अनादि अनंत है ? श्री भगवान् उत्तर देते हैं कि हे गौतम ! वस्त्र सादि सान्त ही है किन्तु अन्य भंग वस्त्रमें नही है ॥

श्री गौतमजी—यदि वस्त्र सादि सान्त पदवाला है और भंगोंसे वर्जित है तो हे भगवन् ! जीव क्या सादि सान्त हैं वा अनादि सान्त हैं तथा सादि अनंत हैं वा अनादि अनंत हैं ?

श्री भगवान्—कतिपय जीव सादि सान्त पदवाले हैं, और कतिपय अनादि सान्त पदवाले हैं, अपितु कतिपय सादि अनंत पदवाले भी हैं और कतिपय अनादि अनंत पदवाले भी हैं ॥

श्री गौतमजी—यह कथन किस प्रकारसे सिद्ध है अर्थात् इसमें उदाहरण क्या क्या हैं ?

श्री भगवान्—हे गौतम ! नारकी तिर्यक् मनुष्य देव इन योनियोंमें जो जीव परिभ्रमण करते हैं उस अपेक्षा (गतागतिकी) जीव सादि सान्त पदवाले हैं क्योंकि जैसे मनुष्य योनिमें कोई जीव आया तो उसकी सादि है, अपितु जिस

समय मृत्युको प्राप्त होगा उस समय मनुष्य योनिका उस जीव अपेक्षा अंत होगा । इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना । और सिद्ध गतिकी अपेक्षा जीव सादि अनंत हैं, किन्तु भव्य सिद्ध लब्धि अपेक्षा जीव अनादि सान्त हैं, अभव्य जीव अपेक्षा अनादि अनंत हैं ॥ सो भव्य जीवोंके कर्मोंका सम्बन्ध द्रव्यार्थिक नयापेक्षा अनादि अनंत है और पर्यायार्थिक नयापेक्षा सादि सान्त हैं ॥ सो अष्ट कर्मोंके बंधनोंको छेदन करके जैसे अलाबुं (तूंबा) मृत्तिकाके वा रज्जुओंके बंधनोंको छेदन करके जलके उपरि भागमें आ जाता है इसी प्रकार आत्मा कर्मोंसे रहित हो कर मोक्षमें विराजमान हो जाता है ॥ सो मुनिधर्मको सम्यग् प्रकारसे पालण करके सादि अनंत पदयुक्त होना चाहिये, इसका ही नाम सर्व चारित्र है ॥

इति तृतीय सर्ग समाप्त ॥

॥ चतुर्थ सर्गः ॥

॥ अथ गृहस्थ धर्म विषय ॥

और गृहस्थ लोगोंका देशवृत्ति धर्म है क्योंकि गृहस्थ लोग सर्वथा प्रकारसे तो वृत्ति हो ही नही सक्ते इस लिये श्री भगवान्ने गृहस्थ लोगोंके लिये देशवृत्तिरूप धर्म प्रतिपादन किया है। सो गृहस्थ धर्मका मूल सम्यक्त्व है जिसका अर्थ है कि शुद्ध देव शुद्ध गुरु शुद्ध धर्मकी परीक्षा करना, फिर परीक्षाओं द्वारा उनको धारण करना, फिर तीन रत्नोंको भी धारण करना, न्यायसे कभी भी पराङ्मुख न होना क्योंकि गृहस्थ लोगोंका मुख्य कृत्य न्याय ही है, और अपने माता पिता भगिनी भार्या मातृ इत्यादि सम्बन्धियोंके कृत्योंको भी जानना, और कभी भी अन्यायसे वर्ताव न करना। देखिये श्री शान्तिनाथजी तीर्थंकर देव न्यायसे षट् खंडका राज्य पालन करके फिर तीर्थंकर पदको प्राप्त करके मोक्ष हो गये हैं। इसी प्रकार भरत चक्रवर्ती भी षट् खंडका राज्य भोग कर फिर मोक्षगत हुए। इससे सिद्ध है कि गृहस्थ लोगोंका मुख्य कृत्य न्याय ही है और न्यायसे ही यश, संपत्, लक्ष्मी इनकी प्राप्ति होती है। और

जो पुरुष अन्याय करनेवाले होते हैं वे दोनों लोगोंमें कष्ट सहन करते हैं जैसेकि इस लोगमें चौर्यादि कर्म करनेवाले वध बंधनोंसे पीड़ित होते हैं और परलोकमें नरकादि गतिओंके कष्ट भोगते हैं ॥ और हेमचन्द्राचार्य अपने बनाये योगशास्त्रके प्रथम प्रकाशमें गृहस्थ धर्म सम्बन्धि निम्न प्रकारसे श्लोक लिखते हैं:—

न्यायसम्पन्नविभवः शिष्टाचारप्रशंसकः ।
कुलशीलसमैः सार्द्धं कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजैः ॥ १ ॥

पापभीरुः प्रसिद्धं च देशाचारं समाचरन् ।
अवर्णवादी न क्वापि राजादिषु विशेषतः ॥ २ ॥

अनतिव्यक्तगुप्ते च स्थाने सुप्रातिवेश्मिके ।
अनेकनिर्गमद्वारविवर्जितनिकेतनः ॥ ३ ॥

कृतसङ्गः सदाचारैर्मातापित्रोश्च पूजकः ।
त्यजन्नुपप्लुतं स्थानमप्रवृत्तश्च गर्हिते ॥ ४ ॥

व्ययमायोचितं कुर्वन् वेषं वित्तानुसारतः ।
अष्टभिर्धीगुणैर्युक्तः शृण्वानो धर्ममन्वहम् ॥ ५ ॥

अजीर्णे भोजनत्यागी काले भोक्ता च सात्म्यतः ।
अन्योऽन्याप्रतिबंधेन त्रिवर्गमपि साधयन् ॥ ६ ॥

यथावदतिथौ साधौ दीने च प्रतिपत्तिकृत् ।
सदानभिनिविष्टश्च पक्षपाती गुणेषु च ॥ ७ ॥
अदेशाकालयोश्चर्यां त्यजन् जानन् बलाबलम् ।
वृत्तस्थ ज्ञानवृद्धानां पूज्यकः पोष्यपोषकः ॥ ८ ॥
दीर्घदर्शी विशेषज्ञः कृतज्ञो लोकवल्लभः ।
सलज्जः सदयः सौम्यः परोपकृतिकर्मठः ॥ ९ ॥
अंतरंगादिषड्वर्गपरिहारपरायणः ।
वशीकृतेन्द्रियग्रामो गृहिधर्माय कल्पते ॥ १० ॥

भावार्थः——न्यायसे धन उपार्जन वा शिष्टाचारकी प्रशंसा करनेवाला, वा जिनका कुल शील अपने सादृश्य है ऐसे अन्य गौत्रवालेके साथ, विवाह करनेवाला, वा पापसे डरनेवाला है, और प्रसिद्ध देशाचारको पालन करता हुआ किसी आत्माका भी कहींपर अवर्णवाद नहीं बोलता, अपितु राजादिकोंका विशेष करके अवर्णवाद वर्जता है और अति प्रगट वा अति गुप्त स्थानोंमें भी निवास नहीं करता किन्तु अच्छे पडोसीवाले घरमें रहनेवाला, और जिस स्थानके अनेक आने जानेके मार्ग होवे उस स्थानको वर्जता है। फिर सदाचारियोंसे संग करनेवाला, उपद्रव संयुक्त स्थानको वर्जनेवाला और जो कर्म

जगत्‌में निंदनीक हैं उनमें प्रवृत्ति नहीं करनेवाला, और अपने लाभके अनुसार व्यय करनेवाला तथा धनके अनुसार वेष रखनेवाला जो निरन्तर ही धर्मोपदेश श्रवण करनेवाला है, फिर अजीर्णमें भोजनका त्यागी समयानुकूल आहार करनेवाला है, अपितु किसीकी हानि न करना ऐसी रीतिसे धर्म अर्थ काम मोक्षको सेवन करता है और यथायोग्य अतिथियों और दीनोंकी प्रतिपत्ति करनेवाला है, फिर सदैव काल आग्रहरहित, गुणोंका पक्षपाती, जो देशके विरुद्ध काम नहीं करता, सब कामोंमें अपने बलाबलके जानकरके काम करनेवाला है, तथा जो महात्मा पंच महाव्रतोंको पालते हैं, और जो ज्ञानकी वृद्धिमें सदैवकाल कटिबद्ध है, ऐसे महात्माओंकी भक्ति वा पोषणे योग्यका पोषण करनेवाला, दीर्घदर्शी, विशेषज्ञ, कृतज्ञ, लोकवल्लभ, लज्जालु, दयालु, सौम्य, परोपकार करनेमें समर्थ, काम क्रोध लोभ मद हर्ष मान इन षट् अंतरंग वैरियोंके त्याग करनेमें तत्पर, और पांच इन्द्रियोंके वश करनेवाला, इस प्रकारकी वृत्तिवाला पुरुष गृहस्थ धर्मके धारणके योग्य होता है । और फिर सम्यक्त्वयुक्त गृहस्थ प्रथम ही सप्त व्यसनोंका परित्याग करे क्योंकि यह सात ही व्यसन दोनों लोगोंमें जीवोंको दुःखोंसे पीड़ित कर- ... हैं और इनके वशमें पडा हुआ प्राणी अपने अमूल्य

मनुष्य जन्मको हार देता है इस लिये सातोंका ही अवश्य त्याग करना चाहिये, जैसेकि–प्रथम व्यसन द्युतकर्म है अर्थात् जूयका खेलना सब आपात्तियोंकी खानि है और जुया-रीको सब ही अकार्य करने पडते हैं। यश संपत् सुनाम धैर्य सत्य संयम सुकर्म इत्यादि सर्वका ही यह द्युतकर्म नाश कर देता है इस लिये यह व्यसन त्यागनीय है॥

द्वितीय व्यसन—मांसभक्षण कदापि न करे क्योंकि यह कर्म अति निंदित धर्मका ही नाश करनेवाला है और आर्यता-का नष्ट करनेवाला है। अनेक रोग इसके द्वारा उत्पन्न होते हैं। फिर यह ऋण है क्योंकि जिस प्राणीका जिस आत्माने मांस-भक्षण किया है उस प्राणीके मांसको भी वह अवश्य ही खायेंगे तथा विचारशील पुरुषोंका कथन है कि–जो पशु (सिंहादि) मांसाहारी जब वे कुछ परोपकार नही कर सक्ते तो भला जो मनुष्य मांसाहारी हैं उनसे परोपकारकी क्या आशा हो सक्ती है? इस लिये द्वितीय व्यसन मांसभक्षणका त्याग करना चाहिये॥

तृतीय व्यसन—सुरापान है जो बुद्धिका विध्वंसक सत्य गुणाका नाशक है और धर्म कर्मसे पराङ्मुख करनेवाला है जिसकी उत्पात्ति भी परम घृणादायक है। और जो मद्यपान

करनेवालोंकी दुर्गति होती है वह भी लोगोंके दृष्टिगोचर ही है। इस लिये यह परम निंदनीय कर्म अवश्य ही त्यागने योग्य है॥

चतुर्थ व्यसन—वेश्यासंग है। इसके द्वारा भी जो जो प्राणी कष्टोंका अनुभव करते हैं वे भी अकथनीय ही हैं क्योंकि यह स्वयं तो मलीन होती ही है अपितु संग करनेवाले मलीनतासे अतिरिक्त शरीरके नाश करनेवाले अनेक रोगोंका भी पारितोषिक ले आते हैं। फिर वे उन पारितोषिक रूप रोगोंका आयुभर अनुभव करते रहते हैं। वेश्यागामीके सत्य शील तप दया धर्म विद्या आदि सर्व सुगुण नाशताको प्राप्त हो जाते हैं। फिर जो उनकी गति होती है वे महा भयाणक लोगोंके सन्मुख ही है, इस लिये गृहस्थ लोग वेश्या संगका अवश्य ही परिहार करे॥

पंचम व्यसन—आहेटक कर्म है। जो निर्दय आत्मा वनवासी निरापराधि तृणों आदिसे निर्वाह करनेवाले हैं उन प्राणियोंका वध करते हैं, वे महा निर्दय और महा अन्याय करनेवाले हैं, क्योंकि अनाथ प्राणियोंका वध करना यह कोई शूरवीरताका लक्षण नही है। बहुतसे अज्ञात जनोंने इस कर्मको अवश्यकीय ही मान लिया है, वे पुरुष सदैवकाल अपनी आ-

स्मोपरि पापोंका भार एकत्र कर रहे हैं, इस लिये प्राणिवध (शिकार) का त्याग अवश्यमेव ही करना चाहिये ॥

षष्ठम व्यसन—परस्त्री संग है, जिसके ग्रहणसे अनेक राजाओंके भयाणक संग्राम हुए और उनको परम कष्ट भोगने पड़े। अपितु कतिपयोंके तो प्राण भी चले गये और परस्त्री संगसे अनेक दुःख जैसेकि—अपयश, मृत्युका भय, रोगोंकी वृद्धि, शरीरका नाश, राज्यदंड इत्यादि अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं, इस लिये गृहस्थ लोग षष्ठम व्यसनका भी परित्याग करें ॥

सप्तम व्यसन—चौर्य कर्म है, सो यह भी महा हानिकारक, वध बंधादिका दाता, निंदनीय दुःखोंकी खानि, धर्मके वृक्षको काटनेके लिये परशु, सुकृतिका नाश करता, जिसके आसेवनसे देशमें अशान्ति इत्यादि अवगुणोंका समूह है सो धर्मकी इच्छा करता हुआ गृहस्थ इस चौर्य कर्मका भी परिहार करे। फिर द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुसार धर्मका उदय करता हुआ गुरु मुखसे द्वादश व्रत धारण करे जो निम्न लिखितानुसार है ॥

थुलाउ पाणाइवायाउ वेरमणं ॥

स्थूल जीवहिंसासे निवृत्तिरूप प्रथम अनुव्रत है क्योंकि सर्वथा जीवहिंसाकी तो गृहस्थी निवृत्ति नहीं कर सक्ते, इस

लिये उसके स्थूल जीवहिंसाका परित्याग होता है, जैसेकि-जान करके वा देख करके निरपराधि जीवोंको न मारे। उसमें भी सगासम्बंधि आदिका आगार होता है और इस नियमसे न्यायमार्गकी प्रवृत्ति अतीव होती है। फिर इस नियमको राजोंसे लेकर सामान्य जीवों पर्यन्त सबी आत्मायें सुखपूर्वक धारण कर सक्ते हैं और इस नियमसे यह भी सिद्ध होता होता है कि जैन धर्म प्रजाका हितैषी राजे लोगोंका मुख्य धर्म है। निर-पराधियोंको मत दुःख दो और न्यायमार्गसे वाहिर भी मत हो-वो और सिद्धार्थ आदि अनेक महाराजोंने इस नियमको पालन किया है। फिर भी जो जीव सअपराधि हैं उनको भी दंड अन्यायसे न दिया जाये, दंडके समय भी दयाको पृथक् न किया जाये, जिस प्रकार उक्त नियममें कोइ दोष न लगे, उस प्रकारसे ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि सूत्रोंमें यह वात देखी जाती है। जिस राजाने किसी अमुक व्यक्तिको दंड दिया तो साथ ही स्वनगरमें उद्‍घोषणासे यह भी प्रगट कर दिया कि-हे लोगो! इस व्यक्तिको अमुक दंड दिया जाता है इसमें राजेका कोइ भी अपराध नही है, न प्रजाका, अपितु जिस प्रकार इसने यह काम किया है उसी प्रकार इसको यह दंड दिया गया है।

इस कथनसे भी न्यायधर्मकी ही पुष्टि होती है ॥

सो प्रथम व्रतकी शुद्ध्यर्थे पांच अतिचारोंको भी वर्जित करे जोकि प्रथम व्रतमें दोषरूप है अर्थात् प्रथम व्रतको कलंकित करनेवाले हैं, जैसेकि—

वंधे १ वहे २ छविच्छेदे ३ अइभारे ४ भत्तपाणिवुच्छेए ५ ॥

अर्थः—क्रोधके वश होता हुआ काठिन बांधनोंसे जीवोंको बांधना १ और निर्दयके साथ उनको मारना २ तथा उनके अंगोपाङ्गको छेदन करना ३ अप्रमाण भारका लादना अर्थात् पशुकी शक्तिको न देखना ४ अन्न पाणीका व्यवच्छेद करना अर्थात् अन्न पाणी न देना ५ ॥ यह पांच ही दोष प्रथम व्रतको कलंकित करनेवाले हैं, इस लिये प्रथम व्रतको पालनेहारे जीव उक्त लिखे हुए पांच अतिचारोंको अवश्य ही त्यागें, तव ही व्रतकी शुद्धि हो सक्ती है ॥

द्वितीय अनुव्रत विषय ।

थुलाउ मुसावायाउ वेरमणं ॥

स्थूल मृषावाद निवृतिरूप द्वितीय अनुव्रत है जैसेकि स्थूलमृषावाद कन्याके लिये, गवादि पशुओंके लिये, भूम्यादिके लिये अय-

वा स्थापनमृषा (धरोड मारना) कूट शाक्षी तथा व्यापारमें स्थूल असत्य और अन्य २ कारणोंमें जिसके भाषण करनेसे प्रतीतका नाश होवे, राज्यसे दंडकी प्राप्ति होवे, और आत्मा पापसे कलंकित हो जाय इत्यादि कारणोंसे असत्यभाषी न होवे, अपितु यह ना समज लिजीये स्थूल ही मृषावादका परित्याग है किन्तु सूक्ष्मकी आज्ञा है । मित्रवरो ! सूक्ष्मकी आज्ञा नही है किन्तु दोष न लग जानेपर स्थूल शब्द ग्रहण किया गया है अर्थात् व्रतमें दोष न लगे । अपितु असत्य सर्वथा ही त्यागनीय है और जीवको सदैवकाल दुःखित रखनेवाला है, संसारचक्रमें परिवर्तन करानेवाला सुकर्म्मोंका नाशक है, किन्तु सत्य व्रत ही आत्माकी रक्षा करनेवाला है । सो इस व्रतकी रक्षार्थे भी पांच ही अतिचारों वर्जे, जैसेकि—

सहस्सा भक्खाणे रहस्सा भक्खाणे सदारमंतभेय मोसोवएसो कूड लेह करणे ॥

अर्थः—अकस्मात् विना उपयोग भाषण करना १ । तथा गुप्त वार्ताओंको प्रगट करना अर्थात् जिनके प्रगट करनेसे किसी आत्माको दुःख पहुंचता हो अथवा कामकथादि २ । अपने घरकी वातें वा स्वस्त्रीकी वातें प्रगट करना ३ ।

और अन्य पुरुषोंको असत्य उपदेश करना ४ । तथा असत्य ही लेख लिखने ५ । इन पांच ही अतिचारोंको त्याग करके द्वितीय व्रत शुद्ध ग्रहण करे ॥

तृतीय अनुव्रत विषय ॥

थुलाउ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥

तृतीय अनुव्रत स्थूल चोरीका परित्यागरूप है जैसेकि ताला पडि कूची, गांठ छेदन करना, किसीकी भित्ति तोड़ना, मार्गोंमें लूटना, डाके मारने; क्योंकि यह ऐसा निंदनीय कर्म है कि दोनों लोगोंमें भयाणक दशा करनेवाला है और इसके द्वारा वधकी प्राप्ति होना तो स्वाभाविक वात है ॥ फिर इस कर्म कर्ताओंके दया तो रही नही सक्ति, सव मित्र उसीके ही शत्रु रूप बन जाते हैं और इस कर्मके द्वारा प्राणि अनेक कष्टोंको भोगते हैं, इस लिये तृतीय व्रतके धारण करनेवाला गृहस्थ पांच अतिचारोंका भी परिहार करे जैसेकि—

तेणाहडे १ तक्कर पउगे २ विरुद्ध रज्जाइक्कम्मे ३ कूड़ तोले कूड़ माणि ४ तप्पडिरूवग ववहारे ५ ॥

भावार्थः—इस व्रतकी रक्षा अर्थे निम्न लिखित अतिचार अवश्य ही वर्जे, जैसेकि-चोरीकी वस्तु (माल) लेनी क्योंकि इस कर्मके द्वारा जो लोग फल भोगते हैं वह लोगोंके दृष्टिगोचर ही हैं १। और चोरोंकी रक्षा वा सहायता करना २। राज्य विरुद्ध कार्य करने क्योंकि यह कार्य परम भयाणक दशा दिखलानेवाला है और तृतीय व्रतको कलंकित करनेवाला है ३। फिर कूट तोल कूट ही माप करना (घट देना, वृद्धि करके लेना) ४। और शुद्ध वस्तुओंमें अशुद्ध वस्तु एकत्र करके विक्रय करना क्योंकि यह कर्म यश और सत्यका दोनोंका ही घातक है। इस लिये पांचो अतिचारोंको परित्याग करके तृतीय व्रत शुद्ध धारण करे ॥

चतुर्थ स्वदार संतोष व्रत ॥

मित्रवरो! कामको वशी करना और इन्द्रियोंको अपने वशमें करना यही परम धर्म है जैसे इंधनसे अग्नि तृप्तिको प्राप्त नही होती केवल पाणी द्वारा ही उपशमताको प्राप्त हो जाती है, इसी प्रकार यह काम अग्नि संतोष द्वारा ही उपशम हो सक्ती अन्य प्रकारसे नही, क्योंकि यह ब्रह्मचर्य व्रत आत्मशक्ति, अक्षय सुख, शरीरकी निरोगता, उत्साह, हर्ष, चित्तकी

कारण वशात् लघु व्यवस्थामें ही विवाह हो गया तो लघु व्यवस्थायुक्त स्त्रीके साथ संभोग न करे, यदि करे तो प्रथम अतिचार है १। अथवा यदि उपविवाह हुआ उसके साथ संग करना जिसको मांगना कहते हैं २। कुचेष्टा करना अर्थात् कामके वशीभूत होकर कुचेष्टा द्वारा वीर्यपात करना ३। तथा परका मांगना किया हुआ उसको आप ग्रहण करना (उपविवाहको) ४। और कामभोगकी तिव्र अभिलाषा रखनी ५। इन पांच ही अतिचारोंको त्यागके चतुर्थ स्वदार संतोषी व्रतको शुद्धताके साथ धारण करे क्योंकि यह व्रत परम आल्हाद भावको उत्पन्न करनेहारा है॥ फिर पंचम अनुव्रतको धारण करे जैसेकि—

इच्छा परिमाण व्रत विषय ॥

इच्छा परिमाणे ॥

मित्रवरो ! तृष्णा अनंती है, इसका कोइ भी थाह नही मिलता। इच्छाके वशीभूत होते हुए प्राणी अनेक संकटोंका सामना करते हैं, रात्री दिन इसकी ही चिंतामें लगे रहते हैं, इसके ये कार्य अकार्य करते लज्जा नही पाते और अयोग्य कामों- लिये भी उद्यत हो जाते हैं, परंतु इच्छा फिर भी पूर्ण

नही होती । अनेक राजे महाराजे चक्रवर्ती आदि भी इस तृष्णा रूपी नदीसे पार न हुए और किसीके साथ भी यह लक्ष्मी न गइ । यदि यों कहा जाय तो अत्युक्ति न होगा कि तृष्णाके वशसे ही प्राणी सर्व प्रकारसे और सर्व ओरसे दुःखोंका अनुभव करते हैं ॥ इस लिये तृष्णा रूपी नदीसे पार होनेके लिये संतोष रूपी सेतु (शेतुपुल) बांधना चाहिये अर्थात् इच्छाका परिमाण होना चाहिये । जव परिमाण किया गया तव ही पंचम अनुव्रत सिद्ध हो गया । इसी वास्ते श्री सर्वज्ञ प्रभुने दुःखोंसे छुटनेके वास्ते आत्माको सदैवकाल आनंद रहेनेके वास्ते पंचम अनुव्रत इच्छा परिमाण प्रतिपादन किया है, जिसका अर्थ है कि इच्छाका परिमाण करे, आगे वृद्धि न करे ॥ और इस व्रतके भी पांच ही अतिचार है, जैसेकि—

खेत्त वत्थु प्पमाणातिक्कम्मे हिरएण सुवएण प्पमाणातिक्कम्मे दुप्पय चउप्पय प्पमाणातिक्कम्मे धएण धाएण प्पमाणातिक्कम्मे कुविय धात प्पमाणातिक्कम्मे ॥

भाषार्थः—क्षेत्र, वस्तु (घर हाट) के परिमाणको अति-

क्रम करना, हिरण्य सुवर्णके परिमाणको अतिक्रम करना, द्विपाद (मनुष्यादि) चतुष्पाद (पशवादिके) के परिमाणको अतिक्रम करना, और धन धान्यके परिमाणको अतिक्रम करना, फिर घरके उपकर्णके परिमाणको अतिक्रम करना वही पंचम अनुव्रतके अतिचार हैं अर्थात् जितना जिस वस्तुका परिमाण किया हो उनको उल्लंघन करना वही अतिचार है; इस लिये अतिचारोंको वर्जके पंचम अनुव्रत शुद्ध पालन करे ॥

और षष्ठम, सप्तम, अष्टम, इन तीनों व्रतोंको गुणव्रत कहते है क्योंकि यह तीन गुणव्रत पांच ही अनुव्रतोंको गुणकारी हैं, और पांच ही अनुव्रत इनके द्वारा सुरक्षित होते हैं ॥

अथ प्रथम गुण व्रत विषय ॥

दिग्व्रत ॥

सुयोग्य पाठक गण! प्रथम गुणव्रतका नाम दिग्व्रत है जिसका अर्थ यह है कि दिशाओंका परिमाण करना, जैसेकि पूर्व, पश्चिम, दाक्षिण, उत्तर, उर्ध्व, अधो, इन दिशाओंमें स्वकाया करके गमण करनेका परिमाण करना। और पांच आस्रव सेवनका परित्याग करना क्योंकि जितनी मर्यादा करेगा उतनी ही आस्रव निरोध होगा। सो इस व्रत के भी पांच ही अति- हैं जैसेकि—

उड्ढ दिसि प्पमाणातिक्कमे अहो दिसि प्पमाणाइक्कमे तिरिय दिसि प्पमाणाइक्कमे खेत्त वुड्ढि सइअंतरद्धा ।

भाषार्थः—उर्ध्व दिशिका प्रमाण अतिक्रम करना १ अधो दिशिका प्रमाण अतिक्रम करना २ तिर्यंग् दिशिका प्रमाण अतिक्रम करना ३ क्षेत्रकी वृद्धि करना जैसेकि कल्पना करो कि किसी गृहस्थने चारों ओर शत (सौ २) योजन प्रमाण क्षेत्र रक्खा हुआ है । फिर ऐसे न करे कि पूर्वकी ओर १५० योजन प्रमाण कर लूं और दक्षिणकी ओर ५० योजन ही रहने दुं क्योंकि दाक्षिणमें मुजे काम नही पड़ता पूर्वमें अधिक काम रहता है; यह भी अतिचार है ४ । और पंचम अतिचार यह है कि जैसेकि प्रमाणयुक्त भूमिमें संदेह उत्पन्न हो गया कि स्यात् में इतना क्षेत्र प्रमाण युक्त आ गया हूं सो संशयमें ही आगे गमण करना यही पांचमा आतिचार है अपितु पांचो ही अतिचारोंको वर्जके प्रथम गुणव्रत शुद्ध ग्रहण करना चाहिये ॥

भोग परिभोग परिमाणे ।

जो वस्तु एक वार भोगनेमें आवे तथा जो वस्तु वारम्बार

भोगनेमें आवे उसका परिमाण करना सो ही द्वितीय गुणव्रत है, सो इस व्रतके अंतरगत ही षट्विंशति वस्तुओंका परिमाण अवश्य करना चाहिये, जैसेकि—

१ उल्लणियाविहं—स्नानके पश्चात् शरीरके पूंछनेवाले वस्त्रका परिमाण करना तथा जितने वस्त्र रखने हों।

२ दंतणाविहं—दांत प्रक्षालण अर्थे दांतुनका परिमाण करना।

३ फलविहं—केशादि धोवनके वास्ते फलोंका परिमाण करना।

४ अभंगणाविहं—तैलादिका प्रमाण अर्थात् शरीरके मर्दन वास्ते।

५ उवट्टणविहं—शरीरकी पुष्टि वास्ते उवट्टनका परिमाण।

६ मज्जनविहं—स्नानका परिमाण गणन संख्या वा पाणीका परिमाण।

७ वत्थविहं—वस्त्रोंका प्रमाण अर्थात् वस्त्रोंकी जाति संख्या वा गणन संख्या।

८ विलेवणाविहं—चंदनादि विलेपनका परिमाण।

९ पुष्फविहं—शरीरके परिभोगनार्थे पुष्पोंका परिमाण।

१० आभरणविहं—आभूषणोंका परिमाण।

११ धूवविहं—धूपविधिका परिमाण अर्थात् धूपयोग्य वस्तुओंके नाम स्मृति रखके अन्य वस्तुओंका परित्याग करना।

१२ पिज्जाविहं—पीनेवाली वस्तुओंका परिमाण करना।

१३ भक्खणविहं—भक्षण (खाने) करनेवाली वस्तुओं-का परिमाण।

१४ उदनविहं—शाल्यादि धानादिका परिमाण।

१५ सूफविहं—शूपा (दाळ) दिका परिमाण।

१६ विगयविहं—दुग्ध, घृत, नवनीत, तैळ, गुड़, मधु, दधि, इनका परिमाण करना।

१७ सागविहं—शाक विधिका परिमाण अर्थात् जो वन-स्पतियें शाकादि परिपक्क करके ग्रहण की जाती हैं।

१८ महुरविहं—फळोंका परिमाण।

१९ जीमणाविहं—व्यञ्जनादिका परिमाण जैसेकि मसालादि।

२० पाणीविहं—पाणीका परिमाण कूपादिका तथा अन्य जळ।

२१ मुखावासविहं—ताम्बूलादिका परिमाण।

२२ वाहणविहं—वाहण विधिका परिमाण अर्थात् स्वारि का परिमाण।

२३ पाहणिविहं—पादरक्षकका परिमाण अर्थात् जूती आदिका परिमाण करना ।

२४ सयणविहं—शय्याका परिमाण अर्थात् वस्त्रोंकी गणन संख्या अथवा शय्यादि स्पर्श करना वा पल्यंकादिका परिमाण।

२५ सचित्तविहं—सचित्त वस्तुओंका परिमाण अर्थात् पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति इत्यादि सचित्त वस्तुओंका परिमाण ।

२६ दरबविहं—द्रव्योंका परिमाण अर्थात् भिन्न २ वस्तुओंका नाम लेकर परिमाण करना। जैसे किसीने ५ द्रव्य रक्खें तो जल १ पूपा (रोटी) २ दाल ३ शाक ४ दुग्ध ५। इसी प्रकार अन्य द्रव्योंका परिमाण भी जान लेना चाहिये। तात्पर्य यह है कि विना परिमाण कोई भी वस्तु ग्रहण करनी न चाहिये। सो इसके भी पांच ही अतिचार हैं, जैसेकि—

सचित्ताहारे सचित्त पडिबद्धाहारे अप्पोलिउसही भक्खणया दुप्पोलउसही भक्खणया तुच्छोसही भक्खणया ॥

भाषार्थः—सचित्त वस्तुका परित्याग होने पर यह अतिचार भी वर्जे, जैसेकि सचित्त वस्तुका आहार १ सचित्त प्रति-

वद्धका आहार २ अपक्क आहार ३ दुःपक्क आहार ४ तुच्छोपधिका आहार ५ ॥ इन पांच ही अतिचारोंको वर्जके फिर १५ कर्मादानको भी परित्याग करे क्योंकि पंचदश कर्म ऐसे हैं जिनके करनेसे महा कर्मोंका बंध होता है। सो गृहस्थोंको जानने योग्य हैं अपितु ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, जैसे कि—

१ अङ्गारकम्मे—कौलादिका व्यापार।

२ वणकम्मे—वन कटवाना क्योंकि यह कर्म महा निर्दयताका है।

३ साडीकम्मे—शकट (गाड़े) करवाके वेचने।

४ भाडीकम्मे—पशुओंको भाडेपर देना क्योंकि इस कर्म करनेवालोंको पशुओंपर दया नही रहती।

५ फोडीकम्मे—पृथ्वी आदिका स्फोटक कर्म जैसे कि शिलादि तोड़ना वा पर्वत आदिको।

६ दंत्तवणिज्जे—हस्ती आदिके दांत्तोंका वाणिज्ज करना।

७ लक्खवणिज्जे—लाखका वाणिज्ज तथा मजीठाका व्यापार करना ॥

८ रसबाणिज्जे—रसोंका वनज करना जैसेकि घृत, तेल, गुड़, मदिरादि ॥

९ केसवाणिज्जे—केशोंका वनज करना तथा केश शब्दके अंतरगत ही मनुष्य विक्रियता सिद्ध होती है ॥

१० विसवणिज्जे–विषकी विक्रियता करनी क्योंकि यह कृत्य महा कर्मोके बंधका स्थान है और आशीर्वादका तो यह प्रायः नाश ही करनेवाला है ॥

११ जंत्तपीलणियाकम्मे–यंत्र पीड़न कर्म जैसे कि कोल्हु ईख पीड़नादि कर्म हैं।

१२ निलंच्छणियाकम्मे–पशुओंको नपुंसक करना वा अवयवोंका छेदन भेदन करना ॥

१३ दवग्गिदावणियाकम्मे–वनकों अग्नि लगाना तथा द्वेषके कारण अन्य स्थानोंको भी अग्निद्वारा दाह करना इत्यादि कृत्य सर्व उक्त कर्ममें ही गर्भित हैं ॥

१४ सर दह तलाव सोसणियाकम्मे–जलाशयोंके जलको शोषित करना, इस कर्मसे जो जीव जलके आश्रयभूत हैं वा जो जीव जलसे निर्वाह करते हैं उन सर्वोंको दुःख पहोंचता है और निर्दयता बढ़ती है ॥

१५ असइजणपोसणियाकम्मे–हिंसक जीवोंकी पालना करना हिंसाके लिये जैसेकि–मार्जारका पोषण करना मूषकों (उंदर) के लिये, श्वानोंकी प्रतिपालना करना जीववधके लिए ।, हिंसक जीवोंसे व्यापार करना वह भी इसी कर्ममें गर्भित , सो यह कर्म गृहस्थोंको अवश्य ही त्याज्य हैं। जो आर्यकर्म

हैं उनमें जीवहिंसाका निरोध होनेसे ही जीवोंको निज ध्यानकी ओर शीघ्र ही आकर्षणता हो जाती है क्योंकि—आर्य कर्मके द्वारा आर्य मार्गकी भी शीघ्र प्राप्ति होती है। फिर इस द्वितीय गुणव्रतको धारण करके तृतीय गुणव्रतको ग्रहण करे।

अथ तृतीय गुणव्रत विषय।

सुज्ञ जनों! तृतीय गुणव्रत अनर्थ दंड है। जो वस्तु स्वग्रहण करनेमें न आवे और किसीके उपकारार्थ भी न हों, निष्कारण जीवोंका मर्दन भी हो जाए ऐसे निंदित कर्मोंका अवश्यमेव ही परित्याग करना चाहिए। वे अनर्थ दंडके मुख्य कारण शास्त्रोंमें चार वर्णन किये हैं जैसेकि—(अवज्झाण चरियं पमायचरियं हिंसपयाणं पावकम्मोवएसं) आर्त्त ध्यान करना क्योंकि इसके द्वारा महा कर्मोंका वंध, चित्तकी अशान्ति, धर्मसे पराङ्मुखता इत्यादि कृत्य होते हैं इस लिए अपने संचित कर्मोंके द्वारा सुख दुःख जीवोंको प्राप्त होते हैं, इस प्रकारकी भावनाएं द्वारा आत्माको शान्ति करनी चाहिए। फिर कभी भी प्रमादाचरण न करना चाहिए जैसे घृत तैल जलादिको विना आच्छादन किये रखना, यदि उक्त वस्तुओंमें जीवोंका प्रवेश हो जाए तो फिर उनकी रक्षा होनी कठिन ही नहीं किन्तु असंभव ही है। फिर

१० विसवणिज्जे—विषकी विक्रियता करनी क्योंकि यह कृत्य महा कर्मोंके बंधका स्थान है और आशीर्वादका तो यह प्रायः नाश ही करनेवाला है ॥

११ जंत्तपीलणियाकम्मे—यंत्र पीड़न कर्म जैसे कि कोल्हु ईख पीड़नादि कर्म हैं ।

१२ निलंच्छणियाकम्मे—पशुओंको नपुंसक करना वा अवयवोंका छेदन भेदन करना ॥

१३ दवग्गिदावणियाकम्मे—वनकों अग्नि लगाना तथा द्वेषके कारण अन्य स्थानोंको भी अग्निद्वारा दाह करना इत्यादि कृत्य सर्व उक्त कर्ममें ही गर्भित हैं ॥

१४ सर दह तलाव सोसणियाकम्मे—जलाशयोंके जलको शोषित करना, इस कर्मसे जो जीव जलके आश्रयभूत हैं वा जो जीव जलसे निर्वाह करते हैं उन सबोंको दुःख पहोंचता है और निर्दयता बढ़ती है ॥

१५ असइजणपोसणियाकम्मे—हिंसक जीवोंकी पालना करना हिंसाके लिये जैसेकि—मार्जारका पोषण करना मूषकों (उंदर) के लिये, श्वानोंकी प्रतिपालना करना जीववधके लिए और हिंसक जीवोंसे व्यापार करना वह भी इसी कर्ममें गर्भित है, सो यह कर्म गृहस्थोंको अवश्य ही त्याज्य हैं । जो आर्यकर्म

हैं उनमें जीवहिंसाका निरोध होनेसे ही जीवोंको निज ध्यानकी ओर शीघ्र ही आकर्षणता हो जाती है क्योंकि—आर्य कर्मके द्वारा आर्य मार्गकी भी शीघ्र प्राप्ति होती है। फिर इस द्वितीय गुणव्रतको धारण करके तृतीय गुणव्रतको ग्रहण करे।

अथ तृतीय गुणव्रत विषय।

सुज्ञ जनों! तृतीय गुणव्रत अनर्थ दंड है। जो वस्तु स्वग्रहण करनेमें न आवे और किसीके उपकारार्थ भी न हों, निष्कारण जीवोंका मर्दन भी हो जाए ऐसे निंदित कर्मोंका अवश्यमेव ही परित्याग करना चाहिए। वे अनर्थ दंडके मुख्य कारण शास्त्रोंमें चार वर्णन किये हैं जैसेकि—(अवज्झाण चरियं पमायचारियं हिंसपयाणं पावकम्मोवएसं) आर्त्त ध्यान करना क्योंकि इसके द्वारा महा कर्मोंका बंध, चित्तकी अशान्ति, धर्मसे पराङ्मुखता इत्यादि कृत्य होते हैं इस लिए अपने संचित कर्मोंके द्वारा सुख दुःख जीवोंको प्राप्त होते हैं, इस प्रकारकी भावनाएं द्वारा आत्माको शान्ति करनी चाहिए। फिर कभी भी प्रमादाचरण न करना चाहिए जैसे घृत तैल जलादिको विना आच्छादन किये रखना, यदि उक्त वस्तुओंमें जीवोंका प्रवेश हो जाए तो फिर उनकी रक्षा होनी कठिन ही नहीं किन्तु असंभव ही है। फिर

हिंसाकारी पदार्थोंका दान करना जैसे—शस्त्रदान, अग्निदान, और ऊखल मूसलदान इत्यादि दानोंसे हिंसाकी प्रवृत्ति होती है, सुकर्मकी अरुचि हो जाती है। और चतुर्थ कर्म अन्य आत्माओंको पाप कर्ममें नियुक्त करना, सो यह कर्म कदापि आसेवन न करने चाहिए। फिर इस तृतीय गुणव्रतकी रक्षाके लिए पांच अतिचारोंको भी छोड़ना चाहिए जो निम्न प्रकारसे हैं॥

कंदप्पे १ कुकुइए २ मोहरिए ३ संजुत्ताहिगरणे ४ उवभोग परिभोग अइरित्ते ५॥

भावार्थ—कामजन्य वार्त्ताओंका करना १ और कुचेष्टा करना तथा सॉग होरी आदिमें उपहास्यजन्य कार्य करने २ असंबद्ध वचन भाषण करने तथा मर्मयुक्त वचन बोलने ३ प्रमाणसे अधिक उपकरण वा शस्त्रादिका संचय करना ४ जो वस्तु एक वार आसेवन करनेमें आवे अथवा जो वस्तु पुनः २ ग्रहण करनेमें आवे उनका प्रमाणसे अधिक संचय करना अथवा प्रमाणयुक्त वस्तुमें अत्यन्त मूर्च्छित हो जाना। यह पांच अतिचार छोड़ने चाहिए, क्योंकि इन दोषोंके द्वारा व्रत ंकित हो जाते हैं और निर्जराका मार्ग ही बंध हो जाता , सो विना निर्जराके मोक्ष नही अपितु मुक्तिके लिए श्री

अर्हन् देवने चार शिक्षाव्रत प्रतिपादन किए हैं जिनमें प्रथम शिक्षाव्रत सामायिक है ॥

अथ सामायिक प्रथम शिक्षाव्रत विषय ॥

जो जीवोंको अतीव १पुण्योदयसे मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है उसको सफल करनेके लिये दोनों समय सामायिक करना चाहिए ॥ २सम–आय–इक–इन की संधि करनेसे

---

१ नवविहे पुण्णे पं. तं. अन्नपुण्णे १ पाणपुण्णे २ वत्थपुण्णे ३ लेणपुण्णे ४ सयणपुण्णे ५ मणपुण्णे ६ वयपुण्णे ७ कायपुण्णे ८ नमोक्कारपुण्णे ९ ॥ ठाणाग सू० स्था० ९ ॥

भाषार्थ––नव प्रकारसे जीव पुन्य प्रकृतिको बांधते हैं जैसे कि–अन्नके दानसे १ पानीके दानसे इसी प्रकारसे २ वस्त्रदान ३ शय्यादान ४ संस्तारकदानसे ५ । फिर शुभ मनके धारण करनेसे ६ और शुभ वचनके बोलनेसे ७ शुभ कायाके धारण करनेसे ८ और सुयोग्य पुरुषोंको नमस्कार करनेसे ९ । सो इन कारणोंसे जीव पुन्यरूप शुभ प्रकृतिका बंध कर लेता है ॥

२ सम शब्दके सकारका अकार, ठण् प्रत्ययान्त होनेसे दीर्घ हो जाता है क्योंकि–जिस प्रत्ययके ञ्–ण्–इत्संज्ञक होते है उनके आदि अच्को आ–आर् और ऐच् हो जाते हैं । इसी प्रकारसे सामायिक शब्दकी भी सिद्धि है ॥

सामायिक शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ यह है कि आत्माको शान्ति मार्गमें आरूढ़ करना वा जिसके करनेसे शान्तिकी प्राप्ति होवे उसीका नाम सामायिक है। सो इस प्रकारसे भाव सामायिकको दोनों काल करे। फिर प्रातःकाल, और सन्ध्याकालमें सामायिककी पूर्ण विधिको भलि भांतिसे करता हुआ सामायिक सूत्रको पठन करके इस प्रकारसे विचार करे कि यह मेरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, केवल कर्मोंके अंतरसे ही इसकी नाना प्रकारकी पर्याय हो रही है और अनादि काल के कर्मोंके संगसे इस प्राणीने अनंत जन्म मरण किये हैं। फिर पुनः २ दुःखरूपि दावानलमें इस प्राणीने परम कष्टोंको सहन किया है, और तृष्णाके वशमें होता हुआ अतृप्त ही मृत्युको प्राप्त हो जाता है। सो ऐसे परम दुःखरूप संसार चक्रसे विमुक्त होनेका मार्ग केवल सम्यग् ज्ञान सम्यग् दर्शन सम्यग् चारित्र ही है। सो जब प्राणी आस्त्रवके मार्गोंको बंध करता है और आत्माको अपने वशमें कर लेता है, तब ही कर्मोंके बंधनोंसे विमुक्त हो जाता है। सो इस प्रकारके सद् विचारोंके द्वारा सामायिक परिपूर्ण करे। अपितु सामायिक रूप व्रत दो घटिका दोनों समय अवश्य ही करना चाहिये और इस व्रतके पांचों अतिचारोंको वर्जना चाहिये, जैसे कि—

मण दुप्पणिहाणे वय दुप्पणिहाणे काय दुप्पणिहाणे सामायियस्स अकरणयाय सामायियस्स अणवठियस्स अकरणयाए ॥ ५ ॥

भाषार्थः—सामायिक व्रतके भी पांच ही अतिचार हैं, जैसे कि–मनसे दुष्ट ध्यान धारण करना १ वचन दुष्ट उच्चारण करना २ और कायाको भी वशमें न करना ३ शक्ति होते हुए सामायिक न करना ४ और सामायिकके कालको विना ही पूर्ण किये पार लेना ५ ॥ यह पांच ही सामायिक व्रतके अतिचार हैं, सो इनका परित्याग करके शुद्ध सामायिक रूप नियम दोनों समय अर्थात् सन्ध्या समय और प्रातःकाल नियमपूर्वक आसेवन करे और अतिचारोंको कभी भी आसेवन करे नहीं, क्योंकि अतिचाररूप दोष व्रतको कलंकित कर देते हैं। सो यही सामायिक रूप प्रथम शिक्षाव्रत है ॥

फिर द्वितीय शिक्षाव्रत ग्रहण करे, जैसे कि–

देशावकाशिक ॥

जो षष्ठम व्रतमें पूर्वादि दिशाओंका प्रमाण किया था उस प्रमाणसे नित्यम् प्रति स्वल्प करते रहना उसीका ही नाम देशा-

वकाशिक व्रत है और इसी व्रतमें चतुर्दश नियमोंका धारण किया जाता है। अपितु जिस प्रकारसे नियम करे उसी प्रकारसे पालन करे किन्तु परिमाणकी भूमिकासे वाहिर पांचास्रव सेवन का प्रत्याख्यान करे। अपितु इस व्रतके धारण करनेसे बहुत ही पापोंका प्रवाह वंध हो जाता है और इस व्रतका भी पांचो अति-चारोंसे रहित होकर पालण करे, जैसे कि–

आणवणप्पउग्गे पेसवणप्पउग्गे सद्दाणु-वाय रूवाणुवाय वहियापोग्गल पक्खेवे ॥

भाषार्थः—प्रमाणकी भूमिकासे वाहिरकी वस्तु आज्ञा करके मंगवाई हो १ तथा परिमाणसे वाहिर भेजी हो २ और शब्द करके अपनेको प्रगट कर दिया हो ३ वा रूप करके अपने आपको प्रसिद्ध कर दिया हो ४ अथवा किसी वस्तु पर पुद्गल क्षेप करके उस वस्तुका अन्य जीवोंको बोध करा दिया हो ५॥ सो इन पांच ही अतिचारोंको परित्याग करके दशवा देशावका-शिक व्रत शुद्ध धारण करे। और फिर पर्व दिनोंमें तथा मासमें पौषध करे क्योंकि पौषध व्रत अवश्य ही धारण करना चा-जिसके धारण करनेसे कर्मोंकी निर्जरा वा तप कर्म दोनों सिद्ध हो जाते हैं ॥

तृतीय पौषध शिक्षाव्रत विषय ॥

उपाश्रयमें वा पौषधशालामें तथा स्वच्छ स्थानमें अष्ट याम-पर्य्यन्त एक स्थानमें रहकर उपवास व्रत धारण करना उसका ही नाम पौषध व्रत है। अपितु पौषधोपवासमें अन्न, पाणी, खाद्यम, स्वाद्यम, इन चारों ही आहारका प्रत्याख्यान होता है, और ब्रह्मचर्य धारण करा जाता है। अपितु मणि स्वर्णादिका भी प्रत्याख्यान करना पड़ता है, शरीरके शृंगारका भी त्याग होता है, अपितु शस्त्रादि भी पास रक्खे नही जा सक्ते और सावद्य योगोंका भी नियम होता है। इस प्रकारसे पौषधोपवास व्रत ग्रहण करा जाता है। प्रतिमासमें षट् पौषधोपवास करे तथा शक्ति प्रमाण अवश्य ही धारण करने चाहिये। और पांचो अतिचारोंको भी त्यागना चाहिये—जैसेकि शय्या संस्तारक न प्रतिलेखन किया हो, यदि किया है तो दुष्ट प्रकारसे प्रतिलेखन किया है १। इसी प्रकार शय्या संस्तारक प्रमार्जित नही किया हो, यदि किया है तो दुष्टप्रकारसे किया गया है २। ऐसे ही पूरीषस्थान वा प्रस्रवनस्थान प्रतिलेखन न किया हो, यदि किया है तो दुष्ट प्रकारसे किया है ३। और यदि प्रमार्जित न किया हो तथा किया हो तो दुष्ट प्रकारसे प्रमार्जित किया हो ४।

फिर पौषधोपवास सम्यक् प्रकारसे पालन किया न हो ५ ॥ इस प्रकारसे इन पांचों ही अतिचारोंको वर्जके तृतीय शिक्षाव्रत गृहस्थी लोग सम्यक् प्रकारसे धारण करें । फिर चतुर्थ शिक्षाव्र-भी सम्यक् प्रकारसे आराधन करे ॥

चतुर्थ शिक्षाव्रत

अतिथि संविभाग ॥

महोदयवर ! चतुर्थ शिक्षाव्रत अतिथि संविभाग है जिसका अर्थ ही यही है अतिथियोंको संविभाग करके देना अर्थात् जो कुछ अपने ग्रहण करनेके वास्ते रक्खा है उसमेंसे अतिथियोंका सत्कार करना ॥ अपितु जो अतिथि (साधु) को दिया जाये वे आहारादि पदार्थ शुद्ध निर्दोष कल्पनीय हों किन्तु दोषयुक्त अशुद्ध अकल्पनीय आहारादि पदार्थ न देने अच्छे हैं क्योंकि नियमका भंग करना वा कराना यह महा पाप है। अपितु वृत्ति-के अनुसार आहारादिके देनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है, वृत्तिके विरुद्ध देनेसे पापका बंध होता है। इस लिये दोषोंसे रहित प्राशूक एषनीय आहारादिके द्वारा अतिथि संविभाग नामक व्रतको क् प्रकारसे आराधन करे और पांचों ही अतिचारोंका भी र करे, जैसेकि—

सचित्त निक्खेवणया १ सचित्त पेहणिया २ कालाइक्कम्मे ३ परोवएसे ४ मच्छरियाए ५ ॥

भाषार्थः—न देनेकी बुद्धिसे निर्दोष वस्तुको सचित्त वस्तुपर रख दी हो १ वा निर्दोषको सचित्त वस्तु करिके ढांप दिया हो २ और कालके अतिक्रम हो जानेसे विज्ञप्ति करि हो तथा वस्तुका समय ही व्यतीत हो गया होवे ही वस्तु मुनियोंको दे दी हो ३ और परको उपदेश दिया हो कि तुम ही आहारादि दे दो क्योंकि आप निर्दोष होने पर भी लाभ न ले सका ४ अथवा मत्सरतासे देना ५ ॥ इन पांचों ही अतिचारोंको त्याग करके चतुर्थ शिक्षाव्रत पालण करना चाहिये ॥

सो यह[१] पांच अनुव्रत, तीन अनुगुणव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं द्वादश व्रत गृहस्थी धारण करे, इसका नाम देशचारित्र है, क्योंकि सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र, तीन ही मुक्तिके मार्ग हैं। इन तीनोंको ही धारण करके जीव संसारसे पार

---

१ द्वादश व्रत इस स्थलपे केवल दिग्दर्शन मात्र ही लिखे हैं किन्तु विस्तारपूर्वक श्री उपासक दशाङ्ग सूत्र वा श्री आवश्यकादि सूत्रोंसे देखने चाहिये ॥

हो जाते हैं । अपितु यथाशक्ति इनको धारण करके फिर रात्री-भोजनका भी परिहार करना चाहिये; इनमें अनेक दोषोंका समूह है । फिर श्रावक २१ गुण करके संयुक्त हो जावे, वे गुण उक्त नियमोंको विशेष लाभदायक हैं और सर्व प्रकारसे उपादेय हैं, सत् पथके दर्शक हैं, अनेक कुगातियोंके निरोध करनेवाले हैं, इनके आसेवनसे आत्मा शान्तिके मंदिरमें प्रवेश कर जाता है ॥

अथ एकविंशति श्रावक गुण विषय ॥

धम्मरयणस्स जुग्गो अक्खुद्दो रूववं पगइसोमो ॥
लोअपिओ अक्कूरो असढो सुदक्खिणो ॥ १ ॥
लज्जालुओ दयालू मज्झत्थो सोमदिट्ठी गुणरागी ॥
सक्कह सपक्खजुत्तो सुदीहदंसी विसेसण्णू ॥२॥
वड्ढाणुग्गो विणियो कयण्णुओ परहियत्थकारोय॥
तहचेव लद्धलक्खो इगवीस गुणो हवइ सड्ढो॥३॥

भाषार्थः—जो जीव धर्मके योग्य है वह २१ गुण अवश्य ही धारण करे क्योंकि गुणोंके धारणके ही प्रभावसे गृहस्थ सु-

योग्यताको प्राप्त हो जाता है, और यशको धारण करता है, तथा गुणोंके महत्वतासे जैसे चंद्र सूर्य राहुसे विमुक्त होकर सुंदरताको प्राप्त हो जाते हैं इसी प्रकार गुणोंके धारक जीव पापोंसे छूट कर परमानंदको प्राप्त होते हैं। पुनः गुण ही सर्वको प्रिय होते हैं, गुणोंका ही आचरण करना लोग सीखते हैं, और गुणोंका विवर्ण निम्न प्रकारसे है, जैसेकि–

१ अक्खुद्दो–सदैव काल अक्षुद्र वृत्तियुक्त होना चाहिये क्योंकि क्षुद्र वृत्ति सर्व गुणोंका नाश कर देती है और क्षुद्र वृत्ति वालेके चित्तको शान्ति नही आती, न वे ऋजुताको ही प्राप्त हो सक्ता है, न किसीके श्रेष्ठ गुणोंको भी अवलोकन करके उनके चित्तको शान्ति रह सक्ति है, तथा सदा ही क्षुद्र वृत्तिवाला अकार्य करनेमें उद्यत रहता है, अपितु निर्लज्जताको ग्रहण कर लेता है, इस लिये अक्षुद्र वत्तियुक्त सदैवकाल होना चाहिये॥

२ रूववं–मित्रवरो ! रूपवान् होना किसी औषधीके द्वारा नही बन सक्ता तथा किसी मंत्रविद्यासे नही हो सक्ता, केवल सदाचार ही युक्त जीव रूपवान् कहा जाता है। इस लिये सदाचार ब्रह्मचर्यादिको अवश्य ही धारण करना चाहिये जिसके द्वारा सर्व प्रकारकी शक्तियें उत्पन्न हो और सदैव काल चित्त प्रसन्नतामें रहे, लोगोंमें विश्वासनीय बन जाये, मन प्रफुल्लित रहे॥

३ पगइ सोमो—सौम्य प्रकृति युक्त होना चाहिये अर्थात् शान्ति स्वभाव क्षूद्र जनोंके किये हुए उपद्रवोंको माध्यस्थताके साथ सहन करने चाहिये, और मस्तकोपरि किसी कालमें भी अशान्ति लक्षण न होने चाहिये ॥

४ लोअपिओ—लोकप्रिय होना चाहिये अर्थात् परोपकारादि द्वारा लोगोंमें प्रिय हो जाता है। परोपकारी जीव ऊच्च कोटि गणन किया जाता है। परोपकारियोंके सब ही जीव हितैषी होते हैं और उसकी रक्षामें उद्यत रहते हैं। परोपकारी जीव सर्व प्रकारसे धर्म्मोन्नति करनेमें भी समर्थ हो जाते हैं और अपने नामको अमर कर देते हैं। इस लिये लोगमें प्रिय कार्य करनेवाला लोगप्रिय बन जाता है ॥

५ अकूरो—क्रूरतासे रहित होवे—अर्थात् निर्दयतासे रहित होवे। निर्दयता सत्य धर्मको इस प्रकारसे उखाड़ डालती है जैसे तीक्ष्ण परशुद्वारा लोग वृक्षोंको उत्पाटन करते हैं। निर्दयी पुरुष कभी भी ऊच्च कक्षाओंके योग्य नहीं हो सक्ता। क्रूर चित्तवाला पुरुष सदैव काल क्षुद्र वृत्तियोंमे ही लगा रहता है ॥

६ असढो—अश्रद्धावाला न होवे—अर्थात् सम्यक् दर्शन युक्त ही जीव सम्यक् ज्ञानको धारण कर सक्ता है। अपितु इत-

ना ही नहीं किन्तु श्रद्धायुक्त जीव मनोवांछित पदार्थोंको भी प्राप्त कर लेता है और देव गुरु धर्मका आराधिक बन जाता है॥

७ सुदक्खिणो—सुदक्ष होवे—अर्थात् बुद्धिशील ही जीव सत्य असत्यके निर्णयमें समर्थ होता है और पदार्थोंका पूर्ण ज्ञाता हो जाता है, अपितु बुद्धिसंपन्न ही जीव मिथ्यात्वके बंधनसे भी मुक्त हो जाता है। बुद्धिद्वारा अनेक वस्तुओंके स्वरूपको ज्ञात करके अनेक जीवोंको धर्म पथमें स्थापन करनेमें समर्थ हो जाता है, अपितु अपनी प्रतिभा द्वारा यशको भी प्राप्त होता है॥

८ लज्जालूओ—लज्जायुक्त होना—वृद्धोंकी वा माता पिता गुरु आदिकी लज्जा करना, उनके सन्मुख उपहास्य युक्त वचन न बोलने चाहिये तथा उनके सन्मुख सदैव काल विनयमें ही रहना चाहिये तथा पाप कर्म करते समय लज्जायुक्त होना चाहिये अर्थात् अपने कुल धर्मको विचारके पाप कर्म न करने चाहिये॥

९ दयालू—दयायुक्त होना—अर्थात् करुणायुक्त होना, जो जीव दुःखोंसे पीड़ित हैं और सदैवकाल क्लेषमें ही आयु व्यतीत करते हैं वा अनाथ है वा रोगी हैं उनोपरि दया भाव प्रगट

करना और उनकी रक्षा करते हुए साथ ही उनोंको धर्मका उपदेश करते रहना, निर्दयता कभी भी चित्तमें न धारण करना, (अपितु) अहिंसा धर्मका ही नाद करते रहना ॥

१० मज्झत्थो मध्यस्थ होना—अर्थात् स्तोक वार्ताओं परि ही क्रोधयुक्त न हो जाना चाहिये, अपितु किसीका पक्षपात भी न करना चाहिये, जो काम हो उसमें मध्यस्थता अवलंबन करके रहना चाहिये क्योंकि चंचलता कार्योंके सुधारनेमें समर्थ नही हो सक्ति अपितु मध्यस्थता ही काम सिद्ध करती है ॥

११ सोमदिट्ठी—सौम्य—दृष्टि युक्त होना—अर्थात् किसी उपर भी दृष्टि विषम न करना तथा किसीके सुंदर पदार्थको देख कर उसकी मत्सरता न करना क्योंकि प्रत्येक २ प्राणी अपने किये हुए कर्मोंके फलोंको भोगते हैं। जो चित्तका विषम करना है वे ही कर्मोंका बंधन है ॥

१२ गुणरागी—जिस जीवमें जो गुण हों उसीका ही राग करना अपितु अगुणी जीवमें मध्यस्थ भाव अवलंबन करे, अन्य जीवोंको गुणमें आरूढ़ करे, गुणोंका ही प्रचारक होवे ॥

१३ सक्कह—फिर सत्य कथक होवे क्योंकि सत्य वक्ताको

कहीं भी भय नहीं होता, सत्यवादी सर्व पदार्थोंका ज्ञाता होता है, सत्यवादी ही जीव धर्मके अंगोको पालन कर सक्ता है, सत्यवादीकी ही सब ही लोग प्रतिष्ठा करते है और सत्य व्रत सर्व जीवोंकी रक्षा करता है, इस लिये सत्यवादी बनना चाहिये ॥

१४ सपक्खजुत्तो—और सच्चेका ही पक्ष करना क्योंकि न्याय धर्म इसीका ही नाम है कि जो सत्ययुक्त हैं, उनके ही पक्षमें रहना, सत्य और न्यायके साथ वस्तुओंका निर्णय करना, कभी भी असत्यमें वा अन्याय मार्गमें गमण न करना, न्याय बुद्धि सदैव काल रखनी ॥

१५ सुदीहदंसी—दीर्घदर्शी होना अर्थात् जो कार्य करने उनके फलाफलको प्रथम ही विचार लेना चाहिये क्योंकि वहुतसे कार्य प्रारंभमें प्रिय लगते हैं पश्चात् उनका फल निकृष्ट होता है, जैसे विवाहादिमें वेश्यानृत प्रारंभमें प्रिय पीछे धन यश वीर्य सबोंका नाश करनेवाला होता है क्योंकि जिन बालकोंको उस नृतमें वेश्याकी लग्न लग जाती है वे प्रायः फिर किसीके भी वशमें नहीं रहते । इसी प्रकार अन्य कार्योंको भी संयोजन कर लेना चाहिये ॥

१६ विसेसण्णू—विशेषज्ञ होना अर्थात् ज्ञानको विशेष करिके जानना । फिर पदार्थोंके फलाफलको विचारना उसमें फिर

जो त्यागने योग्य कर्म हैं उनका परित्याग करना, जो जानने योग्य हैं उनको सम्यक् प्रकारसे जानना, अपितु जो आदरणे योग्य हैं उनको आसेवन करना तथा सामान्य पुरुषोंमें विशेषज्ञ होना, फिर ज्ञानको प्रकाशमें लाना जिस करके लोग अज्ञान दशामें ही पड़े न रहें ॥

१७ वड्ढाणुग्गो—वृद्धानुगत होना अर्थात् जो वृद्ध सुंदर कार्य करते आये हैं उनके ही अनुयायी रहना, जैसेकि—सप्त व्यसनोंका परित्याग वृद्धोंने किया था वही परम्पराय कुलमें चली आती होवे तो उसको उल्लंघन न करना तथा वृद्ध उभय काल प्रतिक्रमणादि क्रियायें करते हैं उनको उसी प्रकार आचरण कर लेना, जैसे वृद्धोंने अनेक प्रकारसे जीवोंकी रक्षा की सो उसी प्रकार आप भी जीवदयाका प्रचार करना अर्थात् धार्मिक मर्यादा जो वृद्धोंने बांधी हूई हैं उसको अतिक्रम न करना ॥

१८ विणियो—विनयवान् होना क्योंकि विनयसे ही सर्व कार्य सिद्ध होते हैं, विनय ही धर्मका मुख्याङ्ग है, विनयसे ही सर्व सुख उपलब्ध हो जाते हैं, विनय करनेवाले आत्मा सबको प्रिय लगते हैं, विनयवान्को धर्म भी प्राप्त हो जाता है, इस लिये यथायोग्य सर्वकी विनय करना चाहिये ॥

१९ कयण्णूओ—कृतज्ञ होना अर्थात् किये हुए परोपकार-का मानना क्योंकि कृतज्ञताके कारणसे सबी गुण जीवको प्राप्त हो जाते हैं जैसेकि—श्री स्थानांग सूत्रके चतुर्थ स्थानके चतुर्थ उद्देशमें लिखा है कि चतुर् कारणोंसे जीव स्वगुणोंका नाश कर बैठते हैं और चतुर् ही कारणोंसे स्वगुण दीप्त हो जाते हैं, यथा क्रोध करनेसे १ ईर्ष्या करनेसे २ मिथ्यात्वमें प्रवेश करनेसे ३ और कृतघ्नता करनेसे ४ ॥ अपितु चार ही कारणोंसे गुण दीप्त होते हैं, जैसेकि पुनः २ ज्ञानके अभ्यास करनेसे १ और गुर्वादिके छंदे वरतनेसे २ तथा गुर्वादिका आनंदपूर्वक कार्य करनेसे ३ और कृतज्ञ होनेसे ४ अर्थात् कृतज्ञता करनेसे सर्व प्रकारके सुख उपलब्ध होते हैं, इस लिये कृतज्ञ अवश्य ही होना चाहिये ॥

२० परहियत्थकारीय—और सदैव काल ही परहितकारी होना चाहिये अर्थात् परोपकारी होना चाहिये, क्योंकि परोपकारी जीव सब ही का हितैषी होते हैं, परोपकारी ही जीव धर्मकी वृद्धि कर सक्ते हैं, परोपकारीसे सर्व जीव हित करते हैं तथा परहितकारी जीव ऊच्च श्रेणिको प्राप्त हो जाता है, इस लिये परोपकारता अवश्य ही आदरणीय हैं ॥

२१ लद्धलक्खो—लब्धलक्षी होवे—अर्थात् उचित समयानुसार दान देनेवाला जैसे कि अभयदान, सुपात्र दान, शास्त्र दान, ओषधि दान, इत्यादि दानोंके अनेक भेद है किन्तु देशकालानुसार दानके द्वारा धर्मकी वृद्धि करनेवाला होवे, जैसे कि जीव (अभयदान) दान सर्व दानोंमें श्रेष्ठ है, यथागमे (दाणाण सेठ्ठं अभयं पयाणं) अर्थात् दानोंमें अभयदान परम श्रेष्ठ है। सो सूत्रानुसार दान करनेवाला होवे और दानके द्वारा जिन धर्मकी उन्नाति हो सक्ति है, दानसे ही जीव यश कर्मको प्राप्त हो जाते हैं। सो इस लिये श्रुत दान अवश्य ही करना चाहिये ॥

फिर द्वादश भावनायें द्वारा अपनी आत्माको पवित्र करता रहे, जैसेकि—

पढम मणिच्च मसरणं संसारे एगयाय अन्नत्तं ॥
असुइत्तं आसव संवरोय तह निज्जरा नवमी १॥
लोगसहावोबोही दुल्लहा धम्मस्स सावहगायरिहा
एया उन्नावणाउ न्नावेयव्वा पयत्तेणं ॥ २ ॥

भाषार्थः—संसारमें जो जो पदार्थ देखनेमें आते हैं वे सर्व अनित्यता प्रतिपादन कर रहे हैं। जो पदार्थोंका स्वरूप

प्रातःकालमें होता है वह मध्यान्ह कालमें नही रहता, अपितु जो मध्यान्ह कालमें देखा जाता है वह सन्ध्या कालमें दृष्टिगोचर नही होता। इस लिये निज आत्मा विना पुद्गल सम्बन्धि जो जो पदार्थ हैं वे सर्व क्षणभंगुर हैं, नाशवान् हैं, जितने पुद्गलके सम्बन्ध मिले हुए हैं वे सब विनाशी हैं ॥ इस प्रकारसे पदार्थोंकी अनित्यता विचारना उसीका नाम अनित्य भावना है ॥

अशरण भावना ॥

संसारमें जीवोंको दुखोंसे पीड़ित होते हुएको केवल एक धर्मका ही शरण होता है, अन्य माता पिता भार्यादि कोई भी रक्षा करनेमें समर्थ नही होते तथा जब मृत्यु आती है उस कालमें कोई भी साथी नही बनता किन्तु एक धर्म ही है जो आत्माकी रक्षा करता है। अन्य जीव तो मृत्युके आने पर सर्व पृथक् २ हो जाते हैं किन्तु जब इन्द्र महाराज मृत्यु धर्मको प्राप्त होते हैं उस कालमें उनका कोई भी रक्षा नही कर सक्ता तो भला अन्य जीवोंकी वात ही कौन पूछता है? तथा जितने पास-वर्ती धन धान्यादि हैं वे भी अंतकालमें सहायक नही वनते केवल आत्मस्वरूप ही अपना है और सर्व अशरण हैं, इस लिये यह उत्तम सामग्री जो जीवोंको प्राप्त हुई है उसको व्यर्थ न खोना चाहिये ॥

संसार भावना ॥

संसार भावना उसका नाम है जो इस प्रकारसे विचार करता है कि यही आत्मा अनंतवार एक योनिमें जन्म मरण कर चुका है अपितु इतना ही नही किन्तु प्रत्येक २ जीवके साथ सर्व प्रकारसे सम्बन्ध भी हो चुके हैं, किन्तु शोक है फिर यह जीव धर्मके मार्गमें प्रवेश नही करता। अहो ! संसारकी कैसी विचित्रता है कि पुत्र मृत्यु होकर पिता बन जाता है और पिता मरकर पुत्र होता है। इस प्रकारसे भी परिवर्त्तन होनेपर इस जीवने सम्यग् ज्ञानादिको न सेवन किया जिसके द्वारा इसकी मुक्ति हो जाती ॥

एकत्व भावना ॥

फिर इस प्रकारसे अनुप्रेक्षण करे कि एकले ही जीव मृत्यु होते हैं और प्रत्येक २ ही जन्म धारण करते हैं किन्तु कोई भी किसीके साथ आता नही और न कोई किसीके साथ ही जाता है। केवल धर्म ही अपना है जो सदैवकाल जीवके साथ ही रहता है अथवा मेरा निज आत्मा ही है इसके भिन्न न कोई मेरा है और न मैं किसीका हूं। यदि मैं किसी प्रकारके :खोंसे पीड़ित होता हूं तो मेरे सम्बन्धी उससे मुजे मुक्त नहीं

कर सक्के और नाही मैं उनको किसी प्रकारसे दुःखोंसे विमुक्त करनेमें समर्थ हूं। प्रत्येक २ प्राणी अपने २ किये हुए कर्मोंके फलको अनुभव करते हैं इसका ही नाम एकत्व भावना है ॥

अन्यत्व भावना ॥

हे आत्मन् ! तू और शरीर अन्य २ है, यह शरीर पुद्गलका संचय है अपितु चेतन स्वरूप है। तू अमूर्त्तिमान सर्व ज्ञानमय द्रव्य है। यह शरीर मूर्त्तिमान शून्यरूप द्रव्य है और तू अक्षय अव्ययरूप है, किन्तु यह शरीर विनाशरूप धर्मवाला है फिर तू क्यों इसमें मूर्च्छित हो रहा है ? क्योंकि तू और शरीर भिन्न २ द्रव्य हैं ॥ फिर तू इन कर्मोंके वशीभूत होता हुआ क्यों दुःखोंको सहन कर रहा है ? इस शरीरसे भिन्न होनेका उपाय कर और अपनेसे सर्व पुद्गल द्रव्यको भिन्न मान फिर उससे विमुक्त हो क्योंकि तू अन्य है तेरेसे भिन्न पदार्थ अन्य हैं ॥

अशुचि भावना ॥

फिर ऐसे विचारे कि यह जीव तो सदा ही पवित्र है किन्तु यह शरीर मलीनताका घर है। नव द्वार इसके सदा ही मलीन रहते हैं अपितु इतना ही नही किन्तु जो पवित्र पदार्थ इस गंधमय शरीरका स्पर्श भी कर लेते हैं वह भी अपनी पवित्रता खो

बैठते हैं, क्योंकि इसके अभ्यन्तर मलमूत्र, रुधिर राध, सर्व गंधमय पदार्थ हैं फिर मृत्युके पीछे इसका कोई भी अवयव काममें नही आता, परंतु देखनेको भी चित्त नही करता। फिर यह शरीर किसी प्रकारसे भी पवित्रताको धारण नही कर सक्ता, केवल एक धर्म ही सारभूत है अन्य इस शरीरमें कोई भी पदार्थ सारभूत नही है क्योंकि इसका अशुचि धर्म ही है। इस लिये हे जीव! इस शरीरमें मूर्च्छित मत हो, इससे पृथक् हो जिस करके तुमको मोक्षकी प्राप्ति होवे ॥

आस्रव भावना ॥

राग द्वेष मिथ्यात्व अव्रत कषाययोग मोह इनके ही द्वारे शुभाशुभ कर्म आते है उसका ही नाम आस्रव है और आर्त्त-ध्यान, रौद्रध्यान इनके द्वारा जीव अशुभ कर्मोंका संचय करते हैं तथा हिंसा, असत्य, अदत्त, अब्रह्मचर्य, परिग्रह, यह पांच ही कर्म आनेके मार्ग है इनसे प्राणी गुरुताको प्राप्त हो रहे हैं और नाना प्रकारकी गतियोंमें सतत पर्यटन कर रहे हैं। आप ही कर्म करते हैं आप ही उनके फलोंको भोग लेते हैं। शुभ भावोंसे शुभ कर्म एकत्र करते है अशुभ भावोंसे अशुभ, किन्तु अशुभ कर्मोंका फल जीवोंको दुःखरूप भोगना पड़ता है, शुभ कर्मोंका सुखरूप फल होता है। इस प्रकारसे विचार करना उसका ही नाम आस्रव भावना है ॥

संवर भावना ॥

जो जो कर्म आनेके मार्ग हैं उनको निरोध करना वे संवर भावना है तथा क्रोधको क्षमासे वशमें करना, मानको मार्दव वा मृदुतासे, मायाको ऋजु भावोंसे, लोभको संतोषसे, इसी प्रकार जिन मार्गोंसे कर्म आते हैं उन मार्गोंका ही निरोध करना सो ही सम्वर भावना है जैसे कि अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, सम्यक्त्व, व्रत, अयोग, समिति, गुप्ति, चारित्र, मन वचन कायाको वशमें करना वे ही संवर भावना है ॥

निर्जरा भावना ॥

निर्जरा उसका नाम है जिसके करनेसे कर्मोंके बीजका ही नाश हो जाये तब ही आत्मा मोक्षरूप होता है। वह निर्जरा द्वादश प्रकारके तपसे होती है उसीका ही नाम सकाम निर्जरा है, नही तो अकाम निर्जरा जीव समय २ करते हैं किंतु अकाम निर्जरासे संसारकी क्षीणता नही होती। सकाम निर्जरा जीवको मुक्ति देती है अर्थात् ज्ञानके साथ सम्यग् चारित्रका आचरण करना उसीके द्वारा जीव कर्मोंके बीजको नाश कर देते हैं और वही क्रिया जीवके कार्यसाधक होती है। सो यदि जीवने पूर्व सकाम निर्जरा की होती तो अब नाना प्रकारके कष्टों

को सहन न करता किन्तु अब वही उपाय किया जाये जिसके द्वारा सकाम निर्जरा होकर मुक्तिकी प्राप्ति होवे ॥

लोकस्वभाव भावना ॥

लोकके स्वरूपको अनुप्रेक्षण करना जैसेकि यह लोग अनादि अनंत है और इसमें पुद्गल द्रव्यकी पर्याय सादि सातन्ता सिद्ध करती है और इसमें तीन लोग कहे जाते हैं जैसेकि मनुष्यलोक स्वर्गलोक पाताललोक नृत्य करते पुरुषके संस्थानमें हैं, इसमें असंख्यात द्वीप समुद्र है, अधोलोकमें सप्त नरक स्थान हैं तथा भवनपति व्यन्तर देवोंके भी स्थान हैं, उपरि २६ स्वर्ग हैं ईषत् प्रभा पृथिवी है सो ऐसे लोगमें शुचीके अग्रभाग मात्र भी स्थान नही रहा कि जिसमें जीवने अनंत वार जन्म मरण न किये हो, अर्थात् जन्म मरण करके इस संसारको जीवने पूर्ण कर दिया है किंतु शोक है फिर भी इस जीवकी संसारसे तृप्ति न हुई, अपितु विषयके मार्गमें लगा हुआ है। इस लिये लोकके स्वरूपको ज्ञात करके संसारसे निवृत्त होना चाहिये वे ही लोकस्वभाव भावना है ॥

धर्म भावना ॥

इस संसारचक्रमें जीवने अनंत जन्म मरण नाना प्रकारकी योनियोंमें किये हैं किन्तु यदि मनुष्य भव प्राप्त हो

गया तो देश आर्यका मिलना अतीव कठिन है क्योंकि वहुतसे देश ऐसे भी पड़े हैं जिन्होंने कभी श्रुत चारित्र रूप धर्मका नाम ही नही सुना। यादि आर्य देश भी मिल गया तो आर्य कुलका मिलना महान् कठिन है क्योंकि आर्य देशमें भी वहुतसे ऐसे कुल हैं जिनमें पशुवध होता है और मांसादि भक्षण करते हैं। यादि आर्य कुल भी मिल गया तो दीर्घायुका मिलना परम दुष्कर है क्योंकि स्वल्प आयुमें धार्मिक कार्य क्या हो सक्ते हैं ? भला यादि दीर्घायुकी प्राप्ति हो गई तो पंचिंद्रिय पूर्ण मिलनी अतीव ही कठिन हैं क्योंकि चक्षुरादिके रहित होनेपर दयाका पूर्ण फल जीव प्राप्त नही कर सक्ते। भला यादि इन्द्रिय पूर्ण हों तो शरीरका नीरोग होना वड़ा ही कठिन है क्योंकि व्याधियुक्त जीव धर्मकी वात ही नही सुन सक्ता। सो यादि शरीर भी नीरोग मिल गया तो सुपुरुषोंका संग होना महान् ही दुष्कर है क्योंकि कुसंग होना स्वाभाविक वात है। भला यादि सुजनोंका संग भी मिल गया तो सूत्रका श्रवण करना महान् कठिन है। भला सूत्रको श्रवण भी कर लिया तो उसके उपरि श्रद्धानका होना अतीव दुष्कर है। भला यादि श्रद्धान भी ठीक प्राप्त हो गया तो धर्मका पालन करना परम कठिन है क्योंकि धर्मकी क्रिया आशावान् पुरुषोंसे नही पल सक्ती किन्तु धर्म अनाथोंका नाथ

है, अबांधवोंका बांधव है, दुःखियोंकी रक्षा करनेवाला है, अमित्रोंवालोंका मित्र है, सर्वकी रक्षा करनेवाला है, धर्मके प्रभावसे सर्व काम ठीक हो रहे हैं तथा धर्म ही यक्ष, राक्षस, सर्प, हाथी, सिंह, व्याघ्र, इनसे रक्षा करता है अर्थात् अनेक कष्टोंसे बचानेवाला एक धर्म ही है। इस लिये पूर्ण सामग्रीके मिलने पर धर्ममें आलस्य कदापि न करना चाहिये। हे जीव! तेरेको उक्त सामग्री पूर्णतासे प्राप्त है इस लिये तू अब धर्म करनेमें प्रमाद न कर। यह समय यदि व्यतीत हो गया तो फिर मिलना असंभव है। इस प्रकारके भावोंको धर्म भावना कहते हैं ॥

बोधबीज भावना ॥

संसार रूपी अर्णवमें जीवोंको सर्व प्रकारकी ऋद्धियें प्राप्त हो जाती है किन्तु बोधबीजका मिलना बहुत ही कठिन है अर्थात् सम्यक्त्वका मिलना परम दुष्कर है। इस लिये पूर्वोक्त सामाग्रियें मिलनेपर सम्यक्त्वको अवश्य ही धारण करना चाहिये, अर्थात् आत्मस्वरूपको अवश्य ही जानना चाहिये। सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्रके द्वारा शुद्ध देव गुरु धर्मकी निष्ठा करके आत्मस्वरूपको पूर्ण प्रकारसे ज्ञात करके सम्यग् चारित्रको धारण करना चाहिये क्योंकि संसारमें माता पिता भगिनी भ्राता भार्या पुत्र धन धान्य सर्व प्रकारके

संयोग मिल जाते हैं परंतु बोधबीज ही प्राप्त होना कठिन है। इस लिये बोधबीजको अवश्य ही प्राप्त करना चाहिये। इस प्रकारसे जो आत्मामें भाव धारण करता है उसीका नाम बोधबीज भावना है। सो यह द्वादश भावनायें आत्माको पवित्र करनेवाली हैं, कर्ममलके धोनेके लिये महान् पवित्र वारिरूप हैं, संसार रूपी समुद्रमें पोतके तुल्य हैं, द्वादश व्रतोंको निष्कलंक करनेवाली हैं और अतिचारोंको दूर करनेवाली हैं, सत्यरूपके बतलानेवाली हैं, मुक्तिमार्गके लिये निश्रेणि रूप हैं। इस लिये प्राणीमात्रको इनके आश्रयभूत अवश्य ही होना चाहिये। फिर निम्नलिखित चार प्रकारकी भावनायें द्वारा लोगोंसे वर्ताव करना चाहिये॥

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक क्लिश्यमानाऽविनयेषु। तत्त्वार्थसूत्र अ० ७ सू० ११॥

इसका यह अर्थ है कि मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ, यह चार ही भावनायें अनुक्रमतासे इस प्रकारसे करनी चाहियें जैसे कि सर्व जीवोंके साथ मैत्रीभाव, एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यन्त किसी भी जीवके साथ द्वेष भाव नहीं करना और यह

भाव रखनेसे कोई जीव पाप कर्म न करे, नाहीं दुःखोंको प्राप्त होवे, यथाशक्ति जीवोंपर परोपकार करते रहना, अन्तःकरणसे वैरभावको त्याग देना उसका ही नाम मैत्री भावना है। और जो अपनेसे गुणोंमें वृद्ध हैं धर्मात्मा हैं परोपकारी हैं सत्यवक्ता हैं ब्रह्मचारी हैं दयारूप शान्तिसागर हैं इस प्रकारके जनोंको देखकर प्रमोद करना अर्थात् इर्षा न करना अपितु हर्ष प्रगट करना और उनके गुणोंका अनुकरण करना प्रसन्न होना उनकी यथायोग्य भक्ति आदि करना उसीका नाम प्रमोद भावना है॥ और जो लोग रोगोंसे पीड़ित हैं दुःखित हैं दीन हैं वा पराधीन हैं तथा सदैव काल दुःखोंको जो अनुभव कर रहे हैं उन जीवों पर करुणा भाव रखना और उनको दुःखोंसे विमुक्त करनेका प्रयत्न करते रहना यथाशक्ति दुःखोंसे उनपीड़ित जीवोंकी रक्षा करना उसीका ही नाम कारुण्य भावना है अर्थात् सर्व जीवोपरि दयाभाव रखना किन्तु दुःखियोंको देखकर हर्ष न प्रगट करना सोई कारुण्य भावना है। और जो जीव अविनयी हैं सदैवकाल देव गुरु धर्ममे प्रतिकूल कार्य करनेवाले हैं उन जीवोंमें माध्यस्थ भाव रखना अर्थात् उनको यथायोग्य शिक्षा तो करनी किन्तु द्वेष न करना वही माध्यस्थ्य भावना है। सो यह चार ही भावनायें आत्मकल्याण करनेवाली हैं और

जीवोंको सुमार्गमें लगानेवाली हैं और सत्यपथकी दर्शक हैं। इनका अभ्यास प्राणी मात्रको करना चाहिये क्योंकि यह संसार अनित्य है, परलोकमें अवश्य ही गमन करना है, माता पिता भार्यादि सब ही रुदन करते हुए रह जाते हैं और फिर उसका अग्नि संस्कार कर देते हैं, और फिर जो कुछ उसका द्रव्य होता है वे सब लोग उसका विभाग कर लेते हैं किन्तु उसने जो कर्म किये थे वे उन्ही कर्मोंको लेकर परलोकको पहोंच जाता है ैर उन्ही कर्मोंके अनुसार दुःख सुख रूप फलको भोगता है, इस लिये जब मनुष्य भव प्राप्त हो गया है फिर जाति आर्य, कुल आर्य, क्षेत्र आर्य, कर्म आर्य, भाषा आर्य, शिल्पार्य जब इतने ुण आर्यताके भी प्राप्त हो गये फिर ज्ञानार्य, दर्शनार्य चारित्रार्य, अवश्य ही बनना चाहिये। तत्त्वमार्ग के पूर्ण वेत्ता होकर परोपकारियोंके अग्रणी बनना चाहिये और सत्य मार्गके द्वारा सत्य पदार्थोंका पूर्ण प्रकाश करना चाहिये। फिर सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्रसे स्वआत्माको विभूषित करके मोक्षरूपी लक्ष्मीकी प्राप्ति होवे। फिर सिद्धपद जो सादि अनंत युक्त पदवाला है उसको प्राप्त होकर अजर अमर सिद्ध बुद्ध ऐसे करना चाहिये। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतबलवीर्य युक्त होकर

जीव मोक्षमें विराजमान हो जाता है, संसारी बंधनोसे सर्वथा ही छूटकर जन्ममरणसे रहित हो जाता है और सदा ही सुख-रूपमें निवास करता है अर्थात् उस आत्माको सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्रके प्रभावसे अक्षय सुखकी प्राप्ति हो जाती है। आशा है भव्य जन उक्त तीनों रत्नोंको ग्रहण करके इस प्रवाहरूप अनादि अनंत संसारचक्रसे विमुक्त होकर मोक्ष-रूपी लक्ष्मीके साधक बनेंगे और अन्य जीवोंपर परोपकार करके सत्य पथमें स्थापन करेंगे जिस करके उनकी आत्माको सर्वथा शान्तिकी प्राप्ति होवेगी और जो त्रिपदी महामंत्र है जैसेकि उत्पत्ति, नाश, ध्रुव, सो उत्पत्ति नाशसे रहित होकर ध्रुव व्यवस्था जो निज स्वरूप है उसको ही प्राप्त होवेंगे क्योंकि उत्पत्ति नाश यह विभाविक पर्याय हैं किन्तु त्रिकालमें सत्रूपमें रहना अर्थात् निज गुणमें रहना यह स्वाभाविक अर्थात् निज-गुण है। सो कर्ममलसे रहित होकर शुद्धरूप निज गुणमें सर्वज्ञतामें वा सर्वदर्शितामें जीव उक्त तीनों रत्नों करके विराजमान हो जाते हैं। मैं आकांक्षा करता हूं कि भव्य जीव श्री अर्हन्देवके प्रतिपादन किये हुए तत्त्वोंद्वारा अपना कल्याण अवश्य ही करेंगे।

इति श्री अनेकान्त सिद्धान्त दर्पणस्य चतुर्थ सर्ग समाप्त ॥

उस भ्रमका जनक दोष (अज्ञानादि) है क्यों कि प्रमाण तो कभी दोषका कारण हो ही नहीं सकता ॥ ३७ ॥ आपसमें शत्रुतावाले सत्त्व और असत्त्व है, याने वह दोनो कभी साथ रही नहीं सकते तब भी तुम कहते हो की यह दोनों पदार्थ में साथ रहते है यह तुमारा संदेह है, और जो सशयका छेदन करनेवाला शास्त्र हैं वह भी जो संशयको पैदा करै, दूसरा कौन शरण है ? ॥ ३८ ॥ निर्णय करने में असमर्थता होने से विविधप्रकारके शास्त्रों का उच्छिष्ट जो एक देश उसका अल्पसंग्रह करनेवाला, और आचार्य (निश्चायक) के लक्षणों से रहित होने से, जिन (अर्हन्) हमको मान्य नहीं है ॥ ३९ ॥ और स्याद्वादकी सिद्धिको जो तुम निश्चित मानोगे तो तुमारा संशयपर्यवसायी सिद्धान्त नष्ट हो जायगा, और यदि उसमें प्रमाणकी प्रवृत्ति दिखलावोगे तव भी वही दोष आवेगा, और विद्वानों की प्रवृत्ति सदैव निश्चयपूर्वक होती है इस लिये तुमारे सिद्धान्त में कोई प्रवृत्ति नहीं कर सकता ॥ ४० ॥ जिसमें शङ्कित और परस्पर विरुद्ध वाक्यों कि पुनः पुनः आवृत्ति हो वह भी शास्त्र है ऐसा कहनेवालेके मुखकी आरती जैनाङ्गना उतारै ॥ ४१ ॥ यहां तक जो महाशयजी ने जैनियों का अभेद्य स्याद्वादका कुछ आक्षेपण किया है उसका पाठक महाशय निम्न लिखित उत्तर से पढैं, "महाशयजी ने कहा है कि—जैनदर्शन कार्य करने से

हि वस्तु को सत् मानता है इत्यादि"।

मै महाशयजी से प्रार्थना पूर्वक कहता हूँ की यदि आप अपना पक्षपातोपहतचक्षुः को दूर करते तो स्पष्ट मालूम होता की जैनदर्शनका वह (पूर्वोक्त) मन्तव्य नहीं है. परन्तु जैनदर्शनका यह मन्तव्य है कि वस्तुका स्वभाव ही सद्, असद् रूप है. याने स्वभाव से ही वस्तु भावाऽभाव उभयस्वरूप है. फिर शास्त्रीजी की स्थूल बुद्धिमें इस बातकी समझ न पड़ी तो कहा की क्या एकही वस्तु भावस्वरूप और अभावस्वरूप कभी होसक्ती है ?, तो मुझे कहना चाहिये की क्या आपमें पुत्रत्व, पितृत्व नहीं है ? क्या आप मनुष्यभावरूप और अश्वाऽभावरूप नहीं है ?, आपको अविलम्ब स्वीकार करना होगा विरुद्ध धर्म भी सापेक्ष होकर एक वस्तु में अच्छी रीति से रह सकते हैं, इसमें कोई प्रकार का विरोध नहीं है. देखिये और चित्त को सुस्थित रख कर पढ़िये—

"न हि भावैकरूप वस्त्विति, विश्वस्य वैश्वरूप्यप्रसङ्गात् । नाऽप्यभावरूपम्, नीरूपत्वप्रसङ्गात् । किन्तु स्वरूपेण स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैः सत्त्वात्, पररूपेण स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैश्चाऽसत्त्वात् भावाऽभावरूपं वस्तु । तथैव प्रमाणानां प्रवृत्तेः ।

यदाह—

"अयमेवेति यो ह्येष भावे भवति निर्णयः ।

नैष वस्त्वन्तराऽभावसंवित्त्यनुगमादृते । १ ।"

जगत में वस्तु केवल भावरूपही नहीं है क्योंकि यदि भावरूप होती तो घट भी पटभावरूप, अश्वभावरूप, हस्तिभाव-रूप होता, और वस्तु केवल अभावरूप भी नहीं है- ऐसा माने तो सब का शून्यत्व का ही प्रसंग होगा, इस लिये सब वस्तु अपने रूप से याने अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूपसे तो सत् है और परकीयरूपसे याने पराया द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप से असत् है जैसे कि- द्रव्यसे घट पार्थिवरूपसे है, परन्तु जलरूपसे नहि है, क्षेत्र से काशी में बना हुआ घट काशी का है, किन्तु हरद्वार का नहीं है; काल से वसन्त ऋतु में बना हुआ घट वासन्तिक है किन्तु शैशिर नहीं है; भावसे श्याम घट श्याम है, किन्तु रक्त नहीं है; यदि सब रूपसे वस्तु को सत् मानने में आवे तो एक ही घट का बहुत रूपसे (इतर पटादिरूपसे) भी स्थिति होनी चाहिये, इस लिये जैन तार्किकों का यह तर्क ठीक २ वस्तुका निश्चय ज्ञान दिखलाता है कि वस्तु स्वभाव से ही स्वरूप से सत् है और पररूपसे असत् है. और यह बात तो आबालगोपाल प्रसिद्ध है. और शास्त्रीजी ने जो कहा कि "वस्तु में भावाऽभावरूप जो ज्ञान है वह भ्रमजन्य है" वह भी उनका कथन भ्रमविषयक है, क्योंकि भ्रमका जो 'अतस्मिन् तदध्यवसायो भ्रमः' याने जो घट में पटका ज्ञान होना

वह ही भ्रम है किन्तु घट में घटका ज्ञान होना तो भ्रम नहीं है. ऐसे ही वस्तु उभय रूप है उस में उभयरूपताज्ञान भ्रमात्मक कभी नहीं हो सकता. और जो शास्त्रीजी बावाने अपनी तूती चलाई है कि "यदि एक ही वस्तु में यह दो बात (सद्-असद् रूपता) माना जाय तो वह ज्ञान सशयात्मक है" इस से यह मालूम होता है कि शास्त्रीजी सशयके लक्षणको भूलगये- देखिये, संशयका लक्षण पूर्व ऋषियोंने इस प्रकार बतलाया है कि— 'अनुभयत्र उभयकोटिसंस्पर्शी प्रत्ययः संशयः; अनुभयस्वभावे वस्तुनि उभयपरिमर्शनशीलि ज्ञान संशयः ।'

याने जिसमें दो स्वभाव नहीं है और उसमें दो स्वभावका जो ज्ञान होता है वह संशय है परन्तु यह बात वस्तुका सद्-असद् उभय ज्ञान में नहीं आसकती, क्योंकि पूर्वोक्त कई प्रमाणों से वस्तु उभयस्वभाव सिद्ध हो चुकी है और शास्त्रीजी ने जो कहा कि "स्याद्वाद की और प्रमाण की सत्ता को निश्चित मानो तो तुमारा सिद्धान्त बाधित होगा" यह भी एक पुराण की तरह गप्प है क्योंकि जैनदर्शन तो सब वस्तु को निज रूपसे सत् और अन्यरूप से असत् मानता है. वैसे ही स्याद्वाद भी स्वरूपसे सत् और स्याद्वादाभासरूप से असत् है और प्रमाण भी प्रमाणरूप सत् और प्रमाणाभासरूप से असत् है. और शास्त्री जी यह समझते होंगे कि

जैनदर्शन का मन्तव्य अव्यवस्थित है तो यह नहीं है क्योंकि पूर्वोक्त रीतिसे जैनदर्शन कथित वस्तुस्वभाव कथन वास्तव वस्तुका निश्चायक है परन्तु उसमें अल्प भी अव्यवस्था नहीं है, जो कई लोग वस्तुका एकही रूप है याने वस्तु भावरूप ही है या अभावरूप है ऐसा मानते हैं उनके सिद्धान्त में बडी भारी अव्यवस्था हो जायगी. और यदि शास्त्रीजी एकही पदार्थ में विरुद्ध धर्मद्वय के स्वीकार को विरोध समझै तो उनके पितामह प्रशस्तपादभाष्यकार के सिद्धान्त को भी विरुद्ध मानना चाहिये क्योंकि– भाष्यकार भी एक ही पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, उसमें नित्यता और अनित्यता मानते है उन्होंने कहा है कि– 'सा तु द्विविधा, नित्या अनित्या च,, नित्या परमाणुरूपा कार्यरूपा तु अनित्या.' याने जो पृथ्वी परमाणुरूप है वह नित्य है और जो पृथ्वी कार्यरूप है वह अनित्य है. और नवीन तार्किकगण भी भाव और अभावका समानाधिकरण मानते है यह बात क्या शास्त्रीजी भूल गये ?

इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि अलिविलासिसंलाप और उसके निर्माता ये दोनों हीं अनाप्त है ।

अब जैनसम्मत ईश्वर में जो शास्त्री जी के पूर्वपक्ष है उनको लिखते हैं—

ताल-भू-गगनसर्वपथीनजीवाः

स्वादृष्ट-यत्नसहिता निजभोग्यभागान्।
उत्पादयन्त्वलमशेषकृतेश्वरेण
क्लृप्तेन, सिध्यति फले न हि कल्प्यतेऽन्यत् ॥

सब जीव अपने अदृष्ट (भाग्य) और यत्न से सब चीज को पैदा करते हैं, इसलिये सृष्टि का बनानेवाला एक ईश्वर है ऐसी झूठी कल्पना नहीं करनी चाहिये, सृष्टिकर्ता ईश्वर के विना भी जब अपना इष्ट होता है तब उसकी कल्पना निष्फल है।"

(शास्त्रिजी कृत उत्तरपक्ष)

"दृष्ट्वैकचेतननिदेशवशां प्रवृत्तिं
कार्ये लघावपि गृहे बहुचेतनानाम्।
ब्रह्माण्डनिर्मितमनेककृतामपीच्छ-
न्नेकं समस्तविभुमीश्वरमाश्रयस्व ॥ ४७ ॥
कुर्वन्तु काश्चन यथास्वरुचि प्रवृत्ती-
रेकाऽपि काऽपि परभीतिकृता प्रवृत्तिः।
दृष्ट्वा कुटुम्बनगरस्थितचेतनेषु
यद्भीतिजाऽखिलकृतिः परमेश्वरः सः ॥ ४८ ॥
तन्नित्यमिष्टमुपपत्तिमदन्यथाऽस्य
हेत्वन्तरानुसरणे त्वनवस्थितिः स्यात्।
नित्यं गतातिशयमीश इदं दधानः

साधारणं सकलकार्यविधौ निदानम् ॥ ५० ॥

स्वस्वार्जिताशुभशुभावहकर्मभेदात्
प्राप्नोति जीवनिवहः फलभेदमद्धा ।
आन्ध्येन पङ्गुसदृशाक्षमकर्मवृन्दा-
ऽधिष्ठानताद्दृतनिदानगुणो महेशः ॥ ५१ ॥

क्षेत्री लभेत यदि कर्षणवीजवाप-
दाक्ष्यप्रमादवशतः फलसिद्ध्यऽसिद्धी ।
दोषोऽत्र नैव जलदस्य तथेश्वरस्य
वैषम्यनिर्घृणतयोर्न यतः प्रसङ्गः ॥ ५२ ॥

अन्येषु हेतुषु तु सत्स्वऽपि कर्ष्टृचेष्टा
स्यान्निष्फला जलधरो यदि न प्रवर्षेत् ।
साधारणो जलधरः किल तेन हेतुः
सा रीतिरप्रतिहता परमेश्वरेऽपि ॥ ५३ ॥

जीवो न वेत्ति सकलं स्वमपीह कर्म
दूरे परस्य कथमेव ततोऽधितिष्ठेत् ।
सर्वज्ञतां तदुचितां हि वहन् परेशो-
ऽधिष्ठानताभरसहोऽल्पमतिर्न जीवः ॥ ५४ ॥

इत्युक्तयुक्तिनिवहैः परमेशसिद्धौ
तस्य प्रपञ्चहितसाधनमार्गदर्शी ।

आदेश एव किल वेदपदाभिधेयो
नोल्लङ्घ्य एष तदधीनहितार्थिजीवैः ॥ ५५ ॥

इन सब श्लोकका रहस्य यह ही है कि- इस जगत के रचयिता कोई एक ईश्वर है, यह बात अनुमान प्रमाण से सिद्ध होती है. जैसे की प्राणीओंके छोटेसे भी कार्य में कोईन कोई अधिष्ठाता रहता है, तो यह अनेक प्राणीसे बना हुवा जो ब्रह्माण्ड रूप कार्य उसमें अधिष्ठाता सर्वत्र व्यापक एक ईश्वर को मानना चाहिये॥ ४७ ॥ जितनी प्रवृत्तियां यथारुचि जीवगण करता है, उन सब में एक प्रवृत्ति तो किसीका डर रखके कुटुम्ब और नगर में रहे हुवे जीव में दिखाई देता है, इसलिये जिसकी भीति से उस प्रवृत्तिको लोग कर रहे हैं, वह ही सर्वस्रष्टा ईश्वर है॥ ४८ ॥ और उस ईश्वरका ज्ञान नित्य है याने न कभी नष्ट होता है, न कभी पैदा होता है, न कभी विकार को भी पाता है, सदा एक रूपही रहता है. यदि उसको अनित्य माना जाय तो उसका (ज्ञानका) कोइ हेत्वन्तर स्वीकारना पडेगा, तो जो हेतु स्वीकृत है वह नित्य, या अनित्य ?, यदि नित्य, तों ज्ञानकोही नित्य मानकर व्यर्थ हेतु प्रकल्पन क्यों करना चाहिये ? और अनित्य मानो तो उसका भी हेतु होना चाहिये. इस प्रकार माननेमें अनवस्था आती है. इसलिये ईश्वरका ज्ञान नित्य ही है और सब कार्य में कारण रूपसे उसीको ही ईश्वर धारण करतें है ॥५०॥ यदि

जैन कहे की अपना २ शुभाशुभ कर्मसेही आत्मा शुभाशुभ फल पाता है तो भी यह उचित नहीं, क्योंकि कर्म तो जड होनेसे फल देनेमें असमर्थ है, इसलिये उसका (कर्मका) भी एक महेश अधिष्ठाता होना चाहिये ॥५१॥ खेतीहर अपनी कर्षणकी और बोनेकी कुशलता और अकुशलता से फलसिद्धि यातो फलाऽसिद्धिको पाता है, जैसे इसमें मेघका दोष नहीं है, वैसेही जीवको सुख, दु.ख पानेमें ईश्वरका दोष नही है इसलिये ईश्वर रागी, द्वेषी नहीं कहा जा सकता है ॥ ५२ ॥ और भी सब हेतुगण विद्यमान होनेपर भी यदि वृष्टि न होवे तो जैसे खेतीहर की सब कर्षणादि चेष्टा निष्फल होती है, वैसेही यदि ईश्वरेच्छा न हो तो एक भी कार्य नही होसकता ॥५३॥ जीव अपने कर्मको जानता नहीं है, और परकीय कर्म दूर है, इसलिये स्व, पर कोई कर्मका अधिष्ठाता नही होसकता, अतः उसका अधिष्ठाता सर्वज्ञ महादेवजी ही है ॥ ५४ ॥ ऐसी अनेक युक्तिसे जगत्कर्ता ईश्वर सिद्ध होनेपर उसका सकलमार्गदर्शी वेदविहित जो आदेश उसको उल्लङ्घित नही करना चाहिये ॥५५॥ और भी वह महाशय धर्मान्धतामें लिपट कर अपने महादेव बावाका जूठाही निष्पक्षपात बतलाते है—

माद्येत् खलो गुरुतरार्चनया, कुलीनो
दण्डे महीयसि कृते भृशमुद्विजेत ।
यायाद् विपर्ययमनेन च लोकयात्रा-

ऽऽयत्यां शुभं विदधदेष न पक्षपातः ॥ ६१ ॥

बड़ी पूजा से खल—दुष्ट मत्त होता है, और बडा दण्ड करनेसे कुलीन अच्छा मनुष्य उद्विग्न होता है और ऐसा करनेसे लोकयात्रा व्यवस्थिति में रह नहीं सकती, और उचित पूजा, दण्ड करनेसे यह पक्षपात नहीं कहलाता है।

अब शास्त्रीजीने जो उपरोक्त पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष सृष्टिकर्ता के बारेमे दिखलाये है, वे सब मिथ्या प्रलाप है और ईश्वरको कलङ्कित बनानेके उपाय है, देखिये—वीतराग ईश्वर इस जगतको किस लिये बनावेगा ?.

तथाहि— शशभृन्मौलेस्त्रैलोक्यघटने भवेत् ।
यथारुचिप्रवृत्तिः किम् ?, कर्मतन्त्रतयाऽथवा ? ॥ १ ॥
धर्माद्यर्थमथोद्दिश्य ?, यद्वा क्रीडाकुतूहलात् ? ।
निग्रहाऽनुग्रहाय वा ? सुखस्योत्पत्तयेऽथवा ॥ २ ॥
यद्वा दुःखविनोदार्थम् ?, प्रत्यवायक्षयाय वा ? ।
भविष्यत्प्रत्यवायस्य परीहारकृते किमु ? ॥ ३ ॥
अपारकरुणापूरात् किं वा ?, किंवा स्वभावतः ? ।
एकादशैवमेते स्युः प्रकाराः परदुस्सहाः ॥ ४ ॥

अर्थात् क्या महादेवजी जो सृष्टि बनाते है सो अपनी यथारुचि बनाते है ? । या कर्म से परतन्त्र होकर बनाते है ? । वा अपने

को धर्म हो इसलिये ? या अपनी क्रीडा के लिये ? या प्राणियोंको निग्रह और अनुग्रह करने के लिये ? या अपने को सुख होवे इसलिये, या अपने दुःखका नाश करनेके लिये ? या अपने पापका क्षयके लिये ? या अपने स्वभाव से इस सृष्टिका रचना करते हैं ?. यह हमारा एकादश विकल्प शास्त्रिजीका अलिविलासिको विलापि बना देगा—

जायेत भौरस्त्यविकल्पनायां
कदाचिदन्यादृगपि त्रिलोकी ।
न नाम नैयत्यनिमित्तमस्य
किंचिद् विरूपाक्षरुचेः समस्ति ॥ १ ॥
करोत्ययं वां यदि कर्मतन्त्रः
स्वतन्त्रतैवास्य तदा कथं स्यात् ? ।
सखे ! स्वतन्त्रत्वमिदं हि येषां
परानपेक्षैव सदा प्रवृत्तिः ॥ २ ॥
कर्मण्यपेक्षस्य च कर्तृताया-
मीशस्य युक्ता न खलु प्रवृत्तिः ।
कर्मैव यस्मादखिलत्रिलोकीं
करिष्यते चित्रविपाकपात्रम् ॥ ३ ॥
नाऽचेतनं कर्म करोति कार्य-

मप्रेरितं चेदिह चेतनेन ।
यथा मृदित्येतदपास्यमान-
माकर्णनीयं पुरतः सकर्णैः ॥ ४ ॥
तृतीयकल्पे कृतकृत्यभावः
कथं भवेद् भूतपतेः कथंचित् ? ।
प्रयोजनं तस्य तथाविधस्य
धर्मादिकं हन्त ! विरुध्यते यत् ॥ ५ ॥
अथाऽपि शम्भुर्जगतां विधाने
प्रवर्तते क्रीडनकौतुकेन ।
कथं भवेत् तर्हि स वीतरागः
सखे ! प्रमत्ताऽर्भकमण्डलीव ? ॥ ६ ॥
विनिग्रहाऽनुग्रहसाधनाय
प्रवर्तते चेद् गिरिशस्तदानीम् ।
विरागता द्वेषविमुक्तता वा
तथाविधस्वामिवदस्य न स्यात् ॥ ७ ॥
उत्पत्तये न च सुखस्य तथा प्रवृत्तिः
शम्भोर्यतः सुखगुणोऽत्र न सम्मतस्ते ।
स स्वीकृतो दशगुणेश्वरवादिभिर्यै-
स्तैरप्यसावुपगतो बत ! नित्य एव ॥ ८

एतस्य दुःखं न भवद्भिरिष्टं
न प्रत्यवायोऽपि कदाचनाऽपि ।
दुःखादिभेदत्रितयं न वक्तुं
युक्तं ततो यौगधुरन्धरस्य ॥ ९ ॥
पुण्यकारुण्यपीयूषपूरेणाऽत्यन्तपूरितः ।
प्रवर्तते जगत्सर्गे भर्ग इत्यपि भङ्गुरम् ॥ १० ॥

यतः—

क्षुद्रग्रामे निवासः क्वचिदपि सदने रौद्रदारिद्र्यमुद्रा
जाया दुर्दर्शकाया कटुरटनपटुः पुत्रिकाणां सवित्री ।
दुःस्वामिप्रेष्यभावो भवति भवभृतामत्र येषां वतैतान्
शम्भुर्दुःखैकदग्धान् सृजति यदि तदा स्यात्कृपा कीदृगस्य ?

अथ धर्ममधर्ममङ्गभाजां
सचिवं कार्यविधावपेक्षमाणः ।
सुखमसुखमिहार्पयद् गिरीशस्त-
दवरमुपरि निषेधनादमुष्य ॥ १२ ॥
स्वभाव एवैष पिनाकपाणेः
प्रवर्तते विश्वविधौ यदेवम् ।
स्वभाव एवैष रविर्जगन्ति
प्रकाशयत्येष यदित्ययुक्तम् ॥ १३ ॥

एवं हीश्वरसंविदो विफलता तस्माद् निसर्गाद् निजात्
किं मा भूद् जगतां प्रवर्तनविधिर्निश्चेतनानामपि ।
तच्चेषां परिकल्पयन्ति किमधिष्ठातारमेते शिवं
व्यर्थे वस्तुनि युज्यते मतिमतां किं पक्षपातः क्वचित् ? ॥१४॥

निश्चेतनानां जगतां प्रवृत्तौ
कार्यं कथं स्याद् नियतप्रदेशे ? ।
जातेऽपि कार्ये विरतिश्च न स्याद्
इत्येतदप्येति न युक्तिवीथीम् ॥ १५ ॥

स्वभाववादाश्रयणप्रसादा-
देवंविधानां कुविकल्पनानाम् ।
नास्ति प्रसङ्गः कथमन्यथा स्याद्
नायं सुधादीधितिशेखरेऽपि ? ॥ १६ ॥

यह हमारे एकादश विकल्प में से यदि शास्त्रीजी प्रथम विकल्प को स्वीकृत करें, तो सृष्टि कभी न कभी दूसरी रीतिसे होनी चाहिये, याने ब्राह्मणकी स्त्रीको मूँछ और डाढी आनी चाहिये, और ब्राह्मणको स्तन भी होना चाहिये, क्योंकि हमेशा समान, नियमित सृष्टि होने में महादेवजी को कोई निमित्त नहीं है ॥१॥ यदि मी० गंगाधरजी कहै की महादेवजी कर्मसे परतन्त्र होकर सृष्टिको रचते है. पाठकगण ! देखिये महादेवजीकी स्वतन्त्रता, कोई तो चेतन से पराधीन होता है,

परन्तु महादेवजी तो जडरूप जो कर्मसमूह, उसके वश होकर कार्य करते है, तब भी स्वतन्त्र कहलाते है, यह स्वतन्त्रता दक्षिण देशकी है. मै मी० गंगाधरजी से कहता हूँ की सखे ! उसका ही नाम स्वातन्त्र्य है कि जहा कोई की भी अपेक्षा न की जावे, और भी हमारे शास्त्रीजी ईश्वर को कर्मपरतन्त्र न मानकर केवल सकर्मक आत्मा ही यह सब सृष्टिका प्रवाहरूप से रचयिता है, ऐसा माने तो कोई भी दूषण देखनेमे नही आता है, फिर क्यों ईश्वर को बीच में अन्तर्गडु कि तरह शास्त्रीजी मानते है? यदि शास्त्रीजी इस दलील को पेश करें, की कर्म जड होनेसे उससे सहकृत आत्मा एक भी सपूर्ण नियमित कार्य नहीं कर सकता है, तो यह बात सविस्तर सयुक्तिक आगे खण्डित की जावेगी इसलिये पाठक महाशय सावधानता से देख लें, और भी जडसहकृत चेतन नियमित कार्य नहि करसकता है, यह बात कहना सर्व वर्तमान व्यवहार का अपलाप करना है ॥ २ ॥ यदि शास्त्रीजी कहें कि 'अपनेको धर्म हो' इस लिये शिशिर ऋतु में भी प्रातःकाल महादेवजी अपनी प्रिया पार्वती की शय्या को छोडकर कुम्भकार की तरह यह ससार की रचना में लगते है, तो यह बात भी [illegible] थूक की समान है. क्योंकि आप (न्यायदर्शन) श्रीमहादेवजी को कृतकृत्य मानते है, और वह ही कृतकृत्य कहा जा सकता है कि जो किसी कार्य करने में प्रवृत्त न होवे, परन्तु आपके गिरि-

जापति की तो कृतकृत्यता भी विलक्षण है जब महादेव बाबा कृत-कृत्य ठहरे तो उनको धर्म करने से क्या मतलब ? ॥४॥ यदि पण्डि-तजी कहें की महादेवजी पार्वती के मान से खिन्न होकर अपनी मौजके लिये यह सब कारवाई करते है तो धन्य है आपके महादेवजी को, जो पार्वती के पैरोंमें भी अपना सिर झूकाने को भी तत्पर हैं और यदि महादेव इस ससार को क्रीडासे करते है तो फिर उसकी वीतरागता कहां रही ?, वीतरागी होकर सामान्य जीव भी क्रीडा नहि करता है तो वीतराग होने पर भी महादेवजी छोटे बच्चे की तरह खेल करने लगे तब तो महादेव की तरह क्रीडा करने पर भी सब वीतराग कहलावैंगे ॥५॥ और यदि शास्त्रीजी कहै की प्राणियों को निग्रह और अनुग्रह करने के लिये यह सब तकलीफ महादेवजी उठाते है, तब भी महादेव जी प्रजापालक राजा की तरह कभी वीतराग और वीतद्वेष नहीं हो सकते, और यह नियम तो स्वानुभवसिद्ध है कि जो कार्य करने में आता है उसके आगे कर्ता को भी उस कार्य की तरह परिणत होना चाहिये, तो जब महादेवजी कहीं भी अनुग्रह करेंगे तब वे सरागी कहे जायँगे और कहीं निग्रह करें तो वे सद्वेष होजाते है, यदि निग्रह अग्रनुह करने पर भी जो महादेवजी को ईश्वर का टाइटल दिया जावे तो हमारे निग्रह, अनुग्रह के कर्ता महाराजा पञ्चम जार्ज को भी साक्षात् ईश्वर माननेमें क्या हरज है ? ॥६॥ यदि पण्डितजी फरमावें कि अपने

को सुख हो इस लिये, अपना प्रत्यवाय (पाप) नष्ट हो इस लिये, और अपना होनहार जो प्रत्यवाय उसके नाश के लिये भी महादेवजी इस जगतको पैदा करते है तो यह कथन भी शपथश्रद्धेय है, क्योंकि ईश्वर में तो नित्य ही सुख रहता है तो फिर महादेव क्यों सुख के लिये यत्न करेंगे, और विचारे भोले महादेव को प्रत्यवाय भी माननेमें नहीं आता है तो फिर वे अपना प्रत्यवायके नाश के लिये क्यों उद्यत होंगे ॥ ७ ॥ यदि शास्त्रीजी कहै कि अपूर्व अनुकम्पा से महादेवजीने यह जगत बनाया है, यह कथन भी वृथा है, यदि महादेव करुणासे जगत बनाते तो यह कभी न होता कि एक दरिद्री, एक धनी, एक सुरूपी एक कुरूपी, एक विद्वान्, एक पागल, एक देव, और एक दानव होता, यदि शास्त्रीजी कहै कि प्राणियोंके धर्म और अधर्म के बराबर उनको महादेवजी फल देते है, महाशय! देखिये ऐसा मानने में द्वितीय श्लोक में दिखाई हुई बराबर ईश्वर की स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी और एक मामूली कुलीकी श्रेणिमें महादेवजी का नम्बर लग जायगा. जैसे कि (सापेक्षोऽसमर्थः) याने जो कोई भी कार्य में किसी का अपेक्षा रक्खे तो वह असमर्थ, पराधीन कहलाता है वैसे ही धर्म और अधर्म सापेक्ष कार्य करनेवाला महादेव कहां से स्वतन्त्र होगा ? ॥ ८ ॥

अब शास्त्रीजी परेशान होकर अन्तिम पक्षको स्वीकारते हैं की महा-

देवजीका जगत् बनानेका स्वभाव ही है, यदि केवल महादेवका स्वभाव मानने पर यह सब संसार हो सकता है तब महादेवजीको सर्वज्ञ, व्यापक और नित्य न मानना चाहिये, क्योंकि सर्वज्ञ, व्यापक और नित्य न होनेपर भी महादेव अपने स्वभाव से ही इस संसार चक्रको घुमावेगा, हम तो बिचारे के सुख के लिये मी. गंगाधर जी को कहते है की महादेवजी की तरह सकर्मक आत्मा में अपने कर्म का फल पाने का, और यह सृष्टिको चलाने का स्वभाव मान ले और महादेवजी को तो पार्वती के चरणरेणुका स्पर्शसुख लेनेमें अन्तराय न करें, और मी० गंगाधरजीने जो पूर्वमें कुतर्क दिखलाये हैं कि कर्म जड होनेसे उससे सहकृत आत्मा कुच्छभी नहीं कर सकता है, तो वह कुविकल्प स्वभाववादमें नहीं चल सकता. जैसे लोहचुम्बक जड होनेपर भी निज स्वभावसे दूरस्थितभी लोहाको खींचता है, दूरबीन और खुरबीन यह दोनो यन्त्र जड काचके बने हुए है तब भी उससे सहकृत पुरुष दूरकी बस्तुको और सूक्ष्म पदार्थ को भी प्रत्यक्ष करलेता है, फोनोग्राफ जडहोने पर भी सब तरहके शव्द, सबतरहकी भाषाको बोल सकता है, ज्यादा क्या कहैं, परन्तु सकर्मक जीव, विना जड एक कदम भी नहीं दे सकता है. इसलिये सकर्मक आत्माका पूर्वोक्त स्वभाव मानने में कोई भी हानि नहीं आती, तो बिचारे बूढे महादेवजी को क्यों सताते हो? और जैन-

दर्शन केवल सकर्मक जीवको ही कर्ता मानता है वैसाही नहीं है, परन्तु हर कोई कार्य करनेमें पुरुषार्थ, कर्म काल नियति, स्वभाव यह पांच कारणों की भी जरूरत मानता है यदि इस पाच कारणों में से एक भी न हो तो पुरुष अपनी अङ्गुली तक को भी हिला नहीं सकता. इसलिये स्वभाववादमें इन पांचो कारणोंसे सृष्टि प्रवाह होना असंभवित नहीं है, परन्तु यह पांच कारणभी विना जीव, कुछ नहि करसकते इसलिये जैनदर्शन में जीवको ही कर्ता, भोक्ता मानते हैं. बस, इससे पाठक गणको जरूर विदित हुआ होगा कि मी-गंगाधरजीका सृष्टिकर्ताके विषयमें जो जो कुच्छ वक्तव्य था वह सब कैसा निर्युक्तिक और तुच्छ था. अभी तो इस विषयको में यहा ही खतम करता हुआ आगे मी-गंगाधरजी की खबर लेता हुँ ॥

और भी वे साहब अपनी महामहोपाध्यायता प्रकट करते हुए आत्म व्यापकत्वमें पूर्वपक्ष दिखलाते है—— (पूर्वपक्ष)

देहाद् बहिर्नहि सुखादि कदापि दृष्टं
तेनाऽस्तु देहपरिमाणक एव जीवः ।
बन्धोऽस्य सम्भवति देहमितत्व एव
मोक्षोऽपि वा स्वतनुयोगवियोगभेदात् ॥ ३१ ॥
तस्मिन् विभौ तु सतताऽखिलकाययोगा-
दापद्यते सततबन्धनदुष्प्रसङ्गः ।

देहान् मृषेति मनुषे यदि तर्हि मोक्षे
सिद्धे मुधा किमनुतिष्ठसि साधनानि ? ॥ ३२ ॥
अस्मन्मते तनुमितो निजपुण्य-पाप-
देहादिभारभृदपारभवाब्धिमग्नः ।
सम्यक्चरित्र-मति-दर्शनलुप्तभारो
जीवः प्रयात्यनिशमूर्ध्वमियं विमुक्तिः ॥ ३३ ॥

अर्थात् सुख, दु ख, ज्ञान प्रभृति आत्मीयगुण शरीर में ही दिखाई पडते है, और किसीने भी पूर्वोक्त गुण देह के बहार नहीं देखे, इसलिये यह बात साफ सबूत होती है कि जिसका गुण जहां है, वह भी वहा ही रहता है, याने आत्मा सर्वव्यापी नहीं है किन्तु देहव्यापी याने जितना बडा शरीर है, उत्तना ही परिणाम आत्माका है, और जिस शरीर में आत्मसंयोग है उसीसे उसका बन्ध और मुक्ति है ॥ ३१ ॥ यदि कोई आत्माको सर्वव्यापी माने तो वह आत्मा सर्व शरीर से संयुक्त होनेसे उसको सदैव बन्धन प्रसङ्ग होगा और यदि सब शरीरको मिथ्या माने तो मोक्ष स्वयं सिद्ध है, फिर मोक्ष के लिये कोइ भी अनुष्ठान क्यों करना ? ॥३२॥ हमारें मतसे आत्मा शरीरपरिमाणी है, और पुण्य पापके भारसे लिप्त है. जब वह सम्यग् ज्ञान, दशर्न, चारित्र को पाता है तब उसकी ऊर्ध्वगति होती है वहही विमुक्ति (मोक्ष) है ॥ ३३ ॥

अब आपही उत्तर पक्षको प्रकट करते हैं—

जीवस्त्वयैव कृतहान्य-ऽकृतागमाभ्यां
भीतेन नित्य उदितोऽस्य तनूमितत्वे ।
मातङ्ग-कीटवपुषोरनयोः शरीर-
व्यत्यास आपतति संभवपूर्त्यभावः ॥ ४२ ॥
संकोच-विस्तृतिकथाऽत्र वृथा तथात्वे-
ऽस्यापद्यतेऽवयविताऽथ विनाशिता च ।
क्वापीक्ष्यतेऽवयविनोरुभयोर्न चैक-
देशस्थितिस्तदलमेभिरसत्प्रलापैः ॥ ४३ ॥
कस्मात् तपःक्षतसवासनकर्मजालो
जीवः प्रयात्युपरि किं भयमत्र वासे ? ।
कर्मस्वसत्स्विह परत्र च नास्ति बन्धः
कर्मस्थितौ तु गगनेऽप्यनिवार्य एषः ॥ ४४ ॥

तुमने (जैनोंने) कृतहानि, अकृतागम दोषोंसे भय पाकर आत्माको नित्य माना है, और यदि उसको तुम तनुमात्र (शरीर परिमाणी) मानोगे तो हाथीका और कीटका शरीरका व्यत्यास होगा याने हस्तिका शरीर में रहा हुआ जीव कीटके शरीर में कैसे जायगा !, कीटके शरीरमें रहा हुआ जीव हस्ति के शरीर में कैसे :गा ! ॥४२॥ यदि तुम (जैन) सकोच (समेटना) और विकाश

(फैलना) आत्मा में मानोगे, तो वह अवयवि होनेसे विनाशी मानना पडेगा, और दो अवयवि तो कभी एक देशमे ठहर नहीं सकते, इसलिये ऐसा झूठा प्रलाप मत करो कि आत्मा व्यापक नहीं है ॥४३॥ और जब आत्मा निष्कर्मा होता है तब जैनीयोंके मत में वह उंचा चला जाता है, क्या इधर रहने में उसको कुच्छ भय है !, जो आत्मा निष्कर्मा है तो उसको कहिं भी रहने में हरज नहीं हैं, और आत्मा सकर्मक है तो ऊपर जानेसे भी क्या हुआ ? ॥ ४४ ॥

इस उत्तर पक्ष में जो शास्त्रीजीने आत्मा का शरीर परिमाणत्वका खण्डन, आत्मव्यापकत्वका मण्डन किया है वह भी भ्रममूलक है, क्योंकि शास्त्रीजीने जो आपत्तियाँ आत्माका शरीर परिमाणमें दी है वे सब झूठी है, जो शास्त्रीजी कहते है कि जीव अपरिणामी कूटस्थ नित्य है यह अनुभव, प्रमाण और वर्तमान विज्ञान से विरुद्ध है. वर्तमान विज्ञान (सायन्स) यह ही सिद्ध करता है कि दुनिया में कोइ भी चीज केवल नित्य या अनित्य नहीं है. किन्तु सब पदार्थ नित्य, अनित्य उभय स्वरूप हैं यदि आत्मा को या कोई पदार्थको अपरिणामी नित्य माना जाय तो वह अपरिणामी कूटस्थ नित्य पदार्थ कभी एक भी क्रिया नहीं कर सकता. देखिये—

वस्तुनस्तावदर्थक्रियाकारित्वं लक्षणम् , तच्चैकान्तनित्याऽनित्यपक्षयोर्न घटते, अप्रच्युताऽनुत्पन्नास्थिरैकरूपो हि नित्यः,

स च क्रमेणार्थक्रियां कुर्वीत, अक्रमेण वा ?, अन्योऽन्यव्यवच्छेदरूपाणां प्रकारान्तरासम्भवात् । तत्र न तावत् क्रमेण, स हि कालान्तरभाविनीः क्रियाः प्रथमक्रियाकाल एव प्रसह्य कुर्यात्; समर्थस्य कालक्षेपाऽयोगात् । कालक्षेपिणो वाऽसामर्थ्यप्राप्तेः । समर्थोऽपि तत्तत्सहकारिसमवधाने तं तमर्थं करोतीति चेत्; न तर्हि तस्य सामर्थ्यम्; अपरसहकारिसापेक्षवृत्तित्वात्; सापेक्षमसमर्थम्, इति न्यायात् ।

न तेन सहकारिणोऽपेक्ष्यन्ते; अपि तु कार्यमेव सहकारिष्वसत्स्वभवत् तानपेक्षत इति चेत्; तत् किं स भावोऽसमर्थः समर्थो वा ? । समर्थश्चेत्, किं सहकारिमुखप्रेक्षणदीनानि तान्युपेक्षते ?, न पुनर्झटिति घटयति । ननु समर्थमपि वीजम्–इलाजलानिलादिसहकारिसहितमेवाङ्कुरं करोति, नान्यथा । तत् किं तस्य सहकारिभिः किञ्चिदुपक्रियेत, न वा ? । यदि नोपक्रियेत, तदा सहकारिसन्निधानात् प्रागिव, किं न तदाऽप्यर्थक्रियायामुदास्ते ? । उपक्रियेत चेत् सः, तर्हि तैरुपकारोऽभिन्नो भिन्नो वा क्रियत इति वाच्यम् ? । अभेदे स एव क्रियते । इति लाभमिच्छतो मूलक्षतिरायाता, कृतकत्वेन तस्यानित्यत्वाऽऽपत्तेः ।

भेदे तु स कथं तस्योपकारः ?, किं न सह्य-विन्ध्यादेर-

पि ? । तत्संबन्धात् तस्यायमिति चेत् । उपकार्योपकारयोः कः सम्बन्धः ? । न तावत् संयोगः; द्रव्ययोरेव तस्य भावात्; अत्र तु उपकार्यं द्रव्यम्, उपकारश्च क्रियेति न संयोगः। नापि समवायः; तस्यैकत्वात्—व्यापकत्वाच्च प्रत्यासत्तिविप्रकर्षाभावेन सर्वत्र तुल्यत्वाद् न नियतैः सम्बन्धिभिः सम्बन्धो युक्तः । नियतसंबन्धिसंबन्धे चाङ्गीक्रियमाणे तत्कृत उपकारोऽस्य समवायस्याभ्युपगन्तव्यः । तथा च सति उपकारस्य भेदाऽभेदकल्पना तदवस्थैव । उपकारस्य समवायादभेदे, समवाय एव कृतः स्यात् । भेदे, पुनरपि समवायस्य न नियतसम्बन्धिसंबन्धत्वम् । तन्नैकान्तनित्यो भावः क्रमेणार्थक्रियां कुरुते ।

सब दर्शनकारोने वस्तुका लक्षण अर्थक्रियाकारित्व माना है, यह लक्षण कूटस्थ और अपरिणामि आत्मा में जा नहीं सकता. कूटस्थ और अपरिणामि वह कहा जा सकता है जो कभी नष्ट नहीं होता हो, जो कभी उत्पन्न नहीं होता हो, और जिसका एकही स्थिर ही रूप हो, यद्यपि ऐसा पदार्थ जगत में एक भी नहीं है यह बात आजकाल के नये विज्ञान (सायन्स) विद्याविशारदोने भी जगत को प्रत्यक्ष कराई है तब भी "तुष्यतु दुर्जनः" इस न्याय से एक आत्मा को हम ऐसा कूटस्थ अपरिणामी नित्य माने तो वह एक

भी व्यापार को नहीं कर सकता. मैं पूछता हूँ कि कूटस्थ अपरिणामी आत्मा अपने व्यापार को क्रम से करेगा ?, या युगपत् करेगा ?,. क्योंकि विना क्रम और अक्रम दूसरा कोई भी उपाय नहीं है कि जिससे क्रिया हो सके. यदि महाशयजी कहें की क्रम से व्यापार करता है, तो यह नहीं हो सकता, क्योंकि जब वह आत्मा कूटस्थ, अपरिणामी नित्य है तो उसको व्यापार करने में किसी की अपेक्षा नहीं है याने वह स्वय समर्थ है, तो कालान्तर में होनेवाली जो क्रियाए है उनको भी एक ही काल में करने में समर्थ होना चाहिये, अन्यथा वह असमर्थ होनेपर अनित्य हो जायगा. अब शास्त्रिजी यदि फिर कहें की वह आत्मा किसीकी अपेक्षा नहीं रखता है, किन्तु होनेवाला जो कार्य है सो विना सहकारी नहीं होता है, तब मुझे कहना चाहिये की वह आत्मा पदार्थ समर्थ है ?, या असमर्थ है ?, यदि समर्थ है, तो वह उस कार्य को क्यों सहकारी की अपेक्षा रखने देता है ?, क्यों शीघ्र पैदा नहीं करता है ?, फिर शास्त्रिजी उच्चारे की क्या समर्थ भी सहकारी की अपेक्षा नहि रखता है ?, अवश्य रखता है, जैसे वृक्ष को पैदा करनेवाला बीज समर्थ होनेपर भी पृथ्वी, जल, वायु और तापकी अपेक्षा रखता है, इसी तरह यह समर्थ भी आत्मा व्यापार करने में सहकारी की अपेक्षा है, उससे वह उस वीजकी तरह असमर्थ नहीं कहा जायगा.

तब हम यह पूछते हैं कि क्या वह सहकारीगण उस आत्मा का कुछ उपकार करते है, या नहि करते हैं ?. यदि नहि करते है, तो जब वह सहकारी हाजिर नहीं था तब वह आत्मा अर्थक्रिया नहीं करता था, वैसे ही सहकारीगण सेवा में उपस्थित होने पर भी क्यों अर्थक्रिया करेगा ?. अब शास्त्रिजी कहें की सहकारी उसको उपकार करते हैं, तो वह सहकारी कृत उपकार आत्मासे भिन्न है, या अभिन्न है ?, यदि वह उपकार को अभिन्न माना जाय तो जैसे क्रियमाण उपकार अनित्य है, उसी तरह तदभिन्न आत्मा भी अनित्य हो जायगा, इसीसे लाभ होनेकी चेष्टा करते हुए भी आपने अपने लाभ को नष्ट किया. यदि क्रियमाण उपकार और उपकार्य आत्माको भेद माने तो वह उपकार उसी आत्मा को है ऐसा ज्ञान कैसे होगा ?. यह उपकार और किसीका क्यों नहीं ?, इसमें क्या प्रमाण है ?, यदि शास्त्रीजी कहें की उपकार और उपकार्य को परस्पर समवाय नामक संबन्ध है, जिससे 'तस्यैवायमुपकारः' यह ज्ञान स्पष्ट होगा, तब मैं यही कहता हूं की समवाय मानने पर भी वह ही दोष आवेगा, क्योंकि समवाय भी एक खपुष्प तुल्य पदार्थ है, और वह एक, व्यापक होने से (उसीसे) उसका संबन्ध सर्वत्र होने से यह नियम नहीं हो सकता है कि यह उसका ही उपकार है. और कोई समवाय पदार्थ ही नहीं है, क्योंकि जैसे समवायत्व समवाय में स्व-

रूप संबन्ध से रहता है वेसैही पृथिवी में पृथ्वीत्व, घट में नील वगैरह को भी स्वरूप संबन्ध से रहने वाले मानो, क्यों निष्फल समवाय की झूठीं कल्पना करते है ?, भला यह क्या बात है कि पृथिवीका धर्म पृथ्वीत्व तो पृथ्वी में समवाय से रहे, और समवाय का धर्म समवायत्व समवाय में स्वरूप संबन्ध से रहे ?, हम तो यह कहते है कि दोनों धर्म एकही संबन्ध से मानना चाहिये, तो जो समवाय से मानों तो समवाय का एकत्व नष्ट होजायगा, और स्वरूप सबन्ध से मानो तो यह बात सर्वाभिद्य है, इस लिये समवाय कोई भी प्रकार से पदार्थ की गिनती में नहीं आ सकता, और पूर्वोक्त प्रकार से नित्य पदार्थ क्रमसे अर्थ क्रिया नहीं कर सकता है. 'यदि शास्त्रीजी कहें कि अक्रम से अर्थ-क्रिया करता है, तो फिर जरा शास्त्रीजी स्वय सोचे की वह जब अक्रम से (युगपत्) साथही एक क्षण में सब क्रिया कर देगा तो फिर दूसरे क्षण में क्या बनावेगा ?, यदि कुछ न करे तो फिर अर्थक्रिया शून्य होने से पदार्थ की गणना में कैसे आ सकता है ? और यदि कुछ क्रिया करे तो फिर क्रम ही हो गया, और शास्त्री-जी का अक्रम पक्ष तो गंगास्नान करने को गया, और भी यह बात अनुभव से विरुद्ध है की एक ही पदार्थ सब क्रियाओं को एक क्षण में कर देवें, इसलिये कभी अक्रम से भी अर्थक्रिया नहीं हो ी है. तब जब कूटस्थ अपरिणामि नित्य मानने पर कोइ चीज

क्रम, अक्रम से एक भी क्रिया नहीं कर सकती है तब पदार्थ की श्रेणी में तार्किक लोग कैसे मान सकते हैं ?. पाठक ! अब तक शास्त्रीजी का एक भी पक्ष नहीं ठहर सका है, तब भी सब से अधिक अनुकम्प्य ब्राह्मण वर्गस्थ शास्त्रीजी को एक बात मै सिखलाता हूं, कि जिससे शीघ्र ही शास्त्रीजी विजयी बनें. शास्त्रीजी महाशय ! अब अपने यशकी रक्षा के लिये जो आपने धर्मान्धता का वेष पहिना है उसको उतारिये और निष्पक्षपातिका ड्रेसको अपने दिल पर लगा लीजिये याने आप आकाश से लेकर परमाणु तक छोटा मोटा सब पदार्थ को नित्यानित्य मानें तो आपके यह मत में बृहस्पति भी दूषण नहीं डाल सकता है. जैसे उदाहरण में आप आत्मा को ही समझिये की आत्मा जब गमन क्रिया में प्रवृत्त होता है तब उस क्रिया के पूर्व आत्मा की शयन क्रिया में जो प्रवृत्ति थी वह नष्ट होती है, अर्थात् सब पदार्थ क्रिया करते समय अपने पूर्व का आकार (पर्याय) को त्यजते हैं, और उत्तर के आकार को स्वीकारते हैं. जैसे एक वस्त्र पर काला रङ्ग है. उसको धोने से वह चला जाता है, और वस्त्र भी लाल हो सकता है, उससे वस्त्र नष्ट होता है यह बात नहीं है, वैसेही यह आत्मा भी अपना पूर्व रङ्ग को छोड़ता है, उत्तर रङ्ग को स्वीकारता है इससे वह परिणामी है किन्तु नष्ट नहीं होता है. और भी आज कल के नये विज्ञान से यह साफ सिद्ध

होती है की मूल द्रव्य, वह तो नित्य है. परंतु वह मूल द्रव्य में समय समय में परिणाम हुवा ही करता है. किन्तु वह मूल द्रव्य नष्ट नहीं होता है और वास्तवमें वस्तुका सत्य स्वरूप तो यह ही है की जिसमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य यह तीन रहता है वह ही पदार्थ है और इससे अन्य सब ब्राह्मणपुच्छ की तरह है. पाठकगण ! खूब सोच के पढे, इस समय मे पूर्वोक्त उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का स्वरूप दिखलाता हूं. जो पदार्थ उत्पन्न होता है, बदलता भी है, और स्थिर रहता है वह ही पदार्थ है, यह बात अनुभव से सिद्ध भी है, परन्तु शोक है की शास्त्रीजी की वृद्धावस्था होने से उनको पक्ष पातका चश्मा आगया है. देखिये– आपका ही (शास्त्रीजी का) उदाहरण– आपका नाम गंगाधर है जो बहुत छोटी अवस्था में रक्खा गया था, जब वह नाम रक्खा गया तब आपकी शरीराकृति और ही थी और अब आपका शरीरसौन्दर्य उस आकृति से बिलकुल विपरीत है. जिस आकृति की विद्यमानता में आपका नाम गंगाधर रक्खा गया था वह आकृति न होने पर भी इस समय सब लोग आपको गंगाधर ही क्यों कहते है ?, जरा बुद्धि लगाकर विचारने मे स्पष्ट सिद्ध होता है की जो पूर्वका गंगाधर था, वह कालादि परिणाम से विकृत होकर इस समय एक नया ही गंगाधर बना है ।: जो नया बना है, जो विकृत हुआ था, यह दोनो में गंगाध

धारक एक चीज स्थिर है उसीसे अब भी आप गंगाधर शब्द वाच्य है. जब आपमें भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य यह तीन शक्ति है, तो आपको यह शक्ति सब पदार्थ में मानने में क्या हानि है ? और पूर्वोक्त युक्तिसे आत्मा में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य मानने पर एक भी दूषण गौतमगुरु भी नहीं दे सकते. इससे यह ही फलितार्थ हुआ की आत्मा कूटस्थ नित्य नहीं है, तब भी जो शास्त्रिजी को आग्रह है की आत्मा कूटस्थ नित्य है, उससे वह पक्ष में और भी दूषण बतलाता हूँ---

नैकान्तवादे सुख-दुःखभोगौ
न पुण्य-पापे न च बन्ध-मोक्षौ ।
दुर्नीतिवादव्यसनासिनैवं
परैर्विलुप्तं जगदप्यशेषम् ॥ २७ ॥

जो युक्तिया मैंने पदार्थकी अर्थक्रियाके बारेमें दिखलाई है, उसी ही तर्कों से कूटस्थ नित्य आत्मा कभी सुख, दुःखको अनुभव में नहीं ला सकता, वैसे जीवको पुण्य, पाप भी लग नहीं सकता, वह आत्मा कभी बद्ध, मुक्त नहीं होसकता, है, इसलिये सापेक्ष आत्मा नित्यानित्य है यह सिद्धान्त अवश्य स्वीकारना पड़ेगा. और जैन-दर्शन से, नव्य विज्ञान से भी यह बात सिद्ध की गई है कि सब पदार्थ मात्र नित्यानित्य हैं तब भी, शास्त्रिजी ! आपकी यह पुरा-

णगप्प आपका भालचन्द्र ही सुनेगा और कोई प्रामाणिक न मानेगा, और जो शास्त्रिजी ने कहा की हाथी का आतमा कीट में कैसे जायगा और कीटस्थ जीव हाथी में कैसे जायगा यह भी शास्त्रीजी की शङ्का गलत है. क्योंकि सब लोग आबालगोपाल यह अनुभव करते हैं की एक बड़ा भारी दीपक जिसमे बहुत प्रकाश हो, उसको लाकर बड़े कमरे में रखिये तो उसका सारा प्रकाश सारे कमरे में फैल जायगा, और उसी बड़ा भारी दीपक को एक छोटी पर्णकुटी में रखिये तो वह प्रकाश का दृश्य और कुछ हो जायगा याने इससे यह सिद्ध होता है की प्रकाश तो दोनों स्थल में समान ही है किन्तु जिसको जितना फैलने के लिये स्थान मिलता है उतनाही फैलता है इसी तरह आतमा का कोई भी मान नहीं है, किन्तु उसमें यह एक प्रकार की शक्ति है की जहां जितना स्थल वहां उसका उतनाही पसरना होता है इसलिये शरीरी आतमा का प्रमाण जिस शरीर में वह है उतनाही है ऐसे सिद्धान्त में कुछ बाधाही नहीं होती है. मुझे हॅसी आती है कि जो लोग, जो ऋषी यह कहते हैं कि आत्मा का परिमाण महत् है तो वे ऋषी महाशय कणाद, गौतम, गङ्गाधरजी प्रभृति गज लेकर क्या आत्मा को नापने गये थे? हरगिज नहीं, परन्तु यह झूठा जाल पसार कर बिचारे अज्ञानी प्राणिओं को दुर्मार्ग दिखला-कर वे गृहविजयी बनते है. पाठकगण! और भी इसी विषय में कुछ

युक्तियां दिखलाता हूं—

> यत्रैव यो दृष्टगुणः स तत्र
> कुम्भादिवन्निष्प्रतिपक्षमेतत् ।
> तथाऽपि देहाद् बहिरात्मतत्त्व-
> मतत्त्ववादोपहताः पठन्ति ॥

यह बात सबको ही मालूम है कि जहां जो गुण रहता है, वहां ही उस गुण का आधार भी अवश्य रहता है. जैसे जहां घट का रूप की स्थिति है उसी स्थल में घट की भी स्थिति चार आखों से देखने में आती है. उसी तरह आत्मा का गुण ज्ञान, स्मरण, अनुभव, चैतन्य प्रभृति जहां रहते है, जहां देखने में आते है वहा आत्मा की स्थिति भी होनी चाहिये. इस सिद्धान्त का विरोधक और कोई भी सिद्धान्त न होने पर भी हमारे अविद्या से उपहत शास्त्रीजी बाबा अपनी सच्ची करने के लिये प्रत्यक्ष प्रमाण से स्थिर बात को भी नहीं मानकर प्रज्ञाचक्षु की गिनती में आना चाहते हैं. पाठक महोदय ! यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से स्थिर की गई है कि आत्मा का ज्ञानादि गुण केवल स्थूल शरीर में ही उपलब्ध होते है. तब भी आत्मा सर्व व्यापक है यह कहना केवल अपने पाण्डित्य को कलङ्कित करने को उद्यत होना है. भला ऐसा कोई कह सकता है कि अग्नि (आग) तो सर्वव्यापक है परन्तु उसका दाह गुण तो सिर्फ

चूल्हा में ही मालूम होता है ? ब्राह्मण तो सर्वव्यापक है किन्तु ब्राह्मण का धर्म तो अमूक गली में ही मिल सकते है. ऐसी ऐसी ब्राह्मणपुच्छ समान वातों को कहनेवाले वडे प्राऽज्ञ समझे जाते हैं, और भी आत्मा व्यापक मानने में वडी २ आफत का सामना करना पड़ता है, जैसे यदि कोई शास्त्रीजी वावा को पूछे की जो आत्मा व्यापक है तो वह अमूक अमूक स्थल में ही क्यों भोगादि करता है ?, सर्वत्र अपना भोगादि क्यों नहीं करता है ?, तव तो शास्त्रीजी कापते कांपते कहेंगे की यह वात तो उपाधि भेदसे मालूम होती है, वास्तव में आत्मा सर्वत्र है. फिर कोई शास्त्रीजी से पूछे की क्या उपाधि से जो भेद मालूम पड़ता है वह सच्चा है की झूठा ?, यदि शास्त्रिजी कहै कि झूठा तव तो वे सारे संसार के व्यवहारके, नाशक भये क्योंकि आत्मा पुरुष नहीं है, आत्मा स्त्री नहीं है, आत्मा क्लीब नहीं है आत्मा ब्राह्मण नहीं है, आत्मा शूद्र नहीं है, आत्मा माता नहीं है ऐसे प्रकार से जो जो जगत् में व्यवहार चले आते हैं, वे सब का कारण फक्त उपाधि ही है. याने अपनी २ कर्मस्थिति (उपाधि) भिन्न होने से समान स्वरूप आत्मा भी भिन्न प्रकार से व्यवहृत होता है, यदि यह सब व्यवहार उपाधि जन्य होनेसे जूठा माना जाय तो जगत ही नहीं चल सकता, इस उपाधि जन्य व्यवहार में भी प्रामाण्य रहा हुवा है. इसलिये

शास्त्रिजी सर्वज्ञ होने पर भी यह कभी नहीं कहसकते है कि उपाधि जन्य व्यवहार असत्य, मिथ्या है, यदि शास्त्रिजी कहें की यह सब भ्रान्त है जैसे स्फटिक निर्मल होने पर भी यदि कोई लाल, काला पदार्थ उसके पास रक्खा जाय कि तुरन्त उसका रंग बदलके लाल, काला, हो जायगा, इसलिये स्फटिक का मूल श्वेतवर्ण तो सत्य है और दूसरे पार्श्वस्थ पदार्थ से भये हुये स्फटिक वर्ण भ्रान्त है, तो यह भी बावाजी कि झूठी बात है, क्योंकि आप महामहोपाध्याय तो हुए है परन्तु अफसोस है कि आपने आज काल की नयी साइन्स विद्या कुछ भी न देखी, यदि आप पूर्वोक्त बात कोई साइन्स विद्या विशारदको कहते तो वे जरूर हँसता और आपकी महामहोपाध्यायता पर मुग्ध हो जाता, प्यारे महाशय ! एक पदार्थ से जो दूसरे पदार्थ में परिणाम होता है सो कभी मिथ्या, भ्रान्त नही है, जैसे कोई रंगसाज ने लाल रग से एक श्वेत कपडा को लाल बनाया, तो क्या उस कपडे का लाल रंग झूठा कहा जावेगा ?, और श्वेतरग सच्चा कहा जावेगा ?, यह कभी होही नहीं सकता, क्योंकि दोनों रग सच्चे है. यदि दोनों में से एक भी झूठा होता तो बजाज से और रंगरेज से कोई वस्त्र ही नहीं खरीदता, और रग की दुकान पर जो लाखों रुपये कि आमदनी है सो भी नहीं होती, इसालिये वस्त्र रंग की तरह स्फटिक का रग भी जो भिन्न भिन्न पार्श्ववर्ति प-

दार्थों से होता है सो भ्रान्त, मिथ्या नहीं है, उसी तरह आपका व्यापक आत्मा भी उपाधि से जो शरीर में ही प्रमाणित होता है सो भी असत्य नहीं है। अब तो आपका आत्मा व्यापक है, और उपाधि से छोटा है यह-दोनों बात आपके अभिप्राय से सिद्ध हो चुकी तब भला आपके मत में एक आत्मा में दो विरुद्ध धर्म कैसे रह सकता है? क्योंकि मी० व्यासजी ने लिखा है कि "नैकस्मिन्नसंभवात्" याने असंभव होने से एकही पदार्थ में प्रकाश और अन्धकार कि तरह दो विरुद्ध धर्म नहीं ठहर सकते है, तब भला आप क्या करियेगा? क्योंकि आपने पूर्वोक्त युक्ति से दोनों बात (उपाधि जन्य लघुत्व, व्यापकत्व) सिद्ध किया है, यदि दोनों ही एक ही आत्मा में आप मानें तो आपके प्रपितामह के वचन पर पोचा फेर जायगा, और यदि एकही आत्मा में यह दोनो बात को आप न माने तो आप प्रमाणसिद्ध वस्तु के अपलापी की पदवी से विभूषित किये जायगे. पाठकगण! अब यह बूढे ब्राह्मण को "इतो नदी इतो व्याघ्र." यह दशा हुई है, अब भी जो वे माने की जड़ चेतन सब पदार्थों में परिणाम हुआ ही करता है और कोई भी कूटस्थ नित्य नहीं है सब वस्तु सापेक्ष नित्याऽनित्य है. और आत्मा का कोई भी नियत परिमाण नहीं है तब तो ये बच सकते है, अन्यथा प्रामा- और सायन्सवेत्ता यह ब्राह्मण की हसी उडावेंगे पाठक महाशय!

मैं कहां तक लिखू, यदि आत्मा व्यापक माना जाय तो आत्मा का शरीर के बाहर का जो अंश है सो तमाम निकम्मा (निष्फल) है, क्योंकि वह अंश, कुछ नहीं जानता है, न स्मृति कर सकता है, और न कोइ भी क्रिया वह कर सकता है, ठीक ठीक वह अंश और जड पदार्थ समान हो जाते है, इसलिये यही कहना ठीक है कि आत्मा स्वशरीर परिमित है, और यदि आत्मा को व्यापक मानें तो फिर उपासना क्यों करनी ?, उपासना किसकी करनी यह सब प्रश्न उपस्थित होते है, जिसका उत्तर श्रीब्रह्माजी, सी. आई. इ. भी नहीं दे सकते हैं, इसलिये शास्त्रीजी से मैं नम्र प्रार्थना करता हू की आप सत्य के पक्षपाती बनकर अपने ब्राह्मण जन्म को सफल कीजिये, और कुछ कृपाकर सायन्स भी पढ लीजिये जिससे पाश्चात्य लोग आपकी हंसी न करै ।

जो शास्त्रीजीने लिखा है कि मुक्तजीव उपर क्यों जाते हैं ?, यह शास्त्रीजीकी शङ्का शास्त्रीजीकी सब पोलको खोल देती है, क्योंकि जड, चेतन यह दोनों पदार्थ में क्या क्या शक्तिया हैं उससे शास्त्रीजी अपरिचित है. देखिये, और सावधानी से विचारिये–

पूर्वप्रयोगात्, असङ्गत्वात्, बन्धच्छेदात्,
तथागतिपरिणामाच्च तद्गतिः ॥

अर्थात् यह चार प्रकार से जीवकी ऊर्ध्वगति होती है. शास्त्रीजी

महाशय ! जैसे एक कुम्भारने अपने हस्त, दण्डका प्रयोग से चक्र को चलाया, फिर वह कुम्भार अपना हस्त, दण्डका प्रयोग नहीं करता है तब भी वह चक्र बहुत समय तक चला करता है अर्थात् वेगसे यह चक्र चलता है वैसेही कर्म (पुण्यपाप) रूप कुलाल से यह आत्म चक्र घूमाया जाता है, जब वह कर्म कुलालका समूल नाश हो गया, तब भी पूर्व के वेगसे वह मुक्तजीव उपरही जाता है. दूसरा प्रकार यह है कि जीव में हमेशा ऊपर जानेकी हीं शक्ति नियत है, जड़में हमेशा अधोगमन की शक्ति नियत है, परन्तु जब तक जीव और पुद्गल किसी के अधीन रहते हैं तब तक उसकी सब तरफ गति होती है, और जब जीव, पुद्गल असङ्ग, स्वतन्त्र होते है तब उसकी गति अपने नियमानुसार ऊपर और नीचेही होती है, तीसरा प्रकार तो खेतिहर भी जानता है. जैसे एरण्ड की सिङ्गका बन्धच्छेद करने से एरण्डकी ऊर्ध्वगति होती है वैसेही जीव के कर्मबन्धका छेद होनेसे उसकी उच्चगति होती है, और चौथा प्रकार तो स्पष्ट ही है कि जैसे तुम्बको जब पङ्कलगता है तब जल के नीचे जाता है, और जब पङ्क नष्ट होता है तब वह तुम्ब उपर चला आता है, उसी तरह कर्मपङ्क नष्ट होने से वह जीवमें उच्चगमन का परिणाम होता है और वह ऊंचे लोकान्त तक जाता है, इसीसे ही शास्त्रीजी समजे होंगे की मुक्तजीव क्यों जाता है यदि और भी कोई शङ्का शास्त्रीजी की होवे तो

उसको भी विनीतता से पूछने से उत्तर दे सकता हूँ.

अब शास्त्रीजी के शब्दार्थ कोश ज्ञान की मीमांसा की जाती है, मै सुनता हू कि शास्त्रीजी साहित्य के बड़े नामी विद्वान है किन्तु यह बात इस 'अलिविलासी' को देखकर सदिग्ध हो जाती है, क्योंकि शास्त्रीजीने इस 'अलिविलासी' में कई श्लोको में जहा जैनो का खण्डन हो रहा है उसमें जैनके स्थान पर बौद्धसूचक शब्द रक्खा है, याने कौन शब्द बौद्धका वाचक और कौन शब्द जैनका वाचक है यह बात शास्त्रीजी से अपरिचित है, देखिये—

'इत्थं तथागतपथागतवेदनिन्दा-
सर्वेश्वरादरविरोधवचो निशम्य ॥ ३५ ॥
तथागतपथागताहितकथा वितीर्णप्रथा
॥ १०३ ॥ चतुर्थशतक.

ऐसे बहुत से श्लोक में अर्हन् का पर्याय तथागत को रक्खा गया है, पाठक ! आपही कहिये की इस वृद्धावस्थामें भी शास्त्रीजी को कोश कण्ठस्थ करने की आवश्यकता है या नहीं ? शास्त्रीजी महाशय ! तथागत नाम अर्हन् (जैनधर्मप्रकाशक) का नहीं है किन्तु वह नाम आपके बुद्धावतार, बुद्धदेव को बतलाता है, परन्तु अर्हन् का नाम तो यह है कि—

अर्हन् जिनः पारगतस्त्रिकालवित्

क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ठ्यधीश्वरः ।
शम्भुः स्वयम्भुर्भगवान् जगत्पति-
स्तीर्थकरस्तीर्थकरो जिनेश्वरः ॥ (इत्यादि)

अब मै अपनी लेखनी को विश्रान्ति देता हुआ आपसे (शास्त्री-जी से) प्रार्थना करता हूँ कि **'सहसा विदधीत न क्रियाम्'** इस वाक्य को आप बराबर याद रखिये, याने जिस सिद्धान्त का खण्डन करना उसका मण्डन बराबर देख लेना, परन्तु गडरिका प्रवाह की तरह प्राचीन वुड्ढोंकी माफक अण्ड वण्ड नहीं घसेटना. समय आनेपर वे सब वुड्ढों की (कुमारिल, गौतमादि की) भी मनीषा मीमांसा करूँगा.

अब जिस वेद में हिंसा भरी हुई है, और जिस वेद की भाषा का भी कुछ ठिकाना नहीं है, क्योंकि ऋषी पाणिनीय ने भी अपनी प्राकृतमञ्जरी में छ भाषा की गिनती की है जो संस्कृत, प्राकृत शौरसेनी, पैशाची, मागधी और अपभ्रंश है, उसमें की कोई भी भाषा वेद में नहीं है, किन्तु वेद में विचित्रही भाषा है, उस वेद को भी धर्मान्धशास्त्रीजी ईश्वर तुल्यमान रहे है, अहो ! क्या श्रद्धा का चमत्कार की गधे को भी सींग मानना, बस लेख में जो कुछ शास्त्रीजी की हित शिक्षा के लिये कटु शब्द लिखे गये हों सो शास्त्री-जी क्षमा करें ।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

॥ नमो समणस्स भगवतो महावीरस्सणं ॥

॥ श्री जैन सिद्धान्त ॥

(श्री अनेकान्त सिद्धान्त दर्प्पण)

॥ प्रथम सर्गः ॥

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! मनुष्यभवको प्राप्त करके तत्त्व विद्याका विचार करना योग्य है, क्योंकि सिद्धान्तसे निर्णय किये विना कोई भी आत्मा पूर्ण दर्शनारूढ़ व चारित्रारूढ़ नहीं हो सक्ता है। सिद्धान्त शब्दका अर्थ ही यही है, जो सर्व प्रमाणोंद्वारा सिद्ध हो चुका हो, अपितु फिर वह सिद्धान्त ग्रहण करने योग्य होता है। तथा सिद्धान्त शब्द पूर्ण सम्यक् दर्शनका ही वाचक है, इसी वास्ते उमास्वातिजी तत्त्वार्थसूत्रकी आदिमें मुक्ति मार्गका वर्णन करते हुए यह सूत्र देते हैं:—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥

सो इस सूत्रमें यह सिद्ध किया है कि सम्यग् दर्शनसे सम्यग् ज्ञान होता है, फिर सम्यग् ज्ञानसे सम्यग् चारित्र प्रगट हो जाता है, किन्तु तीनोंके एकत्व होनेपर जीव मोक्षको प्राप्त होते हैं, तथा यह तीनों ही मोक्षके मार्ग हैं। इससे सिद्ध हुआ कि विना दर्शनके जीव मोक्षमें नहीं जा सक्ते हैं, क्योंकि दर्शनके विना अन्य गुण भी सम्यक् प्रकारसे प्रादुर्भूत नहीं होते हैं ॥ यथा—

मूल सूत्रम् ॥

नादंसणिस्स नाणं नाणेण विना न हुंति चरणगुणा अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥ उत्तराध्ययन सू० अ० २८ गाथा ३० ॥

संस्कृत टीका—अदर्शनिनः सम्यक्त्वरहितस्य ज्ञानं नास्ति इत्यनेन सम्यक्त्वं विना सम्यक् ज्ञानं न स्यादित्यर्थः। ज्ञानंविना चारित्रगुणाश्चारित्रं पञ्चमहाव्रतरूपं तस्य गुणाः पिण्डविशुद्ध्याः करण चरण सप्ततिरूपाः न भवंति। अगुणिनः चारित्र

गुणैः रहितस्य मोक्षः कर्मक्षयो नास्ति अमोक्षस्य कर्मक्षयरहितस्य निर्वाणं मुक्तिसुखप्राप्तिर्नास्ति ॥

भावार्थः—उक्त सूत्रमें शृंखलावद्ध लेख हैं जैसे कि सम्यक् दर्शनके विना सम्यग् ज्ञान नहीं, सम्यक् ज्ञानके विना सम्यक् चारित्र नहीं, सम्यक् चारित्रके विना सकल गुण नहीं, गुणोंके विना मोक्ष नहीं, मोक्षके विना पूर्ण सुख नहीं अर्थात् आत्मिक आनंद नहीं ॥

सो प्रिय बंधुओ ! सम्यक् दर्शन सम्यक् सिद्धान्तका ही नाम है, क्योंकि सिद्धान्तके जाने विना कोई भी आत्मा आत्मिक गुणोंमें प्रवेश नहीं कर सकता; अपितु सम्यक् दर्शन अर्हन् देवने जो प्रतिपादन किया है वही जीवोंको कल्याणरूप है । सो अर्हत् देवके कथन किये हुए पदार्थको माननेसे सम्यक् दर्शन होता है, सम्यक् दर्शनको आर्हत मत कहो वा जैन दर्शन कहो किन्तु दोनों शब्दोंका एक ही अर्थ है ॥

प्रश्नः—जिन शब्द किस प्रकार बनता है, फिर जैन शब्द किस अर्थमें व्यवहृत होता है ?

उत्तरः—'जि' जये धातु को नक् प्रत्ययान्त होकर जिन शब्द बन जाता है । यथा 'जि' जये धातु जय अर्थमें व्यवहृत है तब

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥

सो इस सूत्रमें यह सिद्ध किया है कि सम्यग् दर्शनसे सम्यग् ज्ञान होता है, फिर सम्यग् ज्ञानसे सम्यग् चारित्र प्रगट हो जाता है, किन्तु तीनोंके एकत्व होनेपर जीव मोक्षको प्राप्त होते हैं, तथा यह तीनों ही मोक्षके मार्ग हैं। इससे सिद्ध हुआ कि विना दर्शनके जीव मोक्षमें नहीं जा सक्ते हैं, क्योंकि दर्शनके विना अन्य गुण भी सम्यक् प्रकारसे प्रादुर्भूत नहीं होते हैं ॥ यथा—

मूल सूत्रम् ॥

नादंसणिस्स नाणं नाणेण विना न हुंति चरणगुणा अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥ उत्तराध्ययन सू० अ० २८ गाथा ३० ॥

संस्कृत टीका—अदर्शनिनः सम्यक्तरहितस्य ज्ञानं नास्ति इत्यनेन सम्यक्तं विना सम्यक् ज्ञानं न स्यादित्यर्थः। ज्ञानंविना चारित्रगुणाश्चारित्रं पञ्चमहाव्रतरूपं तस्य गुणाः पिण्डविशुद्ध्यादयः करण चरण सप्ततिरूपाः न भवंति। अगुणिनः चारि

गुणैः रहितस्य मोक्षः कर्मक्षयो नास्ति अमोक्षस्य कर्मक्षयरहितस्य निर्वाणं मुक्तिसुखप्राप्तिर्नास्ति ॥

भावार्थः—उक्त सूत्रमें शृंखलाबद्ध लेख हैं जैसे कि सम्यक् दर्शनके विना सम्यग् ज्ञान नहीं, सम्यक् ज्ञानके विना सम्यक् चारित्र नहीं, सम्यक् चारित्रके विना सकल गुण नहीं, गुणोंके विना मोक्ष नहीं, मोक्षके विना पूर्ण सुख नहीं अर्थात् आत्मिक आनंद नहीं ॥

सो प्रिय बंधुओ ! सम्यक् दर्शन सम्यक् सिद्धान्तका ही नाम है, क्योंकि सिद्धान्तके जाने विना कोई भी आत्मा आत्मिक गुणोंमें प्रवेश नहीं कर सकता; अपितु सम्यक् दर्शन अर्हन् देवने जो प्रतिपादन किया है वही जीवोंको कल्याणरूप है । सो अर्हत् देवके कथन किये हुए पदार्थको माननेसे सम्यक् दर्शन होता है, सम्यक् दर्शनको आर्हत मत कहो वा जैन दर्शन कहो किन्तु दोनों शब्दोंका एक ही अर्थ है ॥

प्रश्नः—जिन शब्द किस प्रकार बनता है, फिर जैन शब्द किस अर्थमें व्यवहृत होता है ?

उत्तरः—'जि' जये धातु को नक् प्रत्ययान्त होकर जिन शब्द बन जाता है । यथा 'जि' जये धातु जय अर्थमें व्यवहृत है तब

जि—ऐसे धातु रखा है। फिर उणादि सूत्रसे जिन शब्द इस प्र-
कारसे बना, जैसे कि—

इण्षिञ्जिदीङुष्यविभ्योनक् । उणादि प्रकरण पाद ३ सू० २ ॥

अथ उज्ज्वलदत्त टीका—इण्गतौ । षिञ्बंधने । जि जये। दीङ् क्षये । उष दाहे । अवर क्षणे । एभ्यो नक् स्यात् ॥ इनो-
राज्ञिप्रभौसूर्ये ॥ इनः सूर्येनृपेपत्यौ । नान्ते ॥१॥ इति विश्वः ॥
सह इनेन वर्तत इति सेना ॥ सेनयाभियात्यभिषेणयति ॥
सिनः काणः ॥ जिनो बुद्धः । जिनः स्यादातिवृद्धेऽपि बुद्धेचार्हति
जित्वरे विश्वेनान्त ॥ १ ॥ दीनोदुर्गतः ॥ उष्णमीषत्तप्तम् ॥
ज्वरत्वरेत्यूठ । ऊनमसम्पूर्णम् ॥ सर्वस्वे तु ऊनयतेरूनामिति
साधितम् ॥ इतिवृत्ति ॥

इस सूत्रसे 'जि' धातुको नक् प्रत्यय हो गया तब जिन शब्द सिद्ध हुआ, अपितु हैमचन्द्राचार्य नाममाला वृत्तिमें लिखते हैं कि—

जयत्यज्जिनवतिरागद्वेषादिशत्रून् इति जिनः ॥

इसमें यह वर्णन है कि जो विशेष करके रागद्वेषादि अं-
रंग शत्रुओंको जीतता है वही जिन है, अर्थात् जिसने राग

द्वेषादि शत्रुओंको जीत लिया है वही जिन है ॥ फिर, देवता ॥ शा० अ० २ पा० ४ । सू० २०६ ॥

प्रथमान्तात् साऽस्यदेवतेत्यस्मिन्नर्थे अ-णादयो भवंति ॥ इत्यण् ॥ आर्हतः ॥ एवं जैनः सौगतः शैवः वैष्णवः इत्यादि ॥

भाषार्थः—इस तद्धितके सूत्रका यह आशय है कि प्रथमान्तसे देवार्थमें अणादि प्रत्यय होजाते हैं यथा अर्हन् देवता अस्य आर्हतः । जिनो देवताऽस्य जैनः (आरैचोऽक्ष्वादेः । शा० अ० २ । ३ । ८४)

इस सूत्रसे आदि अच्को आ–ऐ–औ–आर् येह हो जाते हैं ॥ तब यह अर्थ हुआ कि जिन है जिनका देव वही हैं जैन अथवा (जिनं वेत्तीति जैनः) अर्थात् जो जिनके स्वरूपको जानता है वही जैन है ॥ तथा जिनानां राजः जिनराजः यह षष्ठीतत्पुरूष समास है । इससे यह सिद्ध हुआ कि जो सामान्य जिन है उनका जो राजा है वही जिनराज है अर्थात् तीर्थंकर देव ॥ इसी प्रकार जिनेन्द्र शब्द भी सिद्ध होता है ॥ सो जो श्री जिनेन्द्र देवने

द्रव्योंका स्वरूप कथन किया है उसको जो सम्यक् प्रकारसे जानता है वा मानता है वही जैन है ॥

प्रश्न–जिनेन्द्र देवने द्रव्य कितने प्रकारके वर्णन किये हैं?

उत्तर–षट् प्रकारके द्रव्य वर्णन किये हैं ॥

प्रश्न–वे कौन कौनसे हैं ?

उत्तर–जीव पुद्गल धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि। सद् द्रव्य लक्षणम्। उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्तं सत् इति द्रव्याः। किन्तु सत् जो है यह द्रव्यका लक्षण है क्योंकि, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत् ॥ अपने गुणपर्यायको जो व्याप्त होवे सो सत् है अथवा उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। यह जो पूर्व वचन है अर्थात् उत्पत्ति विनाश और स्थिरता, इन तीनों करी संयुक्त होवे सो सत् है अथवा अर्थक्रियाकारि सत् जो अर्थ क्रिया करनेवाला है सो सत् है ॥ यथा–

गुणाण मासओ दव्वं एगदव्वस्सिया गुणा लक्खणं पज्जवाणंतु उभयो अस्सियाभवे ॥ उ० अ० २८ गाथा ६ ॥

वृत्ति ॥ गुणानां रूपरसस्पर्शादीनां आश्रयः स्थानं यत्र गुणा उत्पद्यन्तेऽवतिष्ठंते विलीयन्ते तत् द्रव्यं इत्यनेन

रूपादि वस्तु द्रव्यात् सर्वथा अतिरिक्तं अपि नास्ति द्रव्ये एव रूपादि गुणा लभ्यन्ते इत्यर्थः ॥ गुणा हि एक द्रव्याश्रिताः एकस्मिन् द्रव्ये आधारभूते आधेयत्वेनाश्रिता एक द्रव्याश्रितास्ते गुणा उच्यन्ते इत्यनेन ये केचित् द्रव्यं एव इच्छंति तद्व्यक्तिरिक्तान् रूपादीन् इच्छंति तेषां मतं निराकृतं तस्माद् रूपादीनां गुणानां मध्येभ्यो भेदोप्यस्ति तु पुनः पर्यायाणां नव पुरातनादि रूपाणां भावानां एतल्लक्षणं ज्ञेयं एतत् लक्षणं किं पर्याया हि उभयाश्रिता भवेयुः उभयोर्द्रव्यगुणयोराश्रिताः उभयाश्रिताः द्रव्येषु नवीन पर्यायाः नाम्ना आकृत्या च भवंति गुणेष्वपि नव पुराणादि पर्यायाः प्रत्यक्षं दृश्यन्ते एव ॥

भाषार्थः—उक्त सूत्रमें यह वर्णन है कि द्रव्यके आश्रित गुण होते हैं, जैसे अग्निका प्रकाश वा उष्ण गुण है। अग्नि द्रव्य है तथा सूर्य्य द्रव्य प्रकाश गुण, जीव द्रव्य ज्ञान गुण, किन्तु नित्य गुणका आत्मासे अनादि अनंत सम्बन्ध है। यथा श्री आचारांगे—

"जे आया से विन्नाया जे विन्नाया से आया जेणविजाणइ से आया"

इति वचनात्। अर्थात् जो आत्मा है वही ज्ञान है, जो

ज्ञान है वही आत्मा है तथा जिस करके जाना जाये वही ज्ञान है। क्योंकि यह अनादि अनंत सम्बन्ध है जो परगुण सम्बन्ध है, कोई +अनादि सान्त है, कोई सादि सान्त है, अपितु परगुणका सम्बन्ध सादि अनंत नही होता है, सो जव द्रव्य गुण एकत्व हुए फिर उस द्रव्यका लक्षण पर्याय भी हो जाता है, दीपकके प्रकाशवत्, अपितु स्वगुणोंमें सर्व द्रव्य अनादि अनंत हैं, परगुणोंमें पर्यायार्थिक नयापेक्षा सादि सान्त हैं, यथा उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्तं सत, अर्थात् जो उक्त लक्षण करके युक्त है वही सद् द्रव्य है ॥

पुनः द्रव्य विषय—

धम्मो अहम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो एसलोगोत्ति पणत्तो जिणेहिंवर दंसिहिं ॥ उ० अ० २८ गाथा ७ ॥

वृत्ति—धर्म्म इति धर्मास्तिकाय १ अधर्म्म इति अधर्मास्तिकाय २ आकाशमिति आकाशास्तिकायः ३ कालः समयादिः ४ पुग्गलत्ति पुद्गलास्तिकायः ५ जन्तव इति जीवाः

+ अभव्य आत्माओंका कर्मोंके साथ अनादि अनंत सम्बन्ध है।

६ । एतानि षट् द्रव्याणि ज्ञेयानीति अन्वयः एषा इति सामान्य प्रकारेण इत्येवं रूपाः उक्त षट् द्रव्यात्मको लोको जिनैः प्रज्ञप्तः कथितः कीदृशैर्जिनैर्वरदर्शिभिः सम्यक् यथास्थित वस्तुरूपज्ञैः ७ । जंतवो जीवा अप्यनन्ता एव ८ ॥

भावार्थः—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, और जीवास्तिकाय, काल (समय,) पुद्गलास्तिकाय—यह षट् द्रव्यात्मक रूप यह लोक है अपितु इन द्रव्योंमें कालकी अस्ति नही हैं क्योंकि समयका स्थिर गुण स्वभाव नही है और आकाश अस्तिकाय लोगालोग प्रमाण है इस लिये यही षट् द्रव्यात्मक रूप लोक है ॥ ७ ॥

पुनः द्रव्य विषय—

धम्मो अहम्मो आगासं दव्वं इक्कि माहियं अणंताणिय दव्वाणि कालोपुग्गल जंतवो ॥ उत्त० अ० २८ गा० ८ ॥

वृत्ति—धर्मादि भेदानाह धर्म १ अधर्म २ आकाश ३ द्रव्यं इति प्रत्येकं योज्यं धर्मद्रव्यं अधर्मद्रव्यं आकाशद्रव्यं इत्यर्थः एतत् द्रव्यं त्रयं एकेकं इति एकत्वं युक्तं एव तीर्थंकरैः आख्यातं अग्रे तनानि त्रीणि द्रव्याणि अनंतानि स्वकीय स्व-

कीयानन्त भेदयुक्तानि भवंति तानि त्रीणि द्रव्याणि कानि कालः समयादिरनंतः अतीतानागताद्यपेक्षया पुद्गला अपि अनंताः ॥

भावार्थः—धर्म अधर्म आकाश यह तीन ही द्रव्य असंख्यात् प्रदेशरूप एकेक है अपितु आकाश द्रव्य लोकालोक अपेक्षा अनंत द्रव्य है, यह द्रव्य पूर्ण लोगमें व्याप्त है, अखंड रूप है, निज गुणापेक्षा और कालद्रव्य पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्य यह तीन ही अनंत हैं; क्योंकि कालद्रव्य इस लिये अनंत है कि पुद्गलकी अनंत पर्याय कालापेक्षा करके ही सद्रूप है तथा अनंते कालचक्र भूत भविष्यत काल अपेक्षा भी कालद्रव्य अनंत है और समय आस्थिर रूपमें है। फिर असंख्यात शुद्ध प्रदेशरूप जीव द्रव्य है अर्थात् असंख्यात शुद्ध ज्ञानमय जो आत्मप्रदेश हैं वे ही जीवरूप हैं इसी प्रकार अनंत आत्मा है और उनके भी प्रदेश पूर्ववत् ही हैं, अपितु निज गुणापेक्षा शुद्धरूप हैं। कर्म मलापेक्षा व्यवहार नयके मतमें शुद्धआत्मा अशुद्धआत्मा इस प्रकारसे आत्म द्रव्यके दो भेद हैं अपि तु संग्रह नयके मतमें जीव ही है, जैसे श्री स्थानांग सूत्रके प्रथम स्थानमें यह (एगे आया) अर्थात् संग्रह नयके मतमें आत्म ही है क्योंकि अनंत आत्माका गुण एक है जैसे सहस्र

दीपकोंका प्रकाश रूप गुण एक है अपितु व्यवहार नयके म-
तमें सहस्र दीपक रूप द्रव्य है क्योंकि जिस दीपकको जो कोई
उठाता है तब वह दीपक प्रकाश रूप स्वगुण साथ ही ले
जाता है। इस हेतुसे यही सिद्ध हुआ कि आत्म द्रव्य एक
भी है और अनंत भी है॥

अथ षट् द्रव्य लक्षण विषय—

**गइ लक्खणोउ धम्मो अहम्मो ठाण लक्ख-
णो भायणं सव्व दव्वाणं नहं ओगाह लक्खणं
॥ उत्त० अ० २८ गाथा ए ॥**

वृत्ति–धम्मो धर्मास्तिकायो गति लक्षणो ज्ञेयः लक्ष्यते
ज्ञायते अनेनेति लक्षणं एकस्मादेशात् जीवपुद्गलयोर्देशान्तरं
प्रतिगमनं गतिर्गतिरेव लक्षणं यस्य स गतिलक्षणः अधम्मो
अधर्मास्तिकायः स्थितिलक्षणो ज्ञेयः स्थितिः स्थानं गति
निवृत्तिः सैव लक्षणं अस्यैति स्थानलक्षणोऽधर्मास्तिकायो ज्ञेयः
स्थिति परिणतानां जीव पुद्गलानां स्थिति लक्षण कार्यं ज्ञायते
स अधर्मास्तिकायः यत्पुनः सर्वद्रव्याणां जीवादीनां भाजनं
आधाररूपं नभः आकाशं उच्यते तत् च नभः अवगाहलक्षणं अ-
वगाढं प्रवृत्तानां जीवानां पुद्गलानां आलम्बो भवति इति नभः

गाहः अवकाशः स एव लक्षणं यस्य तत् अवगाहलक्षणं नभ उच्यते ॥ ९ ॥

भावार्थः—धर्मास्तिकायका गमणरूप लक्षण है और जीव द्रव्य अजीव द्रव्यकी गतिमें यह द्रव्य साहायक भूत है; जैसे राजमार्ग चलने वालोंके लिये साहायक है क्योंकि, यदि पंथीराज मार्गमें स्थित हो जावे तो मार्ग स्वयं उसको चलाने समर्थ नहीं होता है, किन्तु उदासीनता पूर्वक पंथीके चलते समय मार्ग साहायक है तथा जैसे मतसको जल साहायक है। वा अंधेको यष्टि (लाठी) आधारभूत है इसी प्रकार जीव द्रव्य अजीव द्रव्यको गति करते समय धर्म द्रव्य साहायक है। और अधर्म द्रव्य जीव द्रव्य अजीव द्रव्यकी स्थिति करनेमें साहायक भूत होता है, जैसे उष्ण कालमें पंथीको वृक्षकी छाया आधारभूत है, तथा जैसे मही आधारभूत है इसी प्रकार जीव द्रव्य अजीव द्रव्यकी स्थिति करनेमें अधर्म है ॥ ओर सर्व द्रव्योंका भाजनरूप एक आकाश द्रव्य है क्योंकि सर्व द्रव्योंका आधार भूत एक अंतरीक्ष ही है जैसे एक कोष्टकमें एक दीपक के प्रका[illegible] दीपकोंका प्रकाश भी बीचमें ही लीन हो जाता [illegible] आकाश द्रव्यमें जीव द्रव्य अजीव द्रव्य स्थिति जैसे एक कलश है जोकि पूर्ण दुग्धसे पूरित है,

यदि फिर भी उस कलशमें मत्संडचादि द्रव्य प्रविष्ट करें तो प्रवेश हो जाते हैं उसी प्रकार आकाश द्रव्यमें जीव द्रव्य अजीव ठहरे हुए हैं। अपितु जैसे भूमिकामें नागदंत (कीला) को स्थान प्राप्त हो जाता है तद्वत् ही आकाश प्रदेशों में अनंत प्रदेशी स्कंध स्थिति करते हैं क्योंकि आकाश द्रव्यका लक्षण ही अवकाश रूप है।

अथ काल व जीवका लक्षण कहते हैं:—

वत्तणा लक्खणो कालो जीवो उवओग लक्खणो नाणेणं दंसणेणंच सुहेणय दुहेणय ॥ उत्त० अ० २८ गाथा १० ॥

वृत्ति—वर्त्तते अनवच्छिन्नत्वेन निरन्तरं भवति इति वर्त्त- ा सा वर्त्तना एव लक्षणं लिङ्गं यस्येति वर्त्तनालक्षणः काल उच्यते तथा उपयोगो मतिज्ञानादिकः स एव लक्षणं यस्य स उपयोगलक्षणो जीव उच्यते यतो हि ज्ञानादिभिरेव जीवो लक्ष्यते उक्त लक्षणत्वात् पुनर्विशेष लक्षणमाह ज्ञानेन विशेषाव- बोधेन च पुनर्दर्शनेन सामान्यावबोधरूपेण च पुनः सुखेन च पुनः दुःखेन च ज्ञायते स जीव उच्यते ॥ १० ॥

भावार्थः—समयका वर्त्तना लक्षण है इसी करके समय समय पर्याय उत्पन्न होता है, जैसेकि उपचारक नयके मतमें जीवकी व्यवस्थाका कारणभूत काल द्रव्य ही है। यथा—बाल १ युवा २ वृद्ध ३ अथवा उत्पन्न १ नाश २ ध्रुव ३ यह तीनों ही व्यवस्थाका कर्ता काल द्रव्य है और जो कुछ समय २ उत्पत्ति वा नाश पदार्थोंका है वे सर्व काल द्रव्यके ही स्वभावसे है अपितु द्रव्योका उत्पन्न वा नाश यह उपचारक नयका वचन है किन्तु द्रव्यार्थिक नयापेक्षा सर्व द्रव्य नित्यरूप हैं। और पर्यायोंका कर्ता काल द्रव्य है। जैसे सुवर्ण द्रव्यके नाना प्रकारके आभूषणादि वनते है; फिर उनही आभूपणादिको ढाल कर अन्य मुद्रादि वनाये जाते हैं, इसी प्रकार जो जो द्रव्यका पर्याय परिवर्तन होता है उसका कर्ता काल द्रव्य ही है। इसी वास्ते सूत्रमें लिखा है 'वत्तणा लक्खणो कालो' अर्थात् कालका लक्षण वर्तना ही है सो कालके परिवर्तन से ही जीव द्रव्य अजीव द्रव्यका पर्याय उत्पन्न हो जाता है और जीव द्रव्यका उपयोगरूप लक्षण है सो उपयोग ज्ञान दर्शनमें ही होता है अर्थात् जीव द्रव्यका लक्षण ज्ञान दर्शनमें उपयोगरूप है सो यह तो सामान्य प्रकारसे सर्व जीव द्रव्यमें यह लक्षण सतत विद्यन है। अपितु विशेष लक्षण यह है कि सुख वा दुःखका अनुभव

ना क्योंकि सुख दुःखका अनुभव जीव द्रव्यको ही है न तु
य द्रव्यको ॥

पुनः सूत्र इस कथनको इस प्रकारसे लिखते है ।

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा
ारियं उवओगोय एयं जीवस्स लक्खणं ॥

ा० सू० अ० २८ गा० ११ ॥

वृत्ति--ज्ञानं ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं च पुनर्दृश्यते अनेनेति
र्शनं च पुनश्चरित्रं क्रियाचेष्टादिकं तथा तपो द्वादशविधं तथा
र्यं वीर्यान्तराय क्षयोपशमात् उत्पन्नं सामर्थ्यं पुनरुपयोगो ज्ञा-
ादिषु एकाग्रत्वं एतत् सर्वं जीवस्य लक्षणं ॥ ११ ॥

भावार्थः--ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, तथा उपयोग
यही जीवके लक्षण है, क्योंकि ज्ञान दर्शनमय आत्मा अनंत
शक्ति संपन्न है । पुनः चरित्र और तप यह भी आत्माके साध्य
धर्म है क्योंकि आत्मा ही तपादि करके युक्त हो सकता है,
न तु अनात्मा ।

प्रश्न--जब आत्मा द्रव्य अनंत वीर्य्य करके युक्त है तब
सिद्धात्मा भी अनंत वीर्य्य करके युक्त हुए तो फिर उनका
वीर्य्य सफलताको कैसे प्राप्त होता है ?

उत्तर—अंतराय कर्मके क्षय हो जानेके कारणसे सिद्धात्मा भी अनंत शक्ति युक्त हैं अपितु अकृतवीर्य्य है क्योंकि सिद्धात्माके सर्व कार्य सिद्ध है ॥

पुनः संसारी जीवोंका दो प्रकारका वीर्य्य है। जैसेकि—बाल (अज्ञान) वीर्य्य १ और पंडित वीर्य्य २। बाल वीर्य्य उसका नाम है जो अज्ञानतापूर्वक उद्यम किया जाय। और पण्डित वीर्य्य उसको कहते हैं जो ज्ञानपूर्वक परिश्रम हो। सो जिस समय आत्मा अकर्मक होता है तब अकृतवीर्य्य हो जाता है सो सिद्ध प्रभु अकृतवीर्य्य हैं ॥

पूर्वपक्षः—जिस समय आत्मा सिद्ध गतिको प्राप्त होता है तब ही अकृतवीर्य्य हो जाता है सो इस कथनसे सिद्ध पद सादि ही सिद्ध हुआ। जब ऐसे है तब जैन मतकी मोक्ष अनादि न रही, अपितु सादि पद युक्त सिद्ध हुई ॥

उत्तरपक्षः—हे भव्य ! यह आपका कथन युक्ति वा सिद्धान्त बाधित है क्योंकि जैन मतका नाम अनेकान्त मत है सो जब जैन मत संसारको अनादि मानता है तो भला मोक्षपद सादि युक्त कैसे मानेगा ? अर्थात् कदापि नहीं, क्योंकि संसार अनादि अनंत है उसी ही प्रकार मोक्षपद भी अनादि अनंत है, अपितु सिद्धापेक्षा सूत्रकार ऐसे कहते हैं। यथा—

एगत्तेणयसाइया अपज्जवसियाविय।
पुहत्तेण अणाईया अपज्जवसियाविय ॥

उत्त० अ० ३६ गाथा ६७ ॥

वृत्ति–ते सिद्धा एकत्वेन एकस्य कस्याचित् नाम ग्रहणापेक्षया सादिकाः अमुको मुनिस्तदा सिद्धः इत्यादि सहिताः सिद्धाः भवंति च पुनस्ते सिद्धाः अपर्यवसिताः अन्तराहिताः मोक्षगमनादनन्तरं अत्रागमनाभावात् अन्तराहिताः ते सिद्धाः पृथक्त्वेन बहुः केन सामस्त्यापेक्षया अनादयो अनन्ताश्च ॥

भावार्थः–एक सिद्ध अपेक्षा सादि अनंत है और बहुतोंकी अपेक्षा अनादि अनंत है, अर्थात् जिस समय कोई जीव मोक्षगत हुआ उस समयकी अपेक्षा सादि है अपुनरावृत्तिकी अपेक्षा अनंत है, फिर बहुत सिद्धोंकी अपेक्षा अनादि अनंत है, क्योंकि कालचक्र अनादि अनंत होनेसे तथा जैसे चेतनशक्ति अनादि है वैसे ही जड़ शक्ति भी अनादि है आपितु जड़ शक्तिकी अपेक्षा चेतन शक्ति रूप शब्द व्यवहृत है, ऐसे ही जड़ शक्ति चेतन शक्तिकी अपेक्षा सिद्ध है । इसी प्रकार संसार अपेक्षा सिद्ध पद है और सिद्धपद अपेक्षा संसारपद है, किन्तु यह दोनों अनादि अनंत है ॥

तथा पुद्गलका स्वरूप इस प्रकारसे है ॥

सद्दंधयार उज्जोओ पहा छाया तवेइया ।
वण्ण रस गंध फासा पुग्गलाणंतु लक्खणं ॥

उत्त० अ० २८ गाथा १२ ॥

वृत्ति–शब्दो ध्वनि रूप पौद्गलिकस्तथान्धकारं तदपि पुद्गल रूपं तथा उद्योतोरत्नादीनां प्रकाशस्तथा प्रभा चन्द्रादीनां प्रकाशः तथा छाया वृक्षादीनां छाया शैत्यगुणा तथा आतपो रवेरुष्णप्रकाशः इति पुद्गलस्वरूपं वा शब्दः समुच्चये वर्णगंधरस स्पर्शाः पुद्गलानां लक्षणं ज्ञेयं वर्णाः शुक्लपीतहरितरक्तकृष्णादयो गंधो दुर्गन्धसुगन्धात्मको गुणः रसा षट् तीक्ष्ण कटुक कषायाम्ल मधुर लवणाद्या स्पर्शाः शीतोष्ण खर मृदु स्निग्ध रुक्ष लघुगुर्वादयः एते सर्वेपि पुद्गलास्तिकाय स्कन्ध लक्षण वाच्या ज्ञेयाः इत्यर्थः एभिर्लक्षणैरेव पुद्गला लक्ष्यन्ते इति भावः ॥ १२ ॥

भावार्थः–शब्दका होना, अन्धकारका होना, उद्योत, प्रभा, छाया (साया) वा तप, अथवा कृष्ण, नील, पीत, रक्त, श्वेत, यह वर्ण और छः ही रस जैसेकि, कटुक, कषाय, तिक्त, खट्टा, मधुर और लवण, तथा दो गंध जैसेकि सुगंध, दुर्गंध, और अष्ट ही स्पर्श

जैसेकि कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, यह आठ ही स्पर्श इत्यादि सर्व पुद्गल द्रव्यके लक्षण हैं,क्योंकि पुद्गल द्रव्य एक है उसके वर्ण गंध रस स्पर्श यह सर्व लक्षण हैं, इन्हींके द्वारा पुद्गल द्रव्यकी अस्तिरूप है ॥

अथ पुद्गल द्रव्यके पर्यायका वर्णन करते हैंः—

एगत्तं च पुहत्तं च संखा संठाण मेवय ।
संजोगाय विभागाय पज्जवाणंतु लक्खणं ॥

उत्त० अ० २८ गाथा १३ ॥

वृत्ति—एतत् पर्यायाणां लक्षणं एतत् किं एकत्वं भिन्नेष्वपि परमाण्वादिषु यत् एकोयं इति बुद्धया घटोयं इति प्रतीति हेतुः च पुनः पृथक्त्व अयं अस्मात् पृथक् घटः पटात् भिन्नः पटो घटाद्भिन्नः इति प्रतीति हेतुः संख्या एको द्वौ बहव इत्यादि प्रतीति हेतुः च पुनः संस्थानं एव वस्तूनां संस्थानं आकारश्चतुरस्र वर्त्तुलतिस्रादि प्रतीति हेतुः च पुनः संयोगा अयं अङ्गुल्याः संयोग इत्यादि व्युपदेशहेतवो विभागा अयं अतो विभक्त इति बुद्धि हेतवः एतत्पर्यायाणां लक्षणं ज्ञेयं संयोगा विभागा बहुवचनात् नव पुराणत्वाद्यवस्था ज्ञेयाः लक्षणं त्वसाधारण रूप गुणानां लक्षणं रूपादि प्रतीतत्वान्नोक्तं ॥

भावार्थः—पुद्गल द्रव्यका यह स्वभाव है कि एकत्व हो जाना तथा पृथक् २ अर्थात् भिन्न होना तथा संख्याबद्ध वा संस्थान रूपमें रहना। संस्थानके ५ भेद हैं जैसेकि परिमंडल अर्थात् गोलाकार १. वृत्ताकार २. त्रंसाकार ३. चतुरंसाकार ४. दीर्घाकार ५. और परस्पर पुद्गलोंका संयोग हो जाना, फिर वियोग होना, यह पुद्गल द्रव्यके स्वाभाविक लक्षण हैं। फिर संयोग वियोगके होने पर जो आकृति होती है उसको पर्याय कहते हैं॥ अपितु पृथक् वा एकत्व होनेके मुख्यतया दो कारण हैं, स्वाभाविक वा कृत्रिम। सो यह दो कारण ही मुख्यतया जगत्में विद्यमान हैं, जैसेकि जो कृत्रिम पुद्गल सम्बन्ध है उसके लिये सदैव काल जीव स्वः परिश्रमसे प्रायः यही कार्य करता दीखता है। तथा काल स्वभाव नियति ३ कर्म, पुरुषार्थ अर्थात् समयके अनुसार स्वभाव होनहार कर्म पुरुषार्थका होना और उसीके द्वारा अशुभ पुद्गलोंका वियोग शुभ पुद्गलोंका संयोग होता रहे और मोक्षका साधक जीव तो सदैव काल यही परिश्रम करता है कि मैं पुद्गलके बंधनसे ही मुक्त हो जाऊँ॥ जो स्वाभाविक पुद्गलका संयोग वियोग होता है, वह तो स्वः स्थितिके अनुसार ही होता है। तथा जो वस्त्र, भाजन, तथा ।दि जो जो पदार्थ ग्रहण करनेमें आते हैं तथा जो जो प-

दार्थ छोडने में आते हैं वह सब परिणामिक द्रव्य हैं, इस लिये उन्हें पर्याय कहते हैं ॥ तथा बहुतसे अनभिज्ञ लोगोंने पुद्गलद्रव्यके स्वरूपको न जानते हूओंने ईश्वरकृत जगत् कल्पन कर लिया है अपितु उन लोगोंकी कल्पना युक्तिबाधित ही है। जैसे कि जब परमात्मामें सृष्टिकर्तृत्व गुण है, तब परलय कर्तृत्व गुण असंभव हो जायगा, क्योंकि एक पदार्थमें पक्ष प्रतिपक्ष रूप युगपत् समूह ठहरना न्याय विरुद्ध है। जैसे कि अग्निमें उष्ण वा प्रकाश गुण सदैव कालसे हैं वैसे ही शीत वा अन्धकार यह गुण अग्निमें सर्वथा असंभव हैं, इसी प्रकार इश्वरमें भी नित्य गुण एक ही होना चाहिये परस्पर विरुद्ध होने के कारणसे ॥

यदि यह कहोगे कि जैसे पुद्गलकी समय २ पर्याय परिवर्त्तनाके कारणसे पुद्गल द्रव्य दो गुण भी रखनें समर्थ है, इसी प्रकार इश्वरमें भी दो गुण ठहर सक्ते हैं, सो यह भी कथन समीचीन नही हैं क्योंकि पुद्गल द्रव्यका जब पर्याय परिवर्त्तन होता है तब उसमें सादि सान्तपद कहा जाता है। फिर प्रथम पर्यायकी जो संज्ञा (नाम) है उसका नाश जो नूतन संज्ञा है उसकी उत्पत्ति हो जाती है तो क्या ईश्वरकी भी यही दशा है? तथा जब परलय हूइ फिर आकाशका भी अभाव हो गया तब परमात्मा सर्व व्यापक रहा किम्वा न रहा। यदि रहा तब परलय

क्योंकि व्यापक शब्द ही सिद्ध करता है कि प्रथम कोई वस्तु व्याप्य है जिसमें वह व्यापक हो रहा है।

यदि परमात्माकी भी परलय मानी जाये तब ईश्वरपद ही खंडित हो गया तो भला सृष्टिकर्तृत्व गुण कैसे सिद्ध होगा? सो इस विषयको मैं यहांपर इसालिये विस्तारपूर्वक लिखना नही चाहता हूं कि मैं सिद्धान्तको ही लिख रहा हूं न तु खंडन मंडन ॥

अब नव तत्त्वका विवर्ण किञ्चित् मात्र लिखता हूं:—

जीवाजीवाय बंधोय पुण्णं पावा सवोतहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो संतेएतहिया नव ॥

उत्त० अ० २८ गाथा १४ ॥

वृत्ति—जीवाश्चेतनालक्षणाः अजीवा धर्म्माधर्म्माकाश-कालपुद्गलरूपाः बन्धो जीव कर्मणोः संश्लेषः पुण्यं शुभप्रकृति रूपं पापं अशुभं मिथ्यात्वादि आस्रवः कर्मबंधहेतुः हिंसा मृषाऽदत्तमैथुनपरिग्रहरूपः तथा संवराः समिति गुप्त्यादि-भिरास्रवद्वारनिरोधः निर्जरा तपसा पूर्वार्जितानां कर्मणां परि-नं मोक्षः सकलकर्म्मक्षयात् आत्मस्वरूपेण आत्मनोऽव-

स्थानं एते नव संख्याकास्तथ्याः अवितथाः भावाः संति इति सम्बन्धः नव संख्यात्वं हि एतेषां भावानां मध्यमापेक्षं जघन्यतो हि जीवाजीवयोरेव बन्धादीनां अन्तर्भावात् द्वयोरेव संख्यास्ति उत्कृष्टतस्तु तेषां उत्तरोत्तर भेदविवक्षया अनन्तत्वं स्यात् ॥

भावार्थः--तत्व नव ही है जैसे कि जीवतत्त्व १ अजीवतत्त्व २ पुण्यतत्त्व ३ पापतत्त्व ४ आस्रवतत्त्व ५ संवरतत्त्व ६ निर्ज० रातत्त्व ७ बंधतत्त्व ८ मोक्षतत्त्व ९ । सो जीवतत्त्व ही इन तत्त्वोंका ज्ञाता है न तु अन्य ॥ जीवतत्त्वमें चेतनशक्ति इस प्रकार अभिन्न भावसे विराजमान है कि जैसे सूर्य्यमें प्रकाश मत्संडीमें मधुरभाव ॥

अजीवतत्त्वमें जडशक्ति भी प्राग्वत् ही विद्यमान है किन्तु वह शून्यरूप शक्ति है॥ जैसे बहुतसे वादित्र गाना भी गाते हैं किन्तु स्वयम् उस गीतके ज्ञानशून्य ही हैं ॥

पुण्यतत्त्व जीवको पथ्य आहारके समान सुखरूप है जैसे कि रोगीको पथ्याहारसे नीरोगता होती है, और रोग नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार आत्मामें जब शुभ पुण्यरूप परमाणु उदय होते हैं उस समय पापरूप अशुभ परमाणु आत्मामें उ- दयमें न्यून होते हैं किन्तु सर्वथा पापरूप परमाणु आत्मासे

संसारावस्थामें भिन्न नहीं होते क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है कि जिसके एक ही प्रकृति सर्वथा रही हो ॥

पापतत्त्व रोगीको अपथ्य आहारकी नांइ है जैसे रोगीको अपथ्य भोजन बढ़ जाता है, उसी प्रकार उसकी नीरोगता भी घटती जाती है। इसी प्रकार आत्मा जब अशुभ परमाणुओंसे व्याप्त होता है तब इसके पुण्यरूप परमाणु भी मंद दशाको प्राप्त हो जाते हैं ॥

आस्रवतत्त्वके दो भेद हैं। द्रव्यास्रव १ भावास्रव २। द्रव्य आस्रव उसका नाम है जैसे कुंभकार चक्र करके घट उत्पन्न करता है, इसी प्रकार आत्मा मिथ्यात्वादि करके कर्मरूप आस्रव ग्रहण करता है। भावास्रव उसका नाम है जैसे तड़ागके पाणी आनेके मार्ग हैं इसी प्रकार जीवके आस्रव है, तथा जैसे मंदिरका द्वार नावाका छिद्र है इसी प्रकार जीवको आस्रव है ॥ किन्तु हिंसा, असत्य, अदत्त, अब्रह्मचर्य, परिग्रह, यह पांच ही कर्मोंके प्रवेश करनेके मार्ग हैं सो इन्हींके द्वारा कर्म आते हैं, इस लिये इन्हीं मार्गोंका ही नाम भाव आस्रव है अपितु आस्रव जीव नहीं है जीवमें कर्म आनेके मार्ग हैं ॥

सम्वरतत्त्व उसका नाम है जो जो कर्म आनेके मार्ग हैं उन्हींके वशमें करे जैसे तड़ागके पाणी आनेके मार्ग हैं उनको

बंद किया जावे तब नूतन जलका आना बंद होजाता है; इसी प्रकार जो जो आस्रवके मार्ग हैं जब वह बंध हो गये तब नूतन कर्म आने भी बंद हुए क्योंकि शुद्धात्मा आस्रवरहित सम्वररूप है ॥

निर्जरातत्त्व उसको कहते है जब संवर करके कर्मोंके आनेके मार्ग बंद किए जावें फिर पूर्व कर्म जो है उनको तपादि द्वारा शुष्क करना कर्मोंसे आत्माको रहित करना उसकाही नाम निर्जरा है ॥ जैसे तड़ागके जलादिको दूर करना तथा मंदिरके द्वारादिके मार्गसे रजादिका निकालना अथवा नावाके जलको नावासे बाहिर करना ॥ इसी प्रकार आत्मासे कर्मोंका भिन्न करना उसका नाम निर्जरा है ॥ तप द्वादश प्रकारका निम्न सूत्रानुसार है ।

अनशनावमौदर्य्य वृत्तिपरिसङ्ख्यानरसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेशा बाह्यं तपः॥

तत्त्वार्थ सूत्र अ० ७ सू० १९ ॥—

अर्थः—अनशन १ ऊनोदरी २ भिक्षाचरी ३ रसपरित्याग ४ विविक्त शय्यासन ५ कायक्लेश ६ यह षट् प्रकारसे बाह्य तप हैं ॥ तथा—

प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ त० सू० अ० ८ सु० २०॥

अर्थः—प्रायश्चित ७ विनय ८ वैयावृत्य ९ स्वाध्याय १० व्युत्सर्ग ११ ध्यान १२ यह षट् प्रकारके अभ्यन्तर तप हैं। इनका उव्वाइ सूत्र, विवाहप्रज्ञप्ति सूत्र, प्रश्न व्याकरण सूत्र तथा नव तत्त्वादि ग्रंथोंसे पूर्ण स्वरूप जानना योग्य है॥

बंधतत्त्वका यह स्वरूप है कि आत्माके साथ कर्मोंका द्रव्यार्थिक नयापेक्षा अनादि सान्त सम्बन्ध है और अनादि अनंत भी है, क्योंकि जीवतत्त्व अर्हन्के ज्ञानमें दो प्रकारके हैं, जैसेकि—भव्य १ अभव्य २। सो यह भव्य अभव्य स्वाभाविक ही जीव द्रव्यके दो भेद है किन्तु पारिणामिक भाव नहीं हैं, अपितु जीव द्रव्यमें कर्मोंका सम्बन्ध पर्यायार्थिक नयापेक्षा सादि सान्त है, किन्तु इनकी एकत्वता ऐसे हो रही है जैसेकि—तिलोंमें तैल १ दुग्धमें घृत २ सुवर्णमें रज ३ इसी प्रकार जीव द्रव्यमें कर्मोंका सम्बन्ध है, जिसके प्रकृतिबंध १ स्थितिबंध २ अनुभागबंध ३ प्रदेशबंध ४ इत्यादि अनेक भेद हैं, अपितु यह कर्मोंका बंध आत्माके भावों पर ही निर्भर है॥

मोक्षतत्त्व उसको कहते हैं, जैसे तिलोंसे तैल पृथक् हो

जाता है १ दुग्धसे घृत भिन्न होता है २ सुवर्णसे रज पृथक् हो जाती है ३ इसी प्रकार जीव कर्मोंसे अलग हो जाता है अपितु फिर कर्मोंसे स्पर्शमान नहीं होता जैसे तिलोंसे तैल पृथक् हो कर फिर वह तैल तिलरूप नही बनता एसे ही घृत सुवर्ण इत्यादि ॥ इसी प्रकार जीव द्रव्य जब कर्मोंसे मुक्त हो गया फिर उसका कर्मोंसे स्पर्श नही होता, किन्तु फिर वह सादि अनंत पदवाला हो जाता हैं ॥ सो यह नव तत्त्व पदार्थ हैं ॥ तथा च जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ तत्त्वार्थ के इस सूत्रसे सप्त तत्त्व सिद्ध है, जैसेकि जीवतत्त्व १ अजीवतत्त्व २ आस्रवतत्त्व ३ वन्धतत्त्व ४ सम्वरतत्त्व ५ निर्जरातत्त्व ६ मोक्षतत्त्व ७ ॥

किन्तु पुण्यतत्त्व, पापतत्त्व, यह दोनों ही तत्त्व आस्रवतत्त्व के ही अन्तरभूत हैं, क्योंकि वास्तवमें पुण्य पाप यह दोनो ही आस्रवसे आते हैं अपितु पुण्य शुभ प्रकृतिरूप आस्रव हैं, पाप अशुभ प्रकृतिरूप आस्रव है । कर्मोंका बंध जीवाजीवके एकत्व होने पर ही निर्भर है क्योंकि जीवाजीवके एकत्व होने पर ही योगोत्पत्ति है, सो योगोंसे ही कर्मोंका बंद है और पुण्य पापसे ही आस्रव है अर्थात् पुण्य पापका जो आवागमण है,

आस्रव है। संवर निर्जरासे ही मोक्ष है, क्योंकि जब नूतन कर्मोंका संवर हो गया तब तपादि द्वारा प्राचीन कर्मोंकी निर्जरा हुई। जब आत्मा कर्मलेपसे सर्वथा रहित हो गया, सो तिस समयकी पर्यायको मोक्ष कहते हैं॥

सो इस प्रकारसे श्रीजिनेन्द्र देवने तत्त्वोंका स्वरूप प्रतिपादन किया है तथा मुख्यतामें अर्हद् देवने दो ही द्रव्य कथन किये हैं जैसेकि, जीवद्रव्य १ अजीव २; किन्तु अजीव द्रव्यमें पंचद्रव्य गर्भित हैं जैसेकि—धर्मद्रव्य १ अधर्मद्रव्य २ आकाश द्रव्य ३ कालद्रव्य ४ पुद्गलद्रव्य ५। सो यह पांच ही द्रव्य जड़ रूप है किन्तु जीवद्रव्य ही चेतनालक्षणयुक्त है॥ और इनके ही अनेक लक्षण हैं जैसेकि—अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वम्, चेतनत्वं, अचेतनत्वं, मूर्तत्वं, अमूर्तत्वं॥ यह दश समान गुण सर्व द्रव्योंके वीचमें हैं, किन्तु एकैक द्रव्य अष्टावष्टौ गुणा भवंति जीव द्रव्ये अचेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति पुद्गल द्रव्ये चेतनत्वम् मूर्तत्वं च नास्ति॥धर्माधर्माकाशकालद्रव्येषु चेतनत्वं मूर्त्तत्वं च नास्ति॥ एवं द्विद्विगुणवर्जिते अष्टावष्टौगुणाः प्रत्येक द्रव्ये भवंति॥

दश सामान्य गुणोंका यह अर्थ है:—तीन कालमें जो स्वः चतुष्टय करि विद्यमान द्रव्य है जैसेकि स्वःद्रव्य १ स्वःक्षेत्र २

स्वःकाल ३ स्वःभाव ४ । उसका अस्ति स्वभाव है, जैसेकि चेत-नका तीन कालमें ज्ञानस्वरूप रहना, और पुद्गल द्रव्यमें अना-दि कालसे जड़ता इत्यादि ॥

सो इसी प्रकार वस्तु द्रव्यके प्रमेय, अगुरुलघु, प्रदेश, चेतन, अचेतन, मूर्त्त, अमूर्त्त इत्यादि यह दश सामान्य गुण एक एक द्रव्यमें आठ २ सामान्य गुण हैं जैसेकि जीव द्रव्यमें अचे-तनता और मूर्त्तिभाव नहीं है; और पुद्गल द्रव्यमें चेतनता अमूर्त्तिभाव नहीं है ॥ धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्यमें चेतनता मूर्त्तिभाव नही है ॥ इसी प्रकार दो दो गुण वर्जके शेष अष्ट अष्ट गुण सर्व द्रव्योंमें हैं,और विशेष षोडश गुण हैं जैसेकि ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्याणि, स्पर्श, रस, गंध, वर्णाः, गतिहेतुत्वं, स्थितिहेतुत्वं, अवगाहनहेतुत्वम्, वर्तनाहेतुत्वं,चेतनहेतुत्वं,अचेतन हेतुत्वं, मूर्त्तत्वं, अमूर्तत्वं; द्रव्याणां विशेषगुणाः षोडश विशेषगुणेषु जीव पुद्गलयोः षडिति॥ जीवस्य ज्ञान दर्शन सुख वीर्याणि चेतनत्व ममूर्त्तमिति षट् ॥ पुद्गलस्य स्पर्श रस गंध वर्णाः मूर्त्तत्वमचेतन मिति षट्। इतरेषां धर्माधर्माकाशकालानां प्रत्येकं त्रयो गुणाः धर्म द्रव्ये गतिहेतुममूर्त्तत्वमचेतनत्वमेते त्रयो गुणाः । अधर्म द्रव्ये स्थि-तिहेतुत्वममूर्त्तत्वमचेतनत्वामिति । आकाश द्रव्ये अवगाहन

हेतुत्वममूर्त्तत्वमचेतनत्वमिति । काळ द्रव्ये वर्तना हेतुत्वममूर्त्तत्वमचेतनत्वमिति विशेषगुणा अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया सामान्यविजात्यपेक्षया तएव विशेष गुणाः ॥ इति गुणाधिकारः ॥

भावार्थः—इन षोडश गुणोमेंसे जीव द्रव्यमें षड् विशेष गुण हैं, जैसेकि जीव द्रव्यमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनता, अमूर्त्तिभाव यह षड् गुण हैं; और पुद्गल द्रव्यमें भी षड् गुण हैं जैसेकि स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, मूर्तिभाव, अचेतन भाव ॥ अपितु अन्य द्रव्योंमें उक्त विशेष गुणोंमेंसे तीन तीन गुण विद्यमान हैं जैसेकि धर्म द्रव्यमें गतिहेतुत्व (चलण लक्षण), अमूर्त्तत्व (मूर्ति रहित), अचेनत्व (जड़ता), यह तीन गुण हैं ॥ और अधर्म द्रव्यमें स्थितिहेतुत्व (स्थिर लक्षण), अमूर्त्तत्व, (मूर्ति रहित), अचेतनत्व (जड़) यह तीन गुण हैं ॥ और आकाश द्रव्यमें अवगाहनहेतुत्व (अवकाश लक्षण), अमूर्त्तत्व (मूर्ति रहित), अचेतनत्व (शून्य)॥ काल द्रव्यमें वर्त्तनाहेतुत्व अमूर्त्तत्व अचेनत्व यह विशेष गुणोंमेंसे तीन १ गुण प्रति द्रव्य में हैं, क्योंकि द्रव्यत्व, क्षेत्रत्व, कालत्व, भावत्व, यह चारोंकी स्वजात्यपेक्षया विशेष गुण हैं और परगुणापेक्षा सामान्य गुण हैं ॥

फिर स्वभाव इस प्रकारसे जानने चाहियेः—

यथा—स्वभावाः कथ्यन्ते। अस्तिस्वभावः नास्तिस्वभावः नित्य स्वभावः अनित्य स्वभाव; एक स्वभावः अनेक स्वभावः भेद स्वभावःअभेदस्वभावःभव्य स्वभावःअभव्य स्वभावःपरम स्वभावः द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः चेतन स्वभावः अचेतन स्वभावः मूर्त्त स्वभावः अमूर्त्त स्वभावः एकप्रदेशस्वभावः अनेक प्रदेशस्वभावः विभावस्वभावः शुद्ध स्वभावः अशुद्ध स्वभावः उपचरित स्वभावः एते द्रव्याणां दशविशेषस्वभावाः। जीव पुद्गलयोरेकविंशतिः चेतन स्वभावः मूर्त्त स्वभावः विभाव स्वभावः एकप्रदेशस्वभावः शुद्ध स्वभाव एतैः पंचाभिः स्वभावैर्विनाधर्मादित्रयाणां षोडशस्वभावाः संति॥ तत्र वहु प्रदेशं विना कालस्य पञ्चदश स्वभावाः एकविंशति भावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः। धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः॥ १॥

अर्थः—जो तीन कालमें विद्यमान पदार्थ हैं और अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करके अस्तिरूप हैं तिनका नाम अस्ति स्वभाव है। और जो परगुण करके नास्तिरूप है सो नास्ति स्वभाव है। जैसेकि घट अपने गुण करके अस्ति स्वभाववाला है और पट अपेक्षा घट नास्तिरूप है ऐसे ही पट; क्योंकि घट

अपने गुणमें अस्तिरूप है, पट अपने गुणमें विद्यमान है, परंतु परगुणापेक्षा दोनों नास्तिरूप हैं सो नास्ति स्वभाव है ॥ जो द्रव्य गुण करके नित्यरूप है सो नित्य स्वभाव है जैसे चेतन स्वभाव ॥ ३ ॥ जो नाना प्रकारकी पर्यायों करके नाना प्रकारके रूप धारण करे सो अनित्य स्वभाव है जैसे पुद्गलका स्वभाव संयोग वियोग है ॥ ४ ॥ जो एक स्वभावमें रहे सो एक स्वभाव जैसे सिद्ध प्रभु एक अपने निज गुण शुद्ध स्वभावमें हैं, क्योंकि कर्मोंकी अपेक्षा जीवमें मलीनता है, अपितु निजगुणापेक्षा जीव एक शुद्ध स्वभाववाला है ॥ ५ ॥ जो अनेक पर्यायों करि अनेक रूप धारण करता है सो अनेक स्वभाविक है जैसे सुवर्णके आभूषणादि ॥६॥ जहां परगुण गुणीका भेद हो उसका नाम भेद स्वभाव है, अर्थात् जो द्रव्य विरुद्ध गुण धारण करे तिसका नाम भेद स्वभाव है ॥७॥ और गुण गुणीका भेद न होना सत्य गुण वा नित्य गुणयुक्त रहना तिसका नाम अभेद स्वभाव है ॥८॥ जिसकी भविष्यत कालमें स्वरूपाकार होनेकी शक्ति है, वा सम्यगज्ञान, सम्यगदर्शन, सम्यग् चारित्रद्वारा अपने निज स्वभाव प्रगट करनेकी शक्ति रखता है तिसका नाम भव्य स्वभाव है ॥ ९ ॥ जो तीन कालमें भी अपने निज स्वरूपको प्रगट करनेमें असमर्थ है, अनादि कालसे मिथ्यात्वमें ही मगन

है उसका नाम अभव्य स्वभाव है ॥ १० ॥ जो गुणोंमें ही विराजमान हैं अर्थात् जो निज भावोंद्वारा निज सत्तामें स्थिति करता है उसका नाम परम स्वभाव है ॥ ११ ॥

यह तो ११ प्रकारके सामान्य स्वभाव हैं। विशेष भावों-का अर्थ लिखता हूं। जो चेतना लक्षण करके युक्त है सुखदुःख-का अनुभव करता है, ज्ञाता है, सो चेतन स्वभाव है ॥ १ ॥ जिसमें उक्त शक्तियें नहीं हैं शून्य रूप है उसका नाम अचेतन स्वभाव है ॥ २ ॥ और जिसमें रूप रस गंध स्पर्श है उसका ही नाम मूर्तिमान् है, क्योंकि मूर्तिमान् पदार्थ रूपादिकरके युक्त हो-ता है ॥ ३ ॥ जिसमें रूपरसगंधस्पर्श न होवे उसका नाम अमू-र्तिमान् है जैसे जीव ॥ ४ ॥ जैसे परमाणु पुद्गल आकाशादिकके एक प्रदेशमें ठहरता है सो एक प्रदेश स्वभाव है अर्थात् स्कंध देश प्रदेश परमाणु पुद्गल इस प्रकारसे पुद्गलास्तिकायके चार भेद किए हैं ॥ ५ ॥ जो धर्मास्ति आदिकाय हैं वह अनेक प्रदेशी कही जाती है तिनका नाम अनेक प्रदेशी स्वभाव है ॥ ६ ॥ जो रूपसे रूपान्तर हो जावे जैसे पुद्गल द्रव्यके भेद है उसका नाम विभाव स्वभाव है ॥ ७ ॥

और जो अपने अनादि कालसे शुद्ध स्वभावमें पदार्थ

ठहरे हुए हैं जैसे षट् द्रव्य क्योंकि कोई भी द्रव्य अपने स्वभा-
वको नहीं छोडता है और नाहीं किसीको अपना गुण देता है।
अपने गुणों अपेक्षा वह शुद्ध स्वभाववाले है तथा जैसे सिद्ध॥८॥
जो शुद्ध स्वभावमें न रहे पर गुण अपेक्षा सो अशुद्ध स्वभाव है
जैसे कर्मयुक्त जीव ॥ ९ ॥ उपचरित स्वभावके दो भेद हैं।
जैसे जीवको मूर्त्तिमान् कहना सो कर्मोंकी अपेक्षा करके उपच-
रित स्वभावके मतसे जीवको मूर्तिमान् कह सक्ते हैं अपितु जीव
अमूर्त्तिमान् पदार्थ है क्योंकि शरीरका धारण करना कर्मोंसे
सो शरीरधारी मूर्त्तिमान् अवश्य होता है तथा जीवको जड़-
बुद्धि युक्त कहना सो भी कर्मोंकी अपेक्षा है, इसका नाम
उपचरित स्वभाव है ॥ द्वितीय। सिद्धोंको सर्वदर्शी मानना वा
सर्वज्ञ अनंत शक्ति युक्त कहना सो निज गुणापेक्षा कर्मोंसे रहित
होनेके कारणसे है यह भी उपचरित स्वभाव ही है ॥ १०॥
इस प्रकार अनेकान्त मतमें परस्परापेक्षा २१ स्वभाव हुए ॥
उक्त स्वभावोंमेंसे जीव पुद्गलके द्रव्यार्थिक नयापेक्षा और पर्याया-
र्थिक नयापेक्षा २१ स्वभाव हैं जैसेकि—चेतन स्वभाव १ मूर्त्त
स्वभाव २ विभाव स्वभाव ३ एक प्रदेश स्वभाव ४ अशुद्ध
स्वभाव ५ इन पांचोंके विना धर्मादि तीन द्रव्योंके षोडश स्व-

भाव हैं। और वहु प्रदेश विना कालके १५ स्वभाव हैं, सो यह सर्व स्वभाव वा द्रव्योंका वर्णन प्रमाण द्वारा साधित है ॥

प्रश्न–जैन मतमें प्रमाण कितने माने हैं ?

उत्तर–चार ॥

पूर्वपक्षः—सूत्रोक्त प्रमाण सह चार प्रमाणोंका स्वरूप दिखलाइए ॥

उत्तरपक्षः–हे भव्य इसका स्वरूप द्वितीय सर्गमें सूत्रपाठयुक्त लिखता हूं सो पढिए ॥

प्रथम सर्ग समाप्त.

॥ द्वितीय सर्गः ॥

॥ अथ प्रमाण विवर्ण ॥

मूलसूत्रम् ॥ सेकिंतं जीव गुणप्पमाणे २ तिविहे पण्णते तं. नाणगुणप्पमाणे दंसणगुणप्पमाणे चरित्तगुणप्पमाणे सेकिंतं नाणगुणप्पमाणे २ चउविहे पं.तं. पच्चक्खे अणुमाणे उवमे आगमे॥

भावार्थः—श्री गौतमप्रभुजी श्री भगवान्से प्रश्न करते हैं कि हे भगवन् वह जीव गुण प्रमाण कौनसा है ? क्योंकि प्रमाण उसे कहते हैं जिसके द्वारा वस्तुके स्वरूपको जाना जाये । तब श्री भगवान् उत्तर देते है कि हे गौतम ! जीव गुणप्रमाण तीन प्रकारसे कथन किया गया है जैसे कि—ज्ञान गुण प्रमाण १ दर्शन गुण प्रमाण २ चारित्र गुण प्रमाण ३॥ फिर श्री गौतमजीने प्रश्न किया कि हे भगवन् ज्ञान गुण प्रमाण कितने प्रकारसे वर्णन किया गया है ? भगवान्ने फिर उत्तर दिया कि—हे गौतम !ज्ञान गुण प्रमाण चार प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसे

कि—प्रत्यक्ष प्रमाण १ अनुमान प्रमाण २ उपमान प्रमाण ३ आगम प्रमाण (शास्त्र प्रमाण) ४ ॥

मूल॥ सेकिंतं पच्चक्खे २ दुविहे पं. तं. इंदिय पच्चक्खे नोइंदिय पच्चक्खे सेकिंतं इंदिय पच्चक्खे २ पंचविहे पं. तं. सोइंदिये पच्चक्खे चक्खुइंदिय पच्चक्खे घाणिंदिय पच्चक्खे जिब्भिंदिय पच्चक्खे फासिंदिय पच्चक्खे सेतं इंदिय पच्चक्खे ॥

भावार्थः—हे भगवन् प्रत्यक्ष प्रमाण कितने प्रकारसे वर्णन किया है ? तब श्री भगवान्ने उत्तर दिया कि—हे गौतम ! पंच प्रकारसे कहा गया है जैसे कि श्रोतेंद्रिय प्रत्यक्ष १ चक्षुरिंद्रिय प्रत्यक्ष २ घ्राणेंद्रिय प्रत्यक्ष ३ जिह्वाइंद्रिय प्रत्यक्ष ४ स्पर्शइंद्रिय प्रत्यक्ष ५ ॥ यह इंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान है, किन्तु निश्चय नयके मतमें यह परोक्ष ज्ञान हैं अपितु व्यवहारनयके मतसे यह इंद्रिय जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष माने हैं जैसे कि—नयचक्रमें लिखा है कि—

सम्यग् ज्ञानं प्रमाणम् । तद्द्विधा प्रत्यक्षेतर भेदात् । अवधि मनःपर्यायवेकदेश प्रत्यक्षौ केवलं सकल प्रत्यक्षं । मतिश्रुति परोक्षे इति वचनात् ॥

इसमें यह कथन है कि–सम्यगज्ञान प्रमाणभूत है किन्तु सम्यगज्ञान द्वि प्रकारसे है, प्रत्यक्ष और इतर । अपितु अवधि मनःपर्यवज्ञान यह देश प्रत्यक्ष हैं और केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है, किन्तु मतिश्रुत परोक्ष ज्ञान हैं ।

इसी प्रकार श्री नंदीजी सूत्रमें भी कथन है कि मतिश्रुति परोक्ष ज्ञान हैं और अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान केवलज्ञान यह प्रत्यक्षज्ञानहै किन्तु व्यवहारनयके मतमे इंन्द्रिय जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है॥

प्रश्नः–नोइंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान कौनसा है ?

उत्तरः–नोइंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञानका स्वरूप लिखता हूं, पढ़िये

मूल ॥ सेकिंतं नोइंदिय पच्चक्खे २ तिविहे पं. तं. उहिनाण पच्चक्खे मणपज्जवनाण पच्चक्खे केवलनाण पच्चक्खे सेतं नोइंदिय पच्चक्खे ॥

भाषार्थः–हे भगवन् ! नोइंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान कौनसा है ? भगवान् कहते हैं कि–हे गौतम ! नोइंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसे कि अवधिज्ञान, मनःपर्यव ज्ञान, केवलज्ञान । यह तीन ही ज्ञान नोइंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान हैं, क्योंकि यह तीन ही ज्ञान इंद्रियजन्य पदार्थोंके आश्रित नहीं हैं, पितु अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान यह दोनों देशप्रत्यक्ष हैं और

केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है ॥ अवधि ज्ञानके षट्भेद हैं जैसेकि अनुग्रामिक १ (साथही रहनेवाला), अनानुग्रामिक २ (साथ न रहनेवाला), वर्द्धमान३ (वृद्धि होनेवाला),हायमान ४ (हीन होनेवाला), प्रतिपातिक ५(गिरनेवाला),अप्रतिपातिक६ (न गिरनेवाला); और मनःपर्यवज्ञानके दो भेद हैं जैसे कि--ऋजुमति १ और विपुलमति २ । केवलज्ञानका एक ही भेद है क्योंकि यह सकल प्रत्यक्ष है । इसी वास्ते इस ज्ञानवालेको सर्वज्ञ वा सर्वदर्शी कहते हैं । इनका पूर्ण विवर्ण श्री नंदीजी सूत्रसें देखो ॥ यह प्रत्यक्ष प्रमाणके भेद हुए अव अनुमान प्रमाणका स्वरूप लिखता हूं ॥

मूल ॥ सेकिंतं अणुमाणे २ तिविहे पं. तं. पुव्ववं सेसवं दिठ्ठि साहम्मवं सेकिंतं पुव्ववं २ मायापुत्तं जहाणठ्ठं जुवाणं पुणरागयंकाइं पच्चभि जाणिज्जा पुव्वलिंगेण केणइ तंरक्खइयणवा वण्णेणवा मसेणवा लंछणेणवा तिलएणवा सेतं पुव्ववं ॥

भाषार्थः—शिष्यने गुरुसे प्रश्न कियाकि हे भगवन् अनु-

मान प्रमाण कितने प्रकारसे प्रतिपादन किया गया है ? तब गुरु पृच्छकको उत्तर देते हैं कि हे धर्मप्रिय ! अनुमान प्रमाण तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसेकि पूर्ववत् १ शेषवत् २ दृष्टिसाधर्म्यवत् ३ ॥ शिष्यने पुनः प्रश्न किया कि हे भगवन् पूर्ववत्का क्या लक्षण है ? तब गुरु इस प्रकारसे उत्तर देते हैं कि हे शिष्य जैसे किसी माताका पुत्र बालावस्थासे ही प्रदेशको चला गया किन्तु जुवान होकर वह बालक फिर उसी नगरमें आ गया तब उसकी माता पूर्व लक्षणो करके जोकि उसको निश्चित हो रहे है उन्हीं लक्षणों करके जैसेकि जन्म समय पुत्रके शरीरमें क्षति किसी प्रकारसे हो गई हो उस करके अथवा वर्ण करके मषादि करके वा स्वस्तिकादि लक्षणो करके तथा शरीरमें पूर्व दृष्ट तिलादि करके अपने पुत्र होनेका निश्चय करती है । जबकि उसका पूर्व लक्षणों करके निश्चय हो गया तब वे अपने पुत्रसे प्रेम करती है सो यह पूर्ववत् अनुमान प्रमाण है । पुनः शेषवत् इस प्रकारसे है जैसेकि—

मूल ॥ सेकिंतं सेसवं २ पंचविहे पं. तं. कज्जेणं कारणेणं गुणेणं अवयवेणं आसयणं सेकिंतं कज्जेणं २ संक्खसद्देणं भेरितालियणं वसभ

ढकिएणं मोरंकंकाइएणं हयहसिएणं हत्थिगुल-गुलाइएणं रहंघणघणाइएण सेतं कज्जेणं ॥

भावार्थः—श्री गौतम प्रभुजी श्री भगवान्से पूछते हैं कि, हे भगवन्! वे कौनसा है शेषवत् अनुमान प्रमाण। तब भगवान् प्रतिपादन करते हैं कि हे गौतम! शेषवत् अनुमान प्रमाण पंच प्रकारसे कहा गया है जैसेकि कार्य करके १ कारण करके २ गुण करके ३ अवयव करके ४ आश्रय करके ५॥ फिर गौतमजीने प्रश्न कियाकि हे भगवन्! वे कौनसा है शेषवत् अनुमान प्रमाण जो कार्य करके जाना जाता है? तब भगवान्ने उत्तर दिया कि हे गौतम! जैसे शंख (संख) शब्द करके जाना जाता है अर्थात् शंखके शब्द को सुनकर संखका ज्ञान हो जाता है कि यह शब्द शंखका हो रहा है, इसी प्रकार भेरी ताडने करके, वृषभ शब्द करके, मयूर (मोर) कंकारव करके, अश्व शब्द करके अर्थात् हिंसन करके, हस्ति गुलगुलाट करके, रथ घण घण करके, यह कार्याधीन अनुमान प्रमाण है, क्योंकि उक्त वस्तुयें कार्य होने पर सिद्ध होती हैं अर्थात् कार्य होने पर उनका अनुमान प्रमाण द्वारा यथार्थ ज्ञान हो जाता है॥

मान प्रमाण कितने प्रकारसे प्रतिपादन किया गया हैं ? तत्र गुरु पृछकको उत्तर देते हैं कि हे धर्मप्रिय ! अनुमान प्रमाण तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसेकि पूर्ववत् १ शेषवत् २ दृष्टिसाधर्म्मीवत् ३ ॥ शिष्यने पुनः प्रश्न किया कि हे भगवन् पूर्ववत्का क्या लक्षण है ? तब गुरु इस प्रकारसे उत्तर देते हैं कि हे शिष्य जैसे किसी माताका पुत्र बालावस्थासे ही प्रदेशको चला गया किन्तु जुवान होकर वह बालक फिर उसी नगरमें आ गया तब उसकी माता पूर्व लक्षणों करके जोकि उसको निश्चित हो रहे है उन्हीं लक्षणों करके जैसेकि जन्म समय पुत्रके शरीरमें क्षति किसी प्रकारसे हो गई हो उस करके अथवा वर्ण करके मषादि करके वा स्वस्तिकादि लक्षणों करके तथा शरीरमें पूर्व दृष्ट तिलादि करके अपने पुत्र होनेका निश्चय करती है । जबकि उसका पूर्व लक्षणों करके निश्चय हो गया तब वे अपने पुत्रसे प्रेम करती है सो यह पूर्ववत् अनुमान प्रमाण है । पुनः शेषवत् इस प्रकारसे है जैसेकि—

मूल ॥ सेकिंतं सेसवं २ पंचविहे पं. तं. कज्जेणं कारणेणं गुणेणं अवयवेणं आसयणं से- ंकज्जेणं २ संक्खसद्देणं भेरितालियणं वसन्न

ढक्किएणं मोरकंकाइएणं हयहसिएणं हत्थिगुल-गुलाइएणं रहघणघणाइएण सेतं कज्जेणं ॥

भावार्थः—श्री गौतम प्रभुजी श्री भगवान्से पूछते हैं कि, हे भगवन्! वे कौनसा है शेषवत् अनुमान प्रमाण। तब भगवान् प्रतिपादन करते हैं कि हे गौतम! शेषवत् अनुमान प्रमाण पंच प्रकारसे कहा गया है जैसेकि कार्य करके १ कारण करके २ गुण करके ३ अवयव करके ४ आश्रय करके ५ ॥ फिर गौतमजीने प्रश्न कियाकि हे भगवन्! वे कौनसा है शेषवत् अनुमान प्रमाण जो कार्य करके जाना जाता है? तब भगवान्ने उत्तर दिया कि हे गौतम! जैसे शंख (संख) शब्द करके जाना जाता है अर्थात् शंखके शब्द को सुनकर संखका ज्ञान हो जाता है कि यह शब्द शंखका हो रहा है, इसी प्रकार भेरी ताडने करके, वृषभ शब्द करके, मयूर (मोर) कंकारव करके, अश्व शब्द करके अर्थात् हिंषन करके, हस्ति गुलगुलाट करके, रथ घण घण करके, यह कार्याधीन अनुमान प्रमाण है, क्योंकि उक्त वस्तुये कार्य होने पर सिद्ध होती हैं अर्थात् कार्य होने पर उनका अनुमान प्रमाण द्वारा यथार्थ ज्ञान हो जाता है ॥

मान प्रमाण कितने प्रकारसे प्रतिपादन किया गया हैं? तब गुरु पृछकको उत्तर देते हैं कि हे धर्मप्रिय ! अनुमान प्रमाण तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसेकि पूर्ववत् १ शेषवत् २ दृष्टिसाधर्म्मीवत् ३ ॥ शिष्यने पुनः प्रश्न किया कि हे भगवन् पूर्ववत्का क्या लक्षण है? तब गुरु इस प्रकारसे उत्तर देते हैं कि हे शिष्य जैसे किसी माताका पुत्र बालावस्थासे ही प्रदेशको चला गया किन्तु जुवान होकर वह बालक फिर उसी नगरमें आ गया तब उसकी माता पूर्व लक्षणों करके जोकि उसको निश्चित हो रहे है उन्हीं लक्षणों करके जैसेकि जन्म समय पुत्रके शरीरमें क्षति किसी प्रकारसे हो गई हो उस करके अथवा वर्ण करके मषादि करके वा स्वास्तिकादि लक्षणों करके तथा शरीरमें पूर्व दृष्ट तिलादि करके अपने पुत्र होनेका निश्चय करती है। जबकि उसका पूर्व लक्षणों करके निश्चय हो गया तब वे अपने पुत्रसे प्रेम करती है सो यह पूर्ववत् अनुमान प्रमाण है। पुनः शेषवत् इस प्रकारसे है जैसेकि—

मूल ॥ सेकिंतं सेसवं २ पंचविहे पं. तं. कज्जेणं कारणेणं गुणेणं अवयवेणं आसयणं सेकिंतं कज्जेणं २ संखसदेणं भेरितालियणं वसभ

ढकिएणं मोरंकंकाइएणं हयहसिएणं हत्थिगुल-गुलाइएणं रहंघणघणाइएण सेतं कज्जेणं ॥

भाषार्थः—श्री गौतम प्रभुजी श्री भगवान्से पूछते हैं कि, हे भगवन्! वे कौनसा है शेषवत् अनुमान प्रमाण! तब भगवान् प्रतिपादन करते हैं कि हे गौतम! शेषवत् अनुमान प्रमाण पंच प्रकारसे कहा गया है जैसेकि कार्य करके १ कारण करके २ गुण करके ३ अवयव करके ४ आश्रय करके ५ ॥ फिर गौतमजीने प्रश्न कियाकि हे भगवन्! वे कौनसा है शेषवत् अनुमान प्रमाण जो कार्य करके जाना जाता है? तब भगवान्ने उत्तर दिया कि हे गौतम! जैसे शंख (संख) शब्द करके जाना जाता है अर्थात् शंखके शब्द को सुनकर संखका ज्ञान हो जाता है कि यह शब्द शंखका हो रहा है, इसी प्रकार भेरी ताडने करके, वृषभ शब्द करके, मयूर (मोर) कंकारव करके, अश्व शब्द करके अर्थात् हिंषन करके, हस्ति गुलगुलाट करके, रथ घण घण करके, यह कार्याधीन अनुमान प्रमाण है, क्योंकि उक्त वस्तुयें कार्य होने पर सिद्ध होती हैं अर्थात् कार्य होने पर उनका अनुमान प्रमाण द्वारा यथार्थ ज्ञान हो जाता है ॥

अथ कारण अनुमान प्रमाणका वर्णन करते हैं:—

मूल ॥ सेकिंतं कारणेणं २ तंतवो पडस्स कारणं नपडो तंतुकारणं एवं वीरणा कडस्स कारणं नकडो वीरणा कारणं मयपिंडो घडस्स कारणं नघडो मयपिंडस्स कारणं सेतं कारणेणं ॥

भावार्थः—पूर्वपक्षः—कारणका क्या लक्षण है ? उत्तर पक्षः—जैसे तंतु पटके कारण है किन्तु पट तंतुओंका कारण नहीहै तथा जैसे तृण पल्यंकादिका कारण है अपितु पल्यंक तृणादिका कारण नही है तथा मृत्तपिंड घटका कारण है न तु घट मृत्तपिंडका कारण, इसका नाम कारण अनुमान प्रमाण है, क्योंकि इस भेदके द्वारा कार्य कारणका पूर्ण ज्ञान हो जाता है और कारण के सदृश्य ही कार्य रहता है। जैसे मृत्तिकासे घट अपितु वह घट सद्रूप मृत्तिकाही है न तु पटमय; इसी प्रकार अन्य भी कारण कार्य जान लेने ॥

अथ गुण अनुमान प्रमाणका वर्णन किया जाता है—

मूल ॥ सेकिंतं गुणेणं २। सुवन्नं निक्कसेणं पुप्फं गंधेणं लवणं रसेणं मइरंआसाइणं वत्थंफा-

सेणं सेतं गुणेणं ॥

भाषार्थः—प्रश्नः—गुण अनुमान प्रमाणका क्या लक्षण है ? उत्तरः—जैसे सुवर्ण पाषाणोपरि संघर्षण करनेंसे शुद्ध प्रतीत होता है अर्थात् सुवर्णकी परीक्षा कसोटीपर होती है, पुष्प गंध करके देखे जाते हैं, लवण रस करके वा मदिरा आस्वादन करके, वस्त्र स्पर्श करके निर्णय किए जाते हैं, तिसका नाम गुण अनुमान प्रमाण है, क्योंकि गुणके निर्णय होनेसे पदार्थोंके शुद्ध वा अशुद्धका शीघ्र ही ज्ञान हो जाता है ॥

अथ अवयव अनुमान प्रमाणके स्वरूपको लिखता हूं—

मूल ॥ सेकिंतं अवयवेणं २ महिसं सिंगेणं कुक्कुडसिहायणं हत्थिविसाणेणं वाराहदाढाणं मोरंपिछेणं आसंक्खुरेणं वग्घंनहेणं चमरिवालग्गेणं वानरंनंगूलेणं दुप्पयमणुस्समादि चउप्पयंगवमादि बहुप्पयंगोमियामादि सीहंकेसरेणं वसहंकुकुहेणं महिलंवलयबाहाहिं परियारबंधेणं नडंजाणेज्जा महिलियं निवसणेणं सित्थेणं दोणपागं कविंचएकाएगाहाए सेतं अवयवेणं॥१॥

भाषार्थः–(प्रश्नः) अवयव अनुमान प्रमाणके उदाहरण कौन २ से है अर्थात् जिन उदाहरणोंके द्वारा अवयव अनुमान प्रमाणका बोध हो, क्योंकि अवयव अनुमान प्रमाण उसे कहते हैं जिस पदार्थके एक अवयव मात्रके देखनेसे पूर्ण उस पदार्थके स्वरूपका ज्ञान हो जाये ॥ (उत्तरः) जैसे महिष शृंग करके, कुर्कुट शिखा करके, हस्ति दांतों करके, शूकर दाढ़ा करके, अश्व खुरकरके, मयूर पूछ करके, वाघ नख करके, चमरी गायवालों करके, वानर लांगुल (पूछ) करके, मनुष्य द्विपद करके, गवादि पशु चार पद करके, कानखरजुरादि बहुपदकरके, सिंह केसरकरके, वृषभ स्कंध करके, स्त्री भुजाओंके आभूषण करके शुभट राजाचिन्हादि करके तथा स्त्री वेष करके, एक सित्थ मात्रके देखनेसें हांडीके तंडुलादिकी परीक्षा हो जाती है, कविकी परीक्षा एक गाथाके उच्चारणसे हो जाती है, इसका नाम, अवयव अनुमान प्रमाण है, क्योंकि एक अंश करके बोध हुआ सर्व अंशोका बोध हो जाता है जेसेकि, आगममें कहा है कि (जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ) जो एकको जानता है वह सर्वको जानता है जो सर्वको जानता है वह एकको भी जानता है ॥

अथ आश्रय अनुमान प्रमाण स्वरूप इस प्रकारसे [illegible] किया जाता है जैसेकि—

मूल ॥ सेकिंतं आसयणं २ अग्गि धूमेणं सलिलं बलागेणं वुट्ठि अब्भ विकारेणं कुल पुत्तसील समायारेणं । सेतं आसयणं सेतं सेसवं ॥

भाषार्थः—श्री गौतमजीने पुनः प्रश्न किया कि हे भगवन्! आश्रय अनुमान प्रमाण किस प्रकारसे वर्णन किया गया है? भगवान् उत्तर देते है कि हे गौतम! आश्रय अनुमान प्रमाण इस प्रकारसे कथन किया गया है कि जैसे अग्नि धुम करके जाना जाता है, जल बगलों करके निश्चय किया जाता है, वृष्टि बादलोंके विकारसे निर्णय की जाती है, कुल पुत्र शील समाचरणसे जाना जाता है, इसका नाम आश्रय अनुमान प्रमाण है और इसकेही द्वारा साध्य, सिद्ध, पक्ष, इत्यादि सिद्ध होते हैं। सो यह शेषवत् अनुमान प्रमाण पूर्ण हुआ ॥

अब दृष्टि साधर्म्यता का वर्णन किया जाता है—

मूल ॥ सेकिंतं दिट्ठिसाहम्मवं २ दुविहे पं. तं. सामान्नदिट्ठंच विसेसदिट्ठंच सेकिंतं सामान्नदिट्ठं २ जहा एगो पुरिसो तहा वन्

जहा बहवे पुरिसा तहा एगे पुरिसे जहा एगो करिसावणो तहा बहवे करिसावणो जहा बहवे करिसावणो तहा एगे करिसावणो सेतं सामान्नदिठं ॥

भावार्थः—(प्रश्नः) दृष्ट साधर्म्यता किस प्रकारसे वर्णित है ?(उत्तर) दृष्ट साधर्म्यता द्वि प्रकारसे वर्णन की गइ है जैसेकि-सामान्यदृष्ट १ विशेषदृष्ट २॥ (पूर्वपक्ष) सामान्य दृष्टके क्या २ लक्षण हैं ?(उत्तरपक्षः) जैसे किसीने एक पुरुषको देखा तो उसने अनुमान कियाकि अन्य पुरुष भी इसी प्रकारके होते हैं तथा जैसे किसीने पूर्वीय पुरुषके कृष्ण वर्णको देखकर अनुमान किया अन्य भी पूर्वीय प्रायः इसी वर्णके होंगे। इसी प्रकार युरोपमें गौर वर्णताका अनुमान करना ॥ ऐसे ही सुवर्ण मुद्रादिका विचार करना क्योंकि जैसे एक मुद्रा होती है प्रायः अन्यभी उसी प्रकारकी होंगी, इस अनुमानका नाम सामान्य दृष्ट है ॥ प्रायः शब्द इस लिये ग्रहण है कि आकृतिमें कुछ भिन्नता हो परंतु वास्तवमें भिन्नता न होवे, उसका नाम सामान्य दृष्ट है ॥ अब विशेष दृष्टका लक्षण वर्णन करते हैं ॥

मूल ॥ सेकिंतं विसेसदिठ्ठं २से जहा नामए केइ पुरिस्से बहुणं मज्झेपुवं दिठ्ठं पुरिसं पच्चान्नि जाणेज्जा अयं पुरिसे एवं करिसावणे ॥

भाषार्थः—श्री गौतम प्रभुजी भगवान् से पृच्छा करते हैं कि–हे भगवन् ! विशेष दृष्ट अनुमान प्रमाण किस प्रकारसे है ? भगवान् उत्तर देते हैं कि हे गौतम ! विशेष दृष्ट अनुमान प्रमाण इस प्रकारसे है जैसेकि–किसी पुरुषने किसी अमुक व्यक्ति को किसी अमुक सभामें बैठे हुएको देखा तो मनमें विचार किया कि यह पुरुष मेरे पूर्वदृष्ट है अर्थात् मैंने इसे कहीं पर देखा हुआ है, इस प्रकारसे विचार करते हुएने किसी लक्षणद्वारा निर्णय ही करलिया कि यह वही पुरुष है जिसको मैंने अमुक स्थानोपरि देखा था । इसी प्रकार मुद्राकी भी परीक्षा करली अर्थात् बहुत मुद्राओंमेंसे एक मुद्रा जो उसके पूर्व दृष्ट थी उसको जान लिया उसका ही नाम विशेष दृष्ट अनुमान प्रमाण है ॥ आपितु–

मूल ॥ तंसमासउ तिविहं गहणं भवइ तं. तीयकालग्गहणं पडुप्पणकालग्गहणं अणागयकालग्गहणं ॥

भावार्थः—विशेष दृष्ट अनुमान प्रमाणद्वारा तीन काल ग्रहण होते हैं अर्थात् उक्त प्रमाणद्वारा तीन ही कालकी वार्तोका निर्णय किया जाता है जैसेकि भूत कालकी वार्त्ता १ वर्त्तमान कालकी २ और भविष्यत कालमें होनेवाला भाव, यह तीन कालके भाव भी अनुमान प्रमाणद्वारा सिद्ध हो जाते हैं ॥

मूल ॥ संकिंतं तीयकालग्गहणं २ उत्तिणाइं वणाइं निप्फन्नसव्वसस्संवा मेईणि पुन्नाणि कुंड सर नदि दहसरण तलागाणि पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा सुवुट्ठी आसीसेतं तीयकालग्गहणं ॥

भावार्थ—(पूर्वपक्ष) अनुमान प्रमाणके द्वारा भूतकालके पदार्थोंका बोध कैसे होता है । (उत्तरपक्ष) जैसे उत्पन्न हुए हैं वनोंमें तृणादि, और पूर्ण प्रकारसे निष्पन्न है धान्न, फिर पृथिवीमें भली प्रकारसे सुंदरताको प्राप्त हो रहे हैं और जलसे पूर्ण भरे हुए हैं कुंड, सरोवर, नदी, द्रह, पानीके निज्झरण, सो इस प्रकारसे भरे हुए तड़ागादिको देखकर अनुमान प्रमाणसे कहा जाता है कि इस स्थानोपरि पूर्व सुवृष्टि हूईथी क्योंकि

सुदृष्टिके होनेपर ही यह लक्षण हो सक्ते हैं सो इसका नाम भूत अनुमान प्रमाण है क्योंकि इसके द्वारा भूत पदार्थोंका बोध भली प्रकारसे हो जाता है ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं पडुप्पण्ण कालग्गहणं २ साहु गोयरग्गगयं विच्छड्डिय पउर भत्तपाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा सुभिक्खं वट्टइ सेतं पडुप्पन्न कालग्गहणं ॥

भावार्थः—(प्रश्न) किस प्रकारसे वर्तमान कालके पदार्थोंका अनुमान प्रमाणके द्वारा बोध होता है ? (उत्तर) जैसे कोई साधु गौचरी (भिक्षा) के वास्ते घरोंमें गया तब साधुने घरोंमें प्रचुर अन्नपानीको देखा अपितु इतना ही किन्तु अन्नादि बहुतसा परिष्ठापना करते हुओंको अवलोकन किया तब साधु अनुमान प्रमाणके आश्रय होकर कहने लगाकि जहां पर सुभिक्ष (सुकाल) वर्तता है, सो यह वर्तमानके पदार्थोंका बोध करानेवाला है—अनुमान प्रमाण है ॥

मूल ॥ सेकिंतं अणागय कालग्गहणं २ अब्भस्स निम्मलत्तं कसिणाय गिरिस विज्जुमे ।

थणियंवाउज्झाणं संज्झानिद्धाघरताय वारुणं वामाहिंदंवा अन्नयरं पसत्थ मुप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा सुवुट्ठि न्नविस्सइ सेतं अणागय कालग्गहणं ॥

भाषार्थः-(पूर्वपक्ष) अनुमान प्रमाणके द्वारा अनागत (भविष्यत) कालके पदार्थोंका बोध किस प्रकारसे हो सक्ता है ? (उत्तरपक्ष) जैसे आकाश अत्यन्त निर्मल है, संपूर्ण पर्वत कृष्ण वर्णताको प्राप्त हो रहा है अर्थात् पर्वत रजादिकरके युक्त नही है, और विद्युत् (विजुली) के साथ ही मेघ है अर्थात् यदि वृष्टि होती है तब साथ ही विजुली होती है, वर्षाके अनुकुल ही वायु है, और सन्ध्या स्निग्ध है, वारुणी मंडलके नक्षत्रोंमें बहुत ही सुंदर उत्पात उत्पन्न हुए हैं, क्या चन्द्रादिका योग माहिन्द्र मंडलके नक्षत्रोंके साथ हो रहा है, इसी प्रकार अन्य भी सुंदर उत्पातोंको देखकर और अनुमान प्रमाणके आश्रय होकर कह सक्ते हैं कि सुवृष्टि होनेके चिन्ह दीखते हैं अर्थात् सुवृष्टी होगी ॥ यह भविष्यत कालके पदार्थोंके ज्ञान होनेवाला अनुमाण प्रमाण है क्योंकि इनके द्वारा अनागत कालके पदार्थोंका बोध हो जाता है ॥

मूल ॥ एएसिंविवज्जासेणंति विहंगहणं भ-घइ तं. तीयकालग्गहणं पडुप्पण कालग्गहणं अ-णागय कालग्गहणं सेकिंतं तीयकालग्गहणं णित-एणइं वणाइं अनिप्फणसस्संवा मेइणी सुक्काणिय कुंड सर णदि दह तलागाणि पासित्ता तेणं सा-हिज्जइ जहा कुवुट्ठि आसी सेतं तीयकालग्गहणं॥

भाषार्थः—जो पूर्व तीन कालके पदार्थोंका अनुमान प्रमाणके द्वारा ज्ञान होना लिखा गया है उससे विपरीत भी तीन कालके पदार्थोंका बोध निम्न कथनानुसार हो जाता है। जैसेकि तृणसे रहित वर्ण है, पृथ्वीमें धान्यादि भी उत्पन्न नहीं हुए हैं, और कुंड, सर, नदी, द्रह, तडागादि भी सर्व जलाशय शुष्क हुए दीखते है अर्थात् जलाशय शुके हुए हैं, तब अनुमान प्रमाणके द्वारा निश्चय किया जाता है कि जहापर कुवृष्टी है सुवृष्टी नहीं हैं, क्योंकि यदि सुवृष्टी होती तो यह जलाशय क्यों शुष्क होते सो इसका नाम भूतकाल अनुमान प्रमाण है ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं पडुप्पन्न कालग्गहणं २ सा-

हु गोयरग्गगयं भिक्खं अलभ्भमाणं पासित्ता तेणं साहिज्जाइ जहा दुभिक्खं वट्टइ सेतं पडुप्पन्न कालग्गहणं ॥

भाषार्थः—(पूर्वपक्षः) वर्तमानके पदार्थोंका वोध करानेवाला अनुमान प्रमाणका क्या लक्षण है?(उत्तरपक्ष·)जैसे साधु गोचरीको ग्राम वा नगरादिमें गया तब भिक्षाके न प्राप्त होनेपर वा घरोंमें प्रचुर अन्नादि न होनेपर अनुमान प्रमाणके द्वारा कहा जाता है कि जहांपर दुर्भिक्ष वर्तता है, इसलिये इसका नाम वर्तमान अनुमान प्रमाण ग्रहण है ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं अणागय कालग्गहणं धुमाउ तिदिसाउ संविय मेईणी अप्पडिबद्धा वाया नेरइया खलु कुवुट्ठि मेवं निवेयंति अग्गेयं वा वायव्वं वा अन्नयरं वा अप्पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जाइ कुवुट्ठि न्नविस्सइ सेतं अणागय कालग्गहणं सेत्तं विसेसदिट्ठं सेत्तं दिठि साहम्मवं सेत्तं अनुमाणे ॥

भाषार्थः-(पूर्वपक्षः) अनागत कालके पदार्थोंका बोधजन्य अनुमान प्रमाण किस प्रकारसे वर्णन किया गया है? (उत्तरपक्षः) जैसेकि धूमसे दिशाओं आच्छादित हो रही हैं और रजादि करके मेदनी युक्त है अर्थात् पृथ्वीमें रज बहुत ही हो रही है, पुद्गल परस्पर अप्रतिबद्ध भावको प्राप्त हैं अर्थात् वर्षाके अनुकूल नहीं है, वायु नैरतादि कूणोंमें विद्यमान है और ×आग्निमंडलके नक्षत्र वा व्यायवमंडलके नक्षत्रोंका योग हो रहा है, इसी प्रकार अन्य कोई अप्रशस्त उत्पातको देखकर अनुमान होता कि कुवृष्टि होनेके चिन्ह दीखते हैं अर्थात् कुवृष्टि होवेगी॥ यही अनागतकाल ग्रहण अनुमान प्रमाण है; इसीके द्वारा भविष्यत कालके पदार्थोंका

× अग्निमंडलके नक्षत्रोंके निम्नलिखित नाम है ॥ कृतिका १ विशाखा २ पूर्वभाद्रवपद ३ मघा ४ पुष्य ५ पूर्वाफाल्गुणी ६ भरणी ७॥ अथ व्यायव मंडलके नक्षत्र लिखते हैं । जैसेकि-चित्रा १ हस्त २ स्वाति ३ मृगाशिर ४ पुनर्वसु ५ उतराफाल्गुणी ६ अश्वनी ७॥ अपितु वारुणी मंडलके नक्षत्र यह हैं-अश्लेषा १ मूल २ पूर्वाषाढ़ा ३ रेवती ४ शताभिशा ५ आर्द्रा ६ उत्तराभाद्रवपद ७॥ अथ माहेन्द्र मंडलके निम्न हैं-ज्येष्टा १ रोहणी २ अनुराधा ३ श्रवण ४ धनेष्टा ५ उतराषाढ़ा ६ आभिजित ७॥

हु गोयरग्गगयं भिक्खं अलभ्भमाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा दुभिक्खं वट्टइ सेतं पडुप्पन्न कालग्गहणं ॥

भाषार्थः—(पूर्वपक्षः) वर्तमानके पदार्थोंका बोध करानेवाला अनुमान प्रमाणका क्या लक्षण है?(उत्तरपक्षः)जैसे साधु गोचरीको ग्राम वा नगरादिमें गया तब भिक्षाके न प्राप्त होनेपर वा घरोंमें प्रचुर अन्नादि न होनेपर अनुमान प्रमाणके द्वारा कहा जाता है कि जहांपर दुर्भिक्ष वर्तता है, इसलिये इसका नाम वर्तमान अनुमान प्रमाण ग्रहण है ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं अणागय कालग्गहणं धुमाउ तिदिसाउ संविय मेईणी अप्पडिबद्धा वाया नेरइया खलु कुवुट्ठि मेवं निवेयंति अग्गेयं वा वायव्वं वा अन्नयरं वा अप्पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ कुवुट्ठि नविस्सइ सेतं अणागय कालग्गहणं सेत्तं विसेसदिट्ठं सेत्तं दिट्ठि साहम्मवं सेत्तं अनुमाणे ॥

ाषार्थः-(पूर्वपक्षः) अनागत कालके पदार्थोंका बोधजन्य
त प्रमाण किस प्रकारसे वर्णन किया गया है? (उत्तरपक्षः)
धूमसे दिशाओं आच्छादित हो रही हैं और रजादि
मेदनी युक्त है अर्थात् पृथ्वीमें रज बहुत ही हो रही हैं, पुद्गल
: अप्रतिबद्ध भावको प्राप्त हैं अर्थात् वर्षाके अनुकूल नही
ग्रु नैरतादि कूणोंमें विद्यमान है और ×आग्निमंडलके नक्षत्र
ायवमंडलके नक्षत्रोंका योग हो रहा है, इसी प्रकार अन्य
अप्रशस्त उत्पातको देखकर अनुमान होता कि कुवृष्टि
चिन्ह दीखते हैं अर्थात् कुवृष्टि होवेगी॥ यही अनागतकाल
अनुमान प्रमाण है; इसीके द्वारा भविष्यत कालके पदार्थोंका

× अग्निमंडलके नक्षत्रोंके निम्नलिखित नाम है ॥ कृतिका
ाशाखा २ पूर्वभाद्रवपद ३ मघा ४ पुष्य ५ पूर्वाफाल्गुणी ६
७॥ अथ व्यायव मंडलके नक्षत्र लिखते हैं । जैसेकि—चित्रा
त २ स्वाति ३ मृगशिर ४ पुनर्वसु ५ उतराफाल्गुणी ६
ो ७॥ अपितु वारुणी मंडलके नक्षत्र यह हैं—अश्लेषा १ मूल
ाषाड़ा ३ रेवती ४ शतभिशा ५ आर्द्रा ६ उत्तराभाद्रवपद
अथ माहेन्द्र मंडलके निम्न है—ज्येष्टा १ रोहणी २ अनुराधा ३
४ धनेष्टा ५ उतराषाड़ा ६ आभिजित ७॥

बोध हो सक्ता है । सो यह विशेष दृष्ट है और यही दृष्टि साधर्म्यत्वं अनुमान प्रमाण है सो यह अनुमान प्रमाणका स्वरूप संपूर्ण हुआ ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं उवमे २ दुविहे पं. तं. साहम्मोवणीयए वेहम्मोवणीयए सोकिंत्तं साहम्मोवणीयए तिविहे पं. तं. किंचिसाहम्मोवणीए पायसाहम्मोवणीए सव्वसाहम्मोवणीए ॥

भाषार्थः—श्री गौतमप्रभुजी भगवान्से प्रश्न करते हैं कि हे भगवन् उपमान प्रमाण किस प्रकारसे वर्णन किया गया है? भगवान् कहते हैं कि हे गौतम! उपमान प्रमाण द्वि प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसेकि साधर्म्योपनीत १ वैधर्म्योपनीत २॥ गौतमजीने पुनः पूर्वपक्ष कियाकि हे भगवन् साधर्म्योपनीत कितने प्रकारसे कथन किया गया है? भगवान्ने फिर उत्तर दियाकि हे गौतम! साधर्म्योपनीत अनुमान प्रमाण तीन प्रकारसे कथन किया गया है जैसेकि किञ्चित् साधर्म्योपनीत अनुमान प्रमाण १ प्रायः साधर्म्योपनीत अनुमान प्रमाण २ सर्व साधर्म्योपनीत अनुमान ३ ॥ इसी प्रकार गौतमजीने पूर्वपक्ष फिर किया ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं किंचि साहम्मोवणीए २ जहा मंदिरो तहा सरिसवो जहा सरिसवो तहा मंदिरो एवं समुद्दो २ गोप्पयं आइच्चोखज्जोत्तो चंदोकुमुद्दो सेत्त किंचि साहम्मे ॥

भाषार्थः—(पूर्वपक्षः) किंचित् साधर्म्योपनीत किस प्रकार प्रतिपादन किया है ? (उत्तरपक्षः) जैसे मेरुपर्वत वृत्त (गोळ) है इसी प्रकार सरसवका बीज भी गोल है, सो यह किञ्चित् मात्र साधर्म्यता है क्योंकि वृत्ताकारमें दोनोंकी साम्यता है परंतु अन्य प्रकारसे नही है। ऐसे ही अन्य भी उदाहरण जान लेने-जैसेकि समुद्र गोपाद, आदित्य (सूर्य) और खद्योत, चंद्र और कुमुद, सो यह किंचित् साधर्म्यता है ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं पाय साहम्मोवणीय २ जहा गो तहा गवउ जहा गवउ तहा गो सेत्तं पाय-पाय साहम्मे ॥

भाषार्थः—(प्रश्नः) वह कौनसा है प्रायः साधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण ? (उत्तरः) जैसे गो है वैसी ही आकृतियुक्त

नीलगाय है, केवल सास्नादि वर्जित है किन्तु शेष अवयव प्रायः साधर्म्यतामें तुल्य हैं; इसी वास्ते इसका नाम प्रायः साधर्म्योपनीत अनुमान प्रमाण है ॥ अथ सर्व साधर्म्योपनीतका वर्णन किया जाता है ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं सव्व साहम्मोवमं नत्थि तहा वितस्स तेणेव उवमं कीरइ तंजहा अरिहंतेहिं अरिहंत सरिसं कयं एवं चक्कवट्टिणा चक्कवट्टी सरिसं कयं बलदेवेणं बलदेव सरिसं कयं वासुदेवेणं वासुदेव सरिसं कयं साहुणा साहु सरिसं कयं सेत्तं सव्व साहम्मे सेत्तं सव्व साहम्मोवणीय ॥

भाषार्थः–(प्रश्नः) वह कौनसा है सर्व साधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण ? (उत्तरः) सर्व साधर्म्योपनीत उपमान प्रमाणकी कोई भी उपमा नही होती है परंतु तथापि उदाहरण मात्र उपमा करके दिखलाते हैं । जैसेकि अरिहंत (अर्हन)ने अरिहंतके सामान ही कृत किया है इसी प्रकार चक्रवर्तीने चक्रवर्त्तीके तुल्य ही

कार्य कीया है, बलदेवने बलदेवके सामान, वासुदेवने वासुदेवके सामान कृत किये हैं तथा साधु साधुके सामान व्रतादिको पालन करता है, यह सर्व साधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण है ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं वेहम्मोवणीय २ तिविहे पं. तं. किंचिवेहम्मे पायवेहम्मे सव्ववेहम्मे सेकिंत्तं किंचिवेहम्मे जहा सामलेरो न तहा वाहुलेरो जहा वाहुलेरो न तहा सामलेरो सेत्तं किंचिवेहम्मे ॥

भावार्थः-(प्रश्नः) वह कौनसा है वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण ? (उत्तरः) वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसेकि-किंचित् वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण १ प्रायः वैधर्म्यत्व २ सर्व वैधर्म्यत्व ३ ॥ (पूर्वपक्षः) किंचित् वैधर्म्य उपमान प्रमाणका क्या उदाहरण है? (उतरपक्षः) जैसे श्याम गोका अपत्य है वैसी ही श्वेत गोका अपत्य नहीं है अर्थात् जैसे श्याम वर्णकी गोका वत्स है वैसे ही श्वेत गोका वत्स नहीं है, क्योंकि वर्णमें भिन्नता है इसका ही नाम किंचित् वैधर्म्यत्व उपमान है ॥ सर्व अवयवादिमें एकत्वता सिद्ध होनेपर केवल वर्णकी विभिन्नतामें किंचित् वैधर्म्यत्व उपमान प्रमाण सिद्ध हो गया ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं पायवेहम्मे २ जहा वायसो न तहा पायसो[1] जहा पायसो न तहा वायसो सेत्तं पाय वेहम्मे ॥

भाषार्थः–(पूर्वपक्षः) प्रायः वैधर्म्यताका भी उदाहरण दिखलाइये। (उत्तरपक्षः) जैसे काग है तैसे ही हंस नहीं है और जैसे हंस है वैसे काग नहीं है, क्योंकि काक–हंसकी पक्षी होने-पर ही साम्यता है किन्तु गुण कर्म स्वभाव एक नहीं है, इसीलिये प्रायः वैधर्म्यत्व उपमान प्रमाण सिद्ध हुआ है ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं सव्ववेहम्मे २ नत्थि तस्स उवमं तहावितस्स तेणेव उवमं कीरइ तं. नीचेणं नीचसरिसं कयं दासेणं दास सरिसं कयं का-गेणं कागसरिसं कयं साणेणं साण सरिसं कयं पाणेणं पाणं सरिसं कयं सेत्तं सव्व वेहम्मे सेत्तं विहम्मोवणीय सेत्तं उवमे ॥

---

१ वृत्तिमे वैधर्म्यकी उपमा–क्षीर और काकसे लिखी है कि आदिकी वैधर्म्यता है।

भाषार्थः—(पूर्वपक्षः) सर्व वैधर्म्यताके उदाहरण किस प्रकारसे होते हैं ? (उत्तरपक्षः) सर्व वैधर्म्यताके उदाहरण नही होते हैं किन्तु फिर भी सुगमताके कारणसे दिखलाये जाते हैं, जैसे कि—नीचने नीचके सामान ही कार्य किया है, दासने दासके ही तुल्य काम कीया है, काकने काकवत्‌ही कृत किया है वा चांडालने चांडाल तुल्य ही क्रिया की है सो यह सर्व वैधर्म्यताके ही उदारण हैं ॥ इसलिये जहांपर ही सर्व वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण पूर्ण होता है इसका ही नाम उपमान प्रमाण है॥ इसके ही आधारसे सर्व पदार्थोंका यथायोग्य उपमान किया जाता है॥ अब आगम प्रमाणका वर्णन करते हैं ॥

मूल॥ सेकिंत्तं आगमे २ दुविहे पं. तं. लोइय लोगुत्तरिय सेकिंत्तं लोइय २ जन्नंइमं अन्नाणीहिं मिच्छादिट्ठीहिं सछंद बुद्धिमइ विगप्पियं तं जारहं रामायणं जाव चत्तारि वेया संगोवंगा सेत्तं लोइय आगमे॥

भाषार्थः—श्री गौतम प्रभुजी भगवान्‌से प्रश्न करते हैं कि हे प्रभो ! आगम प्रमाण किस प्रकारसे वर्णन किया गया है ?

तब श्री भगवान् उत्तर देते हैं कि, हे गौतम ! आगम प्रमाण द्विविधसे प्रतिपादन किया है जैसेकि लौकीक आगम १ लौको- त्तर आगम २ ॥ श्री गौतमजी पुनः पूछते है कि हे भगवन् लौ- कीक आगम कौनसे हैं ? भगवान् उत्तर देते हैं कि हे गौतम ! जैसेकि मिथ्यादृष्टि लोगोंने अज्ञानताके प्रयोगसे स्वछंदतासे कल्पना करलिये है भारत रामायण यावत् चतुर वेद सांगोपांग पूर्वक, यह सर्व लौकीक आगम है, क्योंकि इन आगमोंमें पदा- र्थोंका सत्य २ स्वरूप प्रतिपादन नही किया है अपितु परस्पर विरोधजन्य कथन है, इस लिये ही इनका नाम लौकीक आगम है ॥

मूल ॥ सेकिंतं लोगुत्तरिय आगमे २ जंइमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं जावपणीय दुवालसंगं तंजहा आयारो जावदिठ्ठिवाओ सेत्तं लोगुत्त- रिय आगमे ॥

भाषार्थः-(प्रश्नः) लोकोत्तर आगम कौनसे हैं ? (उत्तरः) जो यह प्रत्यक्ष अरिहंत भगवंत कर करके प्रतिपादन किये हैं, द्वादशांग आगमरूप सूत्र समूह जैसेकि आचारांगसे

हुआ दृष्टिवाद पर्यन्त आगम है, यह सर्व लोकोत्तर आगम हैं क्यों कि पदार्थोंका सत्य २ स्वरूप *द्वादशांगरूप आगममें प्रतिपादन किया हुआ है, क्योंकि स्याद्वाद मतमें पदार्थोंका सप्त नयोंके द्वारा यथावत् माना गया हैं जोकि एकान्त नय न माननेवाले उक्त सिद्धान्तसे स्खलित हो जाते हैं ॥

मूल ॥ अहवा आगमे तिविहे पं. तं. सुत्तागमेय अत्थागमेय तदुभयागमे ॥

भाषार्थः—अथवा आगम तीन प्रकारसे कथन किया गया है। जैसेकि—सूत्रागम १ अर्थागम २ तदुभयागम ३ अर्थात् सूत्ररूप आगम १ अर्थरूप आगम २ सूत्र और अर्थरूप आगम ३ ॥

मूल ॥ अहवा आगमे तिविहे पं. तं. अ-

---

* द्वादशाङ्ग आगमोंके निम्नलिखित नाम हैं। आचाराग सूत्र १ सूयगडाग सूत्र २ ठाणागसूत्र ३ स्थानाग सूत्र ४ विवाह प्रज्ञप्ति सूत्र ५ ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र ६ उपासक दशाग सूत्र ७ अंतकृत सूत्र ८ अनुत्रोववाइ सूत्र ९ प्रश्नव्याकरण सूत्र १० विपाकसूत्र ११ दृष्टिवाद सूत्र १२ ॥

त्तागमे अणंत्तरागमे परंपरागमे तित्थगराणं अ-
त्थस्स अत्तागमे गणहराणं सुत्तस्स अत्तागमे
अत्थस्स अणंत्तरागमे गणहर सीस्साणं सुत्त-
स्स अणंत्तरागमे अत्थस्स परंपरागमे तेण परं
सुत्तस्सावि अत्थस्सावि नोअत्तागमे नोअणंत्त-
रागमे परंपरागमे सेत्तं लोगुत्तरिय सेत्तं आगमे
सेत्तं नाण गुणप्पमाणे ॥

भाषार्थः—अथवा आगम तीन प्रकारसे और भी कथन किया गया है जैसे कि आत्मागम १ अनंतरागम २ परंपरागम ३ । किन्तु तीर्थंकर देवको अर्थ करके आत्मागम है और गण-धरों को सूत्र करके आत्मागम है अपितु अर्थ करके अनंतराग-म है २ ॥ परंतु गणधरके शिष्योंको सूत्र अनंतरागम है अर्थपरं-परागम है उसके पश्चात् सूत्रागम भी अर्थागम भी नही है आ-त्मागम नही है अनंतरागम केवल परंपरागम ही है । यही लोगो-त्तर आगमके भेद है । इसका ही नाम ज्ञान गुण प्रमाण है ॥

अथ दर्शन गुण प्रमाणका स्वरूप लिखता हूं ॥

मूल ॥ सेकिंतं दंसण गुणप्पमाणे २ चउ-विहे पं. तं. चक्खु दंसण गुणप्पमाणे अचक्खु दंसण गुणप्पमाणे उहि दंसण गुणप्पमाणे केवल दंसण गुणप्पमाणे ॥

भाषार्थः—(प्रश्नः) दर्शन गुण प्रमाण किस प्रकारसे है ? (उत्तर) दर्शन गुण प्रमाण चतुर्विधसे प्रतिपादन किया गया है जैसेकि चक्षुः दर्शन गुण प्रमाण १ अचक्षुः दर्शन गुण प्रमाण २ अवधि दर्शन गुण प्रमाण ३ केवल दर्शन गुण प्रमाण ४ ॥ अब चार ही दर्शनोंके लक्षण वा साधनताको लिखते हैं ॥

मूल ॥ चक्खुदंसणं चक्खुदंसणिस्स घडपड-माईसु अचक्खुदंसणं अचक्खुदंसणिस्स आय-भावे उहिदंसणं उहिदंसणिस्स सव्व रूवि दव्वेसु न पुण सव्वपज्जवेसु केवल दंसणं केवल दंसणिस्स सव्व दव्वेहिं सव्व पज्जवेहिं सेतं दंसणगुणप्पमाणे॥

भाषार्थः—दर्शनावर्णी कर्मके क्षयोपशम होनेसे जीवको चक्षु दर्शन घटपटादि पदार्थोंमें होता है, अर्थात् जब आत्मा-

का दर्शनावर्णी कर्म क्षयोपशम हो जाता है तब आत्मामें घट पट पदार्थोंको देखनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, उसीका ही चक्षु दर्शन है क्योंकि चक्षुदर्शी जीव घटादि पदार्थोंको चक्षुओं द्वारा भली प्रकारसे देख सकता है दूरवर्त्ती होने पर भी। अचक्षु दर्शन जीवके आत्मा भावमें रहेता है क्योंकि चक्षुओंसे भिन्न श्रोतेंद्रियादि चतुरिंद्रियों द्वारा जो पदार्थोंका बोध होता है अथवा मनके द्वारा जो स्वप्नादि दर्शनोंका निर्णय किया जाता है उसका नाम अचक्षुदर्शन है और अवधि दर्शन युक्त जीवकी प्रवृत्ति सर्व रूपि द्रव्योंमें होती है किन्तु सर्व पर्यायों में नही हैं क्योंकि अवधि दर्शन रूपि द्रव्योंको ही देखनेकी शक्ति रखता है न तु सर्व पर्यायोंकी, सो इसका नाम अवधि दर्शन है। अपितु केवल दर्शन सर्व द्रव्योंमें और सर्व पर्यायोंमें स्थित है क्योंकि सर्वज्ञ होने पर सर्व द्रव्योंको और सर्व पर्यायोंको केवल दर्शन युक्त जीव सम्यक् प्रकारसे देखता है सो इसका ही नाम दर्शन गुण प्रमाण है॥

अथ चारित्र गुण प्रमाण वर्णनः॥

मूल॥ सेकिंत्तं चरित्त गुणप्पमाणे २ पंचविहे पं. तं. सामाइय चरित्त गुणप्पमाणे छेउवठाव-

णिय चरित्त गुणप्पमाणे परिहार विसुद्धिय च-
रित्त गुणप्पमाणे सुहुमसंपराय चरित्त गुणप्पमाणे
अहक्खाय चरित्त गुणप्पमाणे ॥

भाषार्थः-(शंका) चारित्र गुण प्रमाण कितने प्रकारसे प्रति-
पादन किया गया है? (समाधान) पंचप्रकारसे प्रतिपादन किया
गया है-जैसेकि सामायिक चारित्र गुण प्रमाण। क्योंकि चारित्र
उसे कहते हैं जो आचरण किया जाये सो सामायिक आत्मिक
गुण है जैसेकि सम, आय, इक, संधि करनेसे होता है सामा-
यिक, जिसका अर्थ है कि सर्व जीवोंसे समभाव करनेसे जो
आत्माको लाभ होता है उसका ही नाम सामायिक है। इसके
द्वि भेद हैं स्तोक काल मुहूर्तादि प्रमाण आयु पर्यन्त साधुवृत्ति
रूप, सावद्य योगोंका त्यागरूप सामायिक चारित्र प्रमाण है।
इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय चारित्र गुण प्रमाण है जो कि पूर्व
पर्यायको छेदन करके संयममें स्थापन करना। परिहार विशुद्धि
चारित्र गुण प्रमाण उसका नाम है जो संयममें बाधा करने-
वाले परिणाम हैं, उनका परित्याग करके सुंदर भावोंका धारण
करना तथा नव मुनि गच्छसे बाहिर होकर १८ मास पर्यन्त
तप करते हैं परिहार विशुद्धिके अर्थे उसका नाम

विशुद्धि है। सूक्ष्म संपराय चारित्र गुण प्रमाणका यह लक्षण है कि यह चारित्र दशम गुणस्थानवर्त्ती जीवको होता है क्यों· कि सूक्ष्म नाम तुच्छ मात्र संपराय नाम संसारका अर्थात् जिसका स्तोक मात्र रह गया है लोभ, उसका ही नाम सूक्ष्म संपराय चारित्र गुण प्रमाण है। यथाख्यात चारित्र उसका नाम है जो सर्व लोकमें प्रसिद्ध है कि यथावादी हैं वैसे ही करता है अर्थात् जिसका कथन जैसे होता है वैसे ही क्रिया करता है जोकि ११ गुणस्थानसे १४ गुणस्थानवर्त्ती जीवोंको होता है, अपितु जो क्षपक श्रेणी वर्त्ती जीव है वे दशम स्थानसे द्वादशमें गुणस्थानमें होता हुआ १३ वें गुणस्थानमें केवल ज्ञान करके युक्त हो जाता है फिर चतुर्दशवें गुणस्थानमें प्रवेश करके मोक्ष पदको ही प्राप्त हो जाता है॥

मूल ॥ सामाइय चरित्त गुणप्पमाणे दुविहे पं. तं. इत्तरियए आवकहियए छेओवट्ठावणे दुविहे पं. तं. साइयारेय निरइयारेय परिहारे

---

१ पंच चारित्रोंके भेद विवाहप्रज्ञप्ति इत्यादि सूत्रोंसे जानने।

दुविहे पं. तं. निविस्समाणेय णिविठ्ठकाइय सुहुमसंपरायए दुविहे पं. तं. पडिवाइय अप्प-डिवाइय अहक्खाय चरित्त गुणप्पमाणे दुविहे पं. तं. छउमत्थेय केवलीय सेत्तं चरित्त गुणप्पमा-णे सेत्तं जीव गुणप्पमाणे सेत्तं गुणप्पमाणे ॥

भाषार्थः—(प्रश्नः) सामायिक चारित्र गुणप्रमाण कितने प्रकारसे वर्णन किया गया है ? (उत्तरः) द्वि प्रकारसे, जैसे कि इत्वर् काल १ यावज्जीवपर्यन्त २ । (प्रश्नः) छेदोपस्था-पनी चारित्रके कितने भेद है ? (उत्तरः) द्वि भेद है, जैसेकि सातिचार १ निरतिचार २ । (प्रश्नः) परिहार विशुद्धि चा-रित्र भी कितने वर्णन किया गया है ?

(उत्तरः) इसके भी द्वि भेद है जैसेकि प्रवेशरूप १ निर्वृत्तिरूप २ ॥

(प्रश्नः) सूक्ष्म संपराय चारित्रके कितने भेद हैं ?

(उत्तरः) दो भेद हैं, जैसेकि प्रतिपाति १ अप्रतिपाति २ ।

(प्रश्नः) यथाख्यात चारित्र भी कितने प्रकार वर्णन किया गया है ?

(उत्तरः) दो प्रकारसे कथन किया गया है, जैसेकि छद्मस्थ यथाख्यात चारित्र १ केवली यथाख्यात चारित्र २॥ सो यह चारित्र गुणप्रमाण पूर्ण होता हुआ जीव गुणप्रमाण भी पूर्ण हो गया, इसका ही नाम गुणप्रमाण है ॥

सो प्रमाणपूर्वक जो पदार्थ सिद्ध हो गये हैं वे नययुक्त भी होते हैं क्योंकि अर्हन् देवका सिद्धान्त अनेक नयात्मिक हैं ॥

॥ अथ नय विवर्णः ॥

अन्यदेव हि सामान्यमभिन्नज्ञानकारणम् ।
विशेषोऽप्यन्य एवेति मन्यते नैगमो नयः ॥ १ ॥
सद्रूपताऽनतिक्रान्तं स्वस्वभावमिदं जगत् ।
सत्तारूपतया सर्वं संगृह्णन् संग्रहो मतः ॥ २ ॥
व्यवहारस्तु तामेव प्रतिवस्तु व्यवस्थिताम् ।
तथैव दृश्यमानत्वाद् व्यापारयति देहिनः ॥ ३ ॥
तत्रर्जुसूत्रनीतिः स्याद् शुद्धपर्यायसंश्रिता ।
नश्वरस्यैव भावस्य भावात् स्थितिवियोगतः ॥ ४ ॥
विरोधिलिङ्गसंख्यादि भेदाद् भिन्नस्वभावताम् ।
तस्यैव मन्यमानोऽयं शब्दः प्रत्यवतिष्ठते ॥ ५ ॥
तथाविधस्य तस्याऽपि वस्तुनः क्षणवर्तिनः ।

ब्रूते समभिरूढस्तु संज्ञाभेदेन भिन्नताम् ॥ ६ ॥
एकस्याऽपि ध्वनेर्वाच्यं सदा तन्नोपपद्यते ।
क्रियाभेदेन भिन्नत्वाद् एवंभूतोऽभिमन्यते ॥ ७ ॥
तथा हि—

नैगमनयदर्शनानुसारिणौ नैयायिक-वैशेषिकौ । संग्रहाभिप्रायप्रवृत्ताः सर्वेऽप्यद्वैतवादाः । सांख्यदर्शनं च । व्यवहारनयानुपाति प्रायश्चार्वाकदर्शनम् । ऋजुसूत्राऽऽकूतप्रवृत्तबुद्धयस्तथागताः । शब्दादिनयावलम्बिनो वैयाकरणादयः ॥

प्रश्नः—अर्हन् देवने नय कितने प्रकारसे वर्णन किये है, क्योंकि नय उसका नाम है जो वस्तुके स्वरूपको भली प्रकारसे प्राप्त करे ? अर्थात् पदार्थोंके स्वरूपको पूर्ण प्रकारसे प्रगट करे॥

उत्तरः—अर्हन् देवने सप्त प्रकारसे नय वर्णन किये हैं ॥

प्रश्नः—वे कौन २ से हैं ?

उत्तरः—सुनिये ॥

नैगम १ संग्रह २ व्यवहार ३ ऋजुसूत्र ४ शब्द ५ समभिरूढ ६ एवंभूत ७ ॥ इनके स्वरूपको भी देखिये ।

नैगमस्त्रेधा भूतभाविवर्त्तमानकाल भेदात् । अतीते वर्तमानारोपणं यत्र सभूत नैगमो यथा—अद्य दीपोत्सवादिने श्री वर्द्धमा-

नस्वामी मोक्षं गतः । भाविनि भूतवत्कथनं यत्र स भावि नैगमो यथा अर्हन् सिद्ध एव कर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते यत्र स वर्तमाननैगमो यथा ओदनः पच्यते ॥ इति नैगमस्त्रेधा ॥

भाषार्थः—नैगम नय तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है, जैसेकि भूतनैगम १ भाविनैगम २ वर्तमाननैगम ३। अतीत कालकी वार्ताको वर्तमान कालमें स्थापन करके कथन करना जैसेकि आज दीपमालाकी रात्रीको श्री भगवान् वर्द्धमानस्वामी मोक्षगत हुए हैं इसका नाम भूत नैगमनय है। अपितु भावि नैगम इस प्रकारसे है जैसेकि अर्हन् सिद्ध ही है क्योंकि वे निश्चय ही सिद्ध होंगे सो यह भावि नैगम है। और वर्तमान नैगम यह है कि जो वस्तु निष्पन्न हूई है वा नही हूई उसको वर्तमान नैगमऽपेक्षा इस प्रकारसे कहना जैसेकि तंडुल पक्ते है अर्थात् (ओदनः पच्यते) चावल पक रहे हैं, सो इसीका नाम वर्तमान नैगम नय हैं ॥

॥ अथ संग्रह नय वर्णन ॥

संग्रहोऽपि द्विविधः सामान्यसंग्रहो यथा सर्वाणि द्रव्याणि परस्परमविरोधीनि । विशेषसंग्रहो यथा—सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः इति सङ्ग्रहोऽपि द्विधा ॥

भाषार्थः—संग्रह नय भी द्वि प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसे कि—सामान्य संग्रह विशेष संग्रह; अपितु सामान्य संग्रह इस प्रकारसे है, जैसेकि सर्व द्रव्य परस्पर अविरोधी भावमें हैं अर्थात् सर्व द्रव्योंका परस्पर विरोध भाव नही हैं, अपितु विशेष संग्रहमें, यह विशेष है कि जैसेकि जीव द्रव्य परस्पर अविरोधी भावमें है क्योंकि जीव द्रव्यमें उपयोग लक्षण वा चेतन शक्ति एक सामान्य ही है सो सामान्य द्रव्योंमेंसे एक विशेष द्रव्यका वर्णन करना उसीका ही नाम संग्रह नय है ॥

॥ अथ व्यवहार नय वर्णन ॥

व्यवहारोऽपि द्विधा सामान्यसङ्ग्रहभेदको व्यवहारो यथा द्रव्याणि जीवाजीवाः । विशेषसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च इति व्यवहारोऽपि द्विधा ॥

भाषार्थः—व्यवहार नय भी द्वि प्रकारसे ही कथन किया गया है जैसेकि सामान्य संग्रहरूप व्यवहार नय जैसेकि द्रव्य भी द्वि प्रकारका है यथा जीव द्रव्य अजीव द्रव्य ॥ अपितु विशेष संग्रहरूप व्यवहार इस प्रकारसे है जैसेकि जीव संसारी १ और मोक्ष २ क्योंकि संसारी आत्मा कर्मोंसे युक्त हैं और मोक्ष आत्मा कर्मोंसे रहित हैं, इस लिये ही

नाम अजर, अमर, सिद्ध, बुद्ध, पारगत, परंपरागत, मुक्त इत्यादि है। जीव द्रव्यके द्वि भेद यह व्यवहार नयके मतसे ही है इसी प्रकार अन्य द्रव्योंके भी भेद जान लेने ॥

॥ अथ ऋजुसत्र नय ॥

ऋजुसूत्रोऽपि द्विधा सूक्ष्मर्जु सूत्रो यथा—एक समयावस्थायी पर्यायः। स्थूलर्जु सूत्रो यथा मनुष्यादि पर्यायास्तदायुः प्रमाण कालं तिष्ठंति इति ऋजुसूत्रोऽपि द्विधा ॥

भाषार्थः—ऋजु सूत्र नय भी द्वि भेदसे कहा गया है यथा जो समय २ पदार्थोंका नूतन पर्याय होता है और पूर्व पर्याय व्यवच्छेद हो जाता है उसीका ही नाम सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय हैं अपितु जो एक पर्याय आयु पर्य्यन्त रहता है उस पर्यायकी संज्ञाको लेकर शब्द ग्रहण करे जाते हैं उसका नाम स्थूल ऋजुसूत्र नय है जैसेकि—नर भव १ देव भव २ नारकी भव ३ तिर्यग् भव ४। यह भव यथा आयुप्रमाण रहते हैं इसी वास्ते मनुष्य १ देव २ तियग् ३ नारकी ४ यह शब्द व्यवहृत करनेमें आते हैं ॥

॥ अथ शब्द समभिरूढ एवंभूत नय विवर्णः ॥

शब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः प्रत्येकमेकैका नयाः शब्दनयो यथा

दारा भार्या कलत्रं जलं आपः। समभिरूढ नयो यथा गौः पशुः एवंभूतनयो यथा इंदतीति इन्द्रः ॥ इति नयभेदाः ॥

भावार्थ--शब्द, समभिरूढ, एवंभूत, यह तीन ही नय शुद्ध पदार्थोंका ही स्वीकार करते हैं यथा शब्द नयके मतमें एकार्थी हो वा अनेकार्थी हो, शब्द शुद्ध होने चाहिये, जैसेकि- दारा, भार्या, कलत्र, अथवा जल, आप, यह सर्व शब्द एकार्थी पंचम नयके मतसे सिद्ध होते हैं अर्थात् शुद्ध शब्दोंका उच्चारण करना इस नयका मुख्य कर्तव्य है ॥

और समभिरूढ नय विशेष शुद्ध वस्तुपर ही स्थित है जैसेकि गौ अथवा पशु। जो पदार्थ जिस गुणवाला है उसको वैसे ही मानना यह समभिरूढ नयका मत है तथा जिस पदार्थमें जिस वस्तुकी सत्ता है उसके गुण कार्य ठीक २ मानने वे ही समभिरूढ है। और एवंभूत नयके मतमें जो पदार्थ शुद्ध गुण कर्म स्वभावको प्राप्त हो गये हैं उसको उसी प्रकारसे मानना उसीका ही नाम एवंभूत नय है जैसेकि--इन्दतीति इन्द्रः अर्थात् ऐश्वर्य करके जो युक्त है वही इन्द्र है, यही एवंभूत नय है ॥

॥ अथ सप्त नयोंका मुख्योद्देश ॥

नैकं गच्छतीति निगमः निगमो विकल्पस्तत्र भवो

नैगमः अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृह्णातीति संग्रहः। संग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः। ऋजुप्रांजलं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः। शब्दात् व्याकरणात् प्रकृति प्रत्ययद्वारेण सिद्धः शब्दः शब्दनयः। परस्परेणादि रूढाः समभिरूढाः। शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति यथा शक्र इन्द्रः पुरन्दर इत्यादयः समभिरूढाः। एवं क्रियाप्रधानत्वेन भूयत इत्येवंभूतः॥ इति नयाः॥

भाषार्थः—नैगम नयका एक प्रकार गमण नही है अपितु तीन प्रकारका विकल्प पूर्वे कहा गया है वे ही नैगम नय है १। जो पदार्थोंको अभेदरूपसे ग्रहण किया जाता है वही संग्रह नय है २। जो अभेद रूपमें पदार्थों हैं उनको फिर भेदरूपसे वर्णन करना जैसेकि—गृहस्थ धर्म १ मुनिधर्म २ उसीका ही नाम व्यवहार नय है ३। जो समय २ पर्याय परिवर्तन होता है उस पर्यायको ही मुख्य रख पदार्थोंका वर्णन करना उसका ही नाम

ऋजु सूत्र है क्योंकि यह नय सांप्रति कालको ही मानता है ४ । शब्द नयसे शब्दोंकी व्याकरण द्वारा शुद्धि की जाती है जैसेकि प्रकृति, प्रत्यय, यथा धर्म शब्द प्रकृतिरूप है इसको स्वौजस् अमौट् शस् इत्यादि प्रत्ययों द्वारा सिद्ध करना तथा भू सत्तायां वर्त्तते इस धातुके रूप दश लकारोंसे वर्णन करने यह सर्व शब्द नयसे वनते हैं ५ । जो पदार्थ स्वगुणोंमें आरूढ है वही समभिरूढ नय हैं तथा शब्दभेद हो अपितु अर्थभेद न हो जैसेकि शक्र इन्द्रः पुरंदर मघवन् इत्यादि । यह सर्व शब्द समभिरूढ नयके मतसे वनते हैं ६ । क्रिया प्रधान करके जो द्रव्य अभेद रूप हैं उनका उसी प्रकारसे वर्णन करना वही एवंभूत नय हैं ७ ॥ सो सम्यग्दृष्टि जीवोंको सप्त नय ही ग्राह्य है किन्तु मुख्यतया करके दोइ नय हैं ॥ यथा–

पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते । तावन्मूलनयो द्वौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च । तत्र निश्चयनयो ऽभेदविषयो व्यवहारऽभेदविषयः ॥

भाषार्थः–अपितु अध्यात्म भाषा करके नय दो ही हैं जैसे कि निश्चय नय १ व्यवहार, नय २ । सो निश्चय अभेद विषय है,

व्यवहार भेद विषय है, किन्तु फिर भी निश्चय नय द्वि प्रकारसे है जैसेकि शुद्ध निश्चय नय १ अशुद्ध निश्चय नय २। सो शुद्ध निश्चय नय निरुपाधि गुण करके अभेद विषय विषयक है जैसेकि केवल ज्ञान करके युक्त जीवको जीव मानना यह शुद्ध निश्चय एवंभूत नय है १। सोपाधिक विषय अशुद्ध निश्चय जैसे मतिज्ञानादि करके युक्त है जीव २॥ इसी प्रकार व्यवहार नय भी द्वि प्रकारसे प्रतिपादित है जैसेकि—एक वस्तु विषय सद्भूत व्यवहार, भिन्न वस्तु विषय असद्भूत व्यवहार किन्तु सद्भूत व्यवहार भी द्वि विधसे ही कहा गया है जैसेकि—उपचरित १। अनुपचरित २। फिर सोपाधि गुण गुणिका भेद विषय उपचरित सद्भूत व्यवहार इस प्रकारसे है जैसेकि जीवका मतिज्ञानादि गुण है॥ अपितु निरुपाधि गुणगुणिका भेद विषय अनुपचरित सद्भूत व्यवहारका यह लक्षण है कि—जीव केवल ज्ञानयुक्त है क्योंकि निज गुण जीवकी पूर्ण निर्मलता ही है तथा असद्भूत व्यवहार भी द्वि प्रकारसे ही वर्णन किया गया है जैसेकि उपचरित, अनुपचरित। फिर संश्लेषरहित वस्तु विषय उपचरित असद्भूत व्यवहार जैसेकि देवदत्तका है, और संश्लेषरहित वस्तु संबन्ध विषय अनुपचरित

असद्भूत व्यवहार जैसे कि जीवका शरीर है यह अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है सो यह नय सर्व पदार्थोंमें संघट्टित है इनके ही द्वारा वस्तुओंका यथार्थ बोध हो सक्ता है क्योंकि यह नय प्रमाण पदार्थोंके सद्भावको प्रगट कर देता है ॥

॥ अथ सप्त नय दृष्टान्त वर्णनः ॥

अब सात ही नयोंको दृष्टान्तों द्वारा सिद्ध करते हैं, जैसेकि किसीने प्रश्न किया कि सात नयके मतसे जीव किस प्रकारसे सिद्ध होता है तो उसका उत्तर यह है कि सप्त नय जीव द्रव्यको निम्न प्रकारसे मानते हैं, जैसेकि—नैगम नयके मतमें गुणपर्याय युक्त जीव माना है और शरीरमें जो धर्मादि द्रव्य है वे भी जीव संज्ञक ही है १ ॥ संग्रह नयके मतमें असंख्यात प्रदेशरूप जीव द्रव्य माना गया है जिसमें आकाश द्रव्यको वर्जके शेष द्रव्य जीव रूपमें ही माने गये हैं २ ॥ व्यवहार नयके मतसे जिसमें अभिलाषा तृष्णा वासना है उसका ही नाम जीव है, इस नयने लेशा योग इन्द्रियें धर्म इत्यादि जो जीवसे भिन्न है इनको भी जीव माना है क्योंकि जीवके सहचारि होनेसे ३ ॥ और ऋजु सूत्र नयके मतमें उपयोगयुक्त जीव माना गया है, इसने लेशा योगादिको दूर कर दिया है

किन्तु उपयोग शुद्ध (ज्ञानरूप) अशुद्ध (अज्ञान) दोनोंको ही जीव मान लिया है क्योंकि मिथ्यात्व मोहनी कर्म पूर्वक जीव सिद्ध कर दिया है ४ ॥ और शब्द नयके मतमें जो तीन कालमें शुद्ध उपयोग पूर्वक है वही जीव है अपितु सम्यक्त्व मोहनी कर्मकी वर्गना इस नयने ग्रहण कर ली शुद्ध उपयोग अर्थे ५ ॥ समभिरूढ नयके मतमें जिसकी शुद्धरूप सत्ता है और स्वगुणमें ही मग्न है क्षायक सम्यक्त्व पूर्वक जिसने आत्माको जान लिया है उसका नाम जीव है, इस नयके मतमें कर्म संयुक्त ही जीव है ६ ॥ एवंभूत नयके मतमें शुद्ध आत्मा केवल ज्ञान केवल दर्शन संयुक्त सर्वथा कर्मराहित अजर अमर सिद्ध बुद्ध पारगत इत्यादि नाम युक्त सिद्ध आत्माको ही जीव माना है ७ ॥ इस प्रकार सप्त नय जीवको मानते हैं ॥ द्वितीय दृष्टान्तसे सप्त नयोंका माना हुआ धर्म शब्द सिद्ध करते हैं ॥ नैगम नय एक अंश मात्र वस्तुके स्वरूपको देखकर सर्व वस्तुको ही स्वीकार करता है जैसेकि नैगम नय सर्व मतोंके धर्मोंको ठीक मानता है क्योंकि नैगम नयका मत है कि सर्व धर्म मुक्तिके साधन वास्ते ही है अपितु संग्रह नय जो पूर्वज पुरुषोंकी रूढि चली आती हैं उसको ही र्म कहता है क्योंकि उसका मन्तव्य है कि पूर्व पुरुष हमारे

अज्ञात नहीं थे इस लिये उन ही की परम्पराय उपर चलना हमारा धर्म है। इस नयके मतमें कुलाचारको ही धर्म माना गया है २ ॥ व्यवहार नयके मतमें धर्मसे ही सुख उपलब्ध होते हैं और धर्म ही सुख करनेहारा है इस प्रकारसे धर्म माना है क्योंकि व्यवहारनय बाहिर सुख पुन्यरूप करणीको धर्म मानता है ३ ॥ और ऋजुसूत्र नय वैराग्यरूप भावोंको ही धर्म कहता है सो यह भाव मिथ्यात्वीको भी हो सक्ते हैं अभव्यवत् ४॥ अपितु शब्द नय शुद्ध धर्म सम्यक्त्व पूर्वक ही मानता है क्योंकि सम्यक्त्व ही धर्मका मूल है सो यह चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ती जीवोंको धर्मी कहता है ५ ॥ समभिरूढ नयके मतमें जो आत्मा सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र युक्त उपादेय वस्तुओं ग्रहण और हेय (त्यागने योग्य पदार्थोंका) परिहार, ज्ञेय (जानने योग्य) पदार्थोंको भली प्रकारसे जानता है, परगुणसे सदैव काल ही भिन्न रहनेवाला ऐसा आत्मा जो मुक्तिका साधक है उसको ही धर्मी कहता है ६ ॥ और एवंभूत नयके मतमें जो शुद्ध आत्मा कर्मोंसे रहित शुक्ल ध्यानपूर्वक जहां पर घातियें कर्मोंसे रहित आत्मा ऐसे जानना जोकि अघातियें कर्म नष्ट हो रहे हैं उसका ही नाम धर्म है ७ ॥

॥ अथ सप्त नयों द्वारा सिद्ध शब्दका वर्णन ॥

नैगम नयके मतमें जो आत्मा भव्य है वे सर्व ही सिद्ध है क्योंकि उनमें सिद्ध होनेकी सत्ता है १ ॥ संग्रह नयके मतमें सिद्ध संसारी जीवोंमें कुछ भी भेद नही हैं, केवल सिद्ध आत्मा कर्मोंसे रहित हैं, संसारी आत्मा कर्मोंसे युक्त हैं २ ॥ व्यवहार नयके मतमें जो विद्या सिद्ध हैं वा लब्धियुक्त हैं और लब्धि द्वारा अनेक कार्य सिद्ध करते हैं वे ही सिद्ध हैं ३ ॥ ऋजु सूत्र नय जिसको सम्यक्त्व प्राप्त हैं ओर अपनी आत्माके स्वरूपको सम्यक् प्रकारसे देखता है उसका ही नाम सिद्ध है ४ ॥ शब्द नयके मतमें जो शुक्ल ध्यानमें आरूढ़ है ओर कष्टको सम्यक् प्रकारसे सहन करना गजसुखमालवत् उसका ही नाम सिद्ध है ५ ॥ समभिरूढ़ नयके मतमें जो केवल ज्ञान केवल दर्शन संपन्न १३ वें वा १४ वें गुणस्थानवर्ती जीव है उनका ही नाम सिद्ध है ६ ॥ एवंभूत नयके मतमें जिसने सर्व कर्मोंको दूर कर दिया है केवल ज्ञान केवल दर्शन संयुक्त लोकाग्रमें विराजमान है ऐसे सिद्ध आत्माको ही सिद्ध माना गया हैं क्योंकि सकल कार्य उसी आत्माके सिद्ध हैं ७ ॥

अथ वस्तीके दृष्टान्त द्वारा सप्त नयोंका वर्णन ॥

फिर यह सप्त नय सर्व पदार्थों पर संघट्टित हैं जैसेकि किसी पुरुषने अमुक व्यक्तिको प्रश्न किया कि आप कहां पर वसते हैं ? तो उसने प्रत्युत्तरमें निवेदन किया कि मैं लोगमें वसता हूं। यह अशुद्ध नैगम नयका वचन है। इसी प्रकार प्रश्नोत्तर नीचे पढियें ॥

पुरुषः—प्रिय महोदयवर ! लोक तो तीन हैं जैसेकि स्वर्ग मृत्य पाताल; आप कहां पर रहते है ? क्यों तीनों लोकोंमें ही वसते हैं ?

व्यक्तिः—नहींजी, मैं तो मनुष्य लोगमें वसता हूं (यह शुद्ध नैगम नय है) ॥

पुरुषः—मनुष्य लोगमें असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, आप कौनसे द्वीपमें वसते हैं ?

व्यक्तिः—जंबूद्वीप नामक द्वीपमें वसता हूं (यह विशुद्धतर नैगम नय है) ॥

पुरुषः—महाशयजी ! जंबूद्वीपमें तो महाविदेह आदि अनेक क्षेत्र हैं, आप कौनसे क्षेत्रमें निवास करते हैं ?

व्यक्तिः—मैं भरतक्षेत्रमें वसता हूं (यह अति शुद्ध नैगम नय है) ॥

पुरुषः—प्रियवर ! भरतक्षेत्रमें षट् खंड हैं, आप कौनसे खंडमें निवास करते हैं ?

व्यक्तिः—मैं मध्य खंडमें वसता हूं (यह विशुद्ध नैगम नय है) ॥

पुरुषः—मध्य खंडमें अनेक देश हैं, आप कौनसे देशमें ठहरते हैं ?

व्यक्तिः—मैं मागध देशमें वसता हूं (यह अतिविशुद्ध नैगम नय है) ॥

पुरुषः—मागध देशमें अनेक ग्राम नगर हैं, आप कौनसे ग्राम वा नगरमें वसते हैं ?

व्यक्तिः—मैं पाटलिपुत्रमें वसता हूं (यह अतिविशुद्ध-तर नैगम नय है) ॥

पुरुषः—महाशयजी ! पाटलिपुत्रमें अनेक रथ्या हैं (मुहल्ले) तो आप कौनसी प्रतोलीमें वसते हैं ?

व्यक्तिः—मैं अमुक प्रतोलीमें वसता हूं (यह वहुलतर विशुद्ध नैगम नय है) ॥

पुरुषः—एक प्रतोलीमें अनेक घर होते हैं, तो आप कौनसे घरमें वसते हैं (एक मुहल्लेमें) ?

व्यक्तिः—मैं मध्य घर (गर्भ घर) में वसता हूं ? (यह

विशुद्ध नय है)॥ यह सर्व उत्तरोत्तर शुद्धरूप नैगम नयके ही वचन हैं ॥

पुरुषः—मध्य घरमें तो महान् स्थान है, आप कौनसे स्थानमें वसते हैं ?

व्यक्तिः—मैं स्वः शय्यामें वसता हूं (यह संग्रह नय है) बिछावने प्रमाणमें ॥

पुरुषः—शय्यामें भी महान् स्थान है, आप कहांपर रहते हैं ?

व्यक्तिः—असंख्यात प्रदेश अवगाह रूपमें वसता हूं (यह व्यवहार नय है)॥

पुरुषः—असंख्यात प्रदेश अवगाह रूपमें धर्म अधर्म आकाश पुद्गल इनके भी महान् प्रदेश हैं, आप क्या सर्वमें ही वसते हैं ?

व्यक्तिः—नहीजी, मैं तो चेतनगुण (स्वभाव) में वसता हूं ॥ यह ऋजुसूत्र नयका वचन है ॥

पुरुषः—चेतन गुणकी पर्याय अनंती है जैसोकि ज्ञान चेतना अज्ञान चेतना, आप कौनसे पर्यायमें वसते हैं ?

व्यक्तिः—मैं तो ज्ञान चेतनामें वसता हूं (यह शब्द नय है)॥

पुरुषः—ज्ञान चेतनाकी भी अनंत पर्याय हैं, आप कहां पर वसते हैं?

व्यक्तिः—निज गुण परिणत निज स्वरूप शुक्ल ध्यान-पूर्वक ऐसी निर्मल ज्ञान स्वरूप पर्यायमें वसता हूं (यह समभिरूढ नय है) ॥

पुरुषः—निज गुण परिणत निज स्वरूप शुक्ल ध्यानपूर्वक पर्यायमें वर्धमान भावापेक्षा अनेक स्थान हैं, तो आप कहां पर वसते हैं ?

व्यक्तिः—अनंत ज्ञान अनंत दर्शन शुद्ध स्वरूप निजरूपमें वसता हूं ॥ यह एवंभूत नयका वचन है ॥

इस प्रकार यह सात ही नय वस्ती पर श्री अनुयोग द्वार-जी सूत्रमें वर्णन किए गये हैं और श्री आवश्यक सूत्रमें सा-मायिक शब्दोपरि सप्त नय निम्न प्रकारसे लिखे हैं, जैसेकि-नैगम नयके मतमें सामायिक करनेके जब परिणाम हुए तवी ही सामायिक हो गई ॥ अपितु संग्रह नयके मतमें सामायि-कका उपकरण लेकर स्थान प्रतिलेखन जब किया गया तब ही सामायिक हूई ॥ और व्यवहार नयके मतमें सावद्य योगका जब परित्याग किया तब ही सामायिक हूई ॥

और ऋजु नयके मतमें जब मन वचन कायाके योग शुभ वर्तने लगे तब ही सामायिक हूई ऐसे माना जाता है ॥ शब्द नयके मतमें जब जीवको वा अजीवको सम्यक् प्रकारसे जान लिया फिर अजीवसे ममत्व भावको दूर कर दीया तब सामायिक होती है ॥ एवंभूत नयके मतमें शुद्ध आत्माका नाम ही सामायिक है ॥ यदुक्तं—

आया सामाइय आया सामाइयस्स अट्ठे ।

इति वचनात् अर्थात्, आत्मा सामायिक है और आत्मा ही सामायिकका अर्थ है, सो एवंभूत नयके मतसे शुद्ध आत्मा शुद्ध उपयोगयुक्त सामायिकवाला होता है ॥ सो इसी प्रकार जो पदार्थ हैं वे सप्त नयोंद्वारा भिन्न २ प्रकारसे सिद्ध होते हैं और उनको उसी प्रकार माना जाये तब आत्मा सम्यक्त्वयुक्त हो सक्ता है, क्योंकि एकान्त नयके माननेसे मिथ्या ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है अपितु अनेकान्त मतका और एकान्त मतका ही-और भी का ही विशेष है, जैसेकि—एकान्त नयवाले जब किसी पदार्थोंका वर्णन करते हैं तब—'ही'—का ही प्रयोग करते हैं जैसेकि, यह पदार्थ ऐसे ही है । किन्तु अनेकान्त मत जब किसी पदार्थका वर्णन करता है तब 'भी' का ही प्रयोग

करता है जैसेकि–यह पदार्थ ऐसे 'भी' है। सो यह कथन अ-विसंवादित है अर्थात् इसमें किसीको भी विवाद नहीं है जैसेकि–जीव सान्त भी है–अनंतं भी है ॥ यदुक्तमागमे–

जेवियणंते खंदया जाव सअंते जीवे अणंते अजीवे तस्सवियणं अयमट्ठे एवं खलु जाव दव्वओणं एगे जीवे सअंते १ खेत्तउणं जीवे असंक्खेज्ज पयसिए असंक्खेज्ज पयसो गाढे अत्थि पुणसे अणंते २ कालउणं जीवेण कयाइनआसि निच्चे णत्थि पुणसे अंत्ते ३ भाव-उणं जीवे अणंताणाण पज्जवा अणंत्ता दंसण पज्जवा अणंत चरित्त पज्जवा अणंता गुरुय लहुय पज्जवा अणंत्ता अगुरुय लहुय पज्जवा णत्थि पुणसे अंते ४ सेत्तं दव्वउ जीवे सअंते खेत्तउ जीवे सअंते कालउ जीवे अणंते भा-वउ जीवे अणंत्ते ॥ भगवती सूत्र शतक २ उद्देश १ ॥

भावार्थः—श्री भगवान् वर्द्धमान स्वामी स्कंधक संन्यासीको जीवका निम्न प्रकारसे स्वरूप वर्णन करते हैं कि हे स्कंधक ! द्रव्यसे एक जीव सान्त है १ । क्षेत्रसे असंख्यात प्रदेशरूप जीव असंख्यात प्रदशों पर ही अवगहण हुआ आकाशापेक्षा सान्त है २ । कालसे अनादि अनंत है क्योंकि उत्पत्तिसे रहित है इस लिये कालापेक्षा जीव नित्य है ३ । भावसे जीव नित्य अनंत ज्ञान पर्याय, अनंत दर्शन पर्याय, अनंत चारित्र पर्याय, अनंत गुरु लघु पर्याय, अनंत अगुरु लघु पर्याय युक्त अनंत है ४ । सो हे स्कंधक ! द्रव्यसे जीव सान्त, क्षेत्रसे भी सान्त, अपितु काल भावसे जीव अनंत है, तथा द्रव्यार्थिक नयापेक्षा जीव अनादि अनंत है, पर्यायार्थिक नयापेक्षा सादि सान्त है, जैसेकि—जीव द्रव्य अनादि अनंत है पर्यायार्थिक नयापेक्षा सादि सान्त है क्योंकि कभी नरक योनिमें जीव चला जाता है, कभी तिर्यग् योनिमें, कभी मनुष्य योनिमें, कभी देव योनिमें । जब पूर्व पर्याय व्यवच्छेद होता है तब नूतन पर्याय उत्पन्न हो जाता है । इसी अपेक्षासे जीव सादि सान्त है तथा जीव चतुर्भंगके भी युक्त है, यथा जीव द्रव्य स्वगुणापेक्षा वा द्रव्या-

र्थिक नयापेक्षा अनादि अनंत है१। और भव्यजीव कर्मापेक्षा अनादि सान्त है क्योंकि कर्मोंकी आदि नहीं किस समय जीव कर्मोंसे बद्ध हुआ, इस लिये कर्म भव्य अपेक्षा अनादि सान्त है २। और जो आत्मा मुक्त हुआ वे सादि अनंत है, क्योंकि वे संसारचक्रसे ही मुक्त हो गया है और अपुनरावृत्ति करके युक्त है जैसे दग्धबीज अंकूर देनेमें समर्थ नहीं होता है, उसी प्रकार वे मुक्त आत्माओंके भी कर्मरूपि बीज दग्ध हो गये हैं ॥ और प्रवाह अपेक्षा कर्म अनादि, पर्यायापेक्षा कर्म सादि सान्त है, जैसेकि पूर्व किये हुए भोगे गये अपितु नूतन और किये गये सो करनेके समयसे भोगनेके समय पर्यन्त सादि सान्त भंग बन जाता है, परंतु प्रवाहसे कर्म अ-नादि ही चले आते हैं, जैसेकि घट उत्पत्तिमें सादि सान्त है, मृ-त्तिकाके रूपमें अनादि है क्योंकि पृथ्वी अनादि है। इसी प्रकार सर्व पदार्थोंके स्वरूपको भी जानना चाहिये, वे पदार्थ द्रव्यसे अ-नादि अनंत है पर्यायार्थिक नयापेक्षा सादि सान्त भी है सादि अनंत भी है अथवा सर्व पदार्थोंके जाननेके वास्ते सप्त भंग

---

१ मुक्त आत्मा एक जीव अपेक्षा सादि अनंत है और बहुत जीवोंकी अपेक्षा अनादि अनंत है, क्योंकि मुक्ति भी अनादि है ॥

भी लिखे हैं जिनको लोग जैनोंका सप्तभंगी न्याय कहते हैं, जैसेकि,—

१ स्याद्स्त्येव घटः—कथंचित् घट है स्वगुणोंकी अपेक्षा घट अस्तिरूप है।

२ स्यान्नास्त्येव घटः—कथंचित् घट नहीं है।

३ स्यादस्ति नास्ति च घटः—कथंचित् घट है और कथंचित् घट नहीं है।

४ स्यादवक्तव्य एव घटः—कथंचित् घट अवक्तव्य है।

५ स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घटः—कथंचित् घट है और अवक्तव्य है।

६ स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घटः—कथंचित् नहीं है तथा अवक्तव्य घट है।

७ स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च घटः—कंथचित् है नहीं है इस रूपसे अवक्तव्य घट है।

मित्रवरो! यह सप्त भंग हैं। यह घटपटादि पदार्थोंमें पक्ष प्रतिपक्ष रूपसे सप्त ही सिद्ध होते हैं जैसेकि घट द्रव्य स्वगुण युक्त अस्तिरूपमें है। प्रत्येक द्रव्यमें स्वगुण चार चार होते हैं द्रव्यत्व क्षेत्रत्व कालत्व भावत्व। घटका द्रव्य मृत्तिका है, क्षेत्र जैसे

पाटलिपुत्रका बना हुआ, कालसे वसंत ऋतुका, भावसे नील घट है, सो यह स्वगुणमें अस्तिरूपमें है। वे ही घट परद्रव्य (पटादि) अपेक्षा नास्तिरूप है क्योंकि पटका द्रव्य तंतु हैं, क्षेत्रसे वे कुशपुरका बना हुआ है, कालसे हेमंत ऋतुमें बना हुआ, भावसे श्वेत वर्ण है, सो पटके गुण घटमें न होनेसे घट पटापेक्षा नास्तिरूप है। तृतीय भंग वे ही घट एक समयमें दोनों गुणों करके युक्त है, स्वगुणमें अस्तिभावमें है, और परगुणकी अपेक्षा नास्ति रूपमें है, जैसे कोई पुरुष जिस समय उदात्त स्वरसे उच्चारण करता है उस समय मौन भावमें नही है, अपितु जिस समय मौन भावमें है उसी समय उदात्त स्वरयुक्त नही है, सो प्रत्येक २ पदार्थमें अस्ति नास्तिरूप तृतीय भंग है। जबके एक समयमें दोनों गुण घटमें हैं तब घट अवक्तव्य रूप हो गया क्योंकि वचन योगके उच्चारण करनेमें असंख्यात समय व्यतीत होते हैं और वह गुण एक समयमें प्रतिपादन किये गये है इस लिये घट अवक्तव्य है, अर्थात् वचन मात्रसे कहा नहीं जाता। यदि एक गुण कथन करके फिर द्वितीय गुण कथन करेंगे तो जिस समय हम अस्ति भावका वर्णन करेंगे वही समय उसी घटमें नास्ति भावका है, तो हमने विद्यमान भावको अविद्यमान सिद्ध किया जैसे जिस समय कोई पुरुष खडा है ऐसे हमने उच्चारण

किया तो वही समय उस पुरुषकी वैठनेकी क्रियाके निषेधका भी है इस लिये यह अवक्तव्य धर्म है। इसी प्रकार अस्ति अ-वक्तव्य रूप पंचम भंग भी घटमें सिद्ध है क्योंकि वे घट पर गुणकी अपेक्षा नास्तिरूप भी है इस लिये एक समयमें अस्ति अवक्तव्य धर्मवाला है। इसी प्रकार स्यात् नास्ति अवक्तव्यरूप षष्टम भंग भी एक समयकी अपेक्षा सिद्ध है। और स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्य रूप सप्तम भंग भी एक समयमें सिद्धरूप है किन्तु वचनगोचर नही है क्योंकि एक समयमें अस्ति नास्ति रूप दोनों भाव विद्यमान हैं परंतु वचनसे अगोचर है अर्थात् कथन मात्र नही है॥ इसी प्रकार सर्व द्रव्य अनेकान्त मतमें माने गये हैं और नित्यअनित्य भी भंग इसी प्रकार वन जाते है। यथा-१ स्यात् नित्य २ स्यात् आनित्य ३ स्यात् नित्यम-नित्यम् ४ स्यात् अवक्तव्य ५ स्यात् नित्य अवक्तव्यम् ६ स्यात् आनित्य अवक्तव्यम् ७ स्यात् नित्यमनित्य युगपत् अवक्तव्यम् इत्यादि॥ इन पदार्थोंका पूर्ण स्वरूप जैन सूत्र वा जैन न्यायग्रं-थोंसे देख लेवें। और संसारको भी जैन सूत्रोंमें सान्त और अनंत निम्न प्रकारसे लिखा है। यदुक्तमागमे-

एवं खलु मए खंधया चउविहे लोए पं.

तंजहा दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ दव्वओणं एगे लोय सअंत्ते खेत्तओणं लोए असंखेज्जा ओजोयण कोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं असंखेज्जा ओजोयण कोडाकोडीओ परिखेवेणं पं. अत्थि पुणसे अंत्ते कालओणं लोयण कयायिनआसि न कदायि न भवति न कदायि न भविस्सति भुविसुय भवतिय भविस्सति धुवेणित्तियसासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे णत्थि पुणसे अंते भावओणं लोय अणंत्ता वण्ण पज्जवा गंध पज्जवा रस फास अणंत्ता पज्जवा संठाण पज्जवा अणंता गुरु लहुय पज्जवा अणंता अगुरु लहुय पज्जवा णत्थि पुणसे अंत्ते सेतं खंधगा दव्वतो लोगे सअंते १ खेत्ततो लोय सअंते २ कालओ लोय अणंते ३ भावओ लोय अणंते ४ ॥ भगवती सू० श० २ उ० १ ॥

भावार्थः—श्री भगवान् वर्द्धमान स्वामी स्कंधक संन्यासी-को लोगका स्वरूप निम्न प्रकारसे प्रतिपादन करते हैं कि हे स्कंधक ! द्रव्यसे लोक एक है इस लिये सान्त है १। क्षेत्रसे लोक असंख्यात योजनोंका दीर्घ वा विस्तीर्ण है और असंख्यात योजनोंकी परिधिवाला है इस लीये क्षेत्रसे भी लोक सान्त है २। कालसे लोग अनादि है अर्थात् किसी समयमें भी लोगका अभाव नहि था, अब नही है, नाही होगा अर्थात् उत्पत्ति रहित है, नित्य है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है, किन्तु पंच भरत पंच ऐरवय क्षेत्रोंमें उत्सर्प्पिणि काल अवसर्प्पिणि काल दो प्रकारका समय परिवर्तन होता रहता है और एक एक कालमें षट् षट् समय होते हैं जिसमें षट् वृद्धिरूप षट् हानीरूप होते हैं अपितु पदार्थोंका अभाव किसी भी समयमें नहीं होता, किन्तु किसी वस्तुकी वृद्धि किसीकी न्यूनता यह अवश्य ही हुआ करती है। इनका स्वरूप श्री जंबूद्वीप प्रज्ञप्तिसे जानना। अपितु कालसे लोग अनादि अनंत है क्योंकि जो लोग जीव प्रकृति ईश्वर यह तीनोंको अनादि मानते हैं और आकाशादिकी उत्पत्ति वा प्रलय सिद्ध करते हैं तो भला आधारके विना पदार्थ कैसे ठहर सकते हैं। इस लिये लोगके अनादि माननेमें कोई भी बाधा नही पड़ती

और भावसे लोकमें अनंत वर्णोंकी पर्याय अनंत ही गंध, रस, स्पर्शकी पर्यायें और अनंत ही संस्थानकी पर्याय, अनंत ही गुरु लघु पर्यायें, अनंत ही अगुरु लघु पर्याय हैं इस वास्ते भावसे भी लोक अनंत हैं। सो द्रव्यसे लोक सान्त १ क्षेत्रसे भी सान्त २ कालसे लोक अनंत ३ भावसे भी लोक अनंत है ४॥ सो उक्त लोकमें अनंत आत्मायें स्थिति करते हैं और स्वः स्वः कर्मानुसार जन्म मरण सुख वा दुःख पा रहे हैं। अपितु लोक शब्द तीन प्रकारसे व्यवहृत होता है जैसेकि—उर्ध्व लोक १ तिर्यग् लोग २ अधोलोक ३ ॥ सो उर्ध्व लोकमें २६ स्वर्ग हैं, उपरि इषत् प्रभा पृथ्वी है और लोकाग्रमें सिद्ध भगवान् विराजमान है॥ और तिर्यग् लोकमें असंख्यात द्वीप समुद्र है और पाताल लोकमें सप्त नरक स्थान है वा भवनपत्यादि देव भी हैं किन्तु मोक्षके साधनके लिये केवल मनुष्य जाति ही है क्योंकि जाति शब्द पंच प्रकारसे ग्रहण किया गया है जैसेकि इकेंद्रिय ज्ञाति जिसके एक ही इन्द्रिय हो जैसेकि पृथ्वीकाय १ आपकाय २ तेयुःकाय ३ वायुकाय ४ वनस्पतिकाय ५। इनके केवल एक स्पर्श ही इन्द्रिय होती है। और द्विइन्द्रिय जीव जैसेकि शीप शंखादि इनके केवल शरीर और जिह्वा यह दोई

इन्द्रियें होती हैं। और तेईन्द्रिय जाति कुंथु वा पिप्पलकादि इनके शरीर, मुख, घ्राण यह तीन इन्द्रिय होती हैं। और चतुरिन्द्रिय जातिके चार इन्द्रिय होती है जैसेकि—शरीर, मुख, घ्राण, चक्षु, माक्षिकादियें चतुरिंद्रिय जीव होते हैं। और पंचिन्द्रिय जातिके पांच ही इन्द्रियें होती है जैसेकि शरीर; मुख, घ्राण, जीह्वा, चक्षु, श्रोत्र यह पांच ही इन्द्रियें नारकी, देव, मनुष्य, तिर्यंचोंके होते हैं. जैसे जलचर, स्थलचर, खेचर अर्थात् जो संज्ञि[1] होते हैं वे सर्व जीव पंचिंद्रियें होते हैं। अपितु मुक्तिके लिये केवल मनुष्य जाति ही कार्यसाधक है और कर्मानुसार ही मनुष्योंका वर्णभद माना जाता है, यदुक्तमागमे—

कम्मुणा बंभणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ सुदो हवइ कम्मुणा ॥
उत्तराध्यायन सूत्र अ० २५ ॥ गाथा ३३ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्यादि व्रतोंके धारण करनेसे ब्राह्मण होता है, और प्रजाकी न्यायसे रक्षा करनेसे क्षत्रिय वर्णयुक्त हो जाता है, व्यापारादि क्रियाओं द्वारा वैश्य होता है, सेवादि क्रियाओंके करनेसे शूद्र हो जाता है, अपितु कर्मसे ब्राह्मण १

---

१. संज्ञि जीव मनवालोंका नाम हैं तथा जो गर्भसे उत्पन्न हों।

कर्मसे क्षत्रिय २ कर्मसे वैश्य ३ कर्मसे शूद्र ४ जीव हो जाता है। किन्तु मनुष्य जाति एक ही है, क्रियाभेद होनेसे वर्णभेद हो जाते हैं ॥ सर्व योनियोंमें मनुष्य भव परम श्रेष्ठ है जिसमें सत्यासत्यका भली भांतिसे ज्ञान हो सक्ता है और सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्रके द्वारा मुक्तिका कार्य सिद्ध कर सक्ता है॥ किन्तु सम्यग् ज्ञानके पंच भेद वर्णन किये गये हैं जैसेकि॰ मतिज्ञान १ श्रुत ज्ञान २ अवधि ज्ञान ३ मनःपर्यव ज्ञान ४ केवल ज्ञान ५, अपितु मति ज्ञानके चतुर भेद हैं जैसेकि- अवग्रह १ ईहा २ अवाय ३ धारणा ४॥

(१) इन्द्रिय और अर्थकी योग्य क्षेत्रमें प्राप्ति होने पर उत्पन्न होनेवाले महा सत्ता विषयक दर्शनके अनन्तर अवान्तर सत्ता जातिसे युक्त वस्तुको ग्रहण करनेवाला ज्ञानविशेष अग्रवह कहलाता है॥ (२) अवग्रहके द्वारा जाने हुए पदार्थमें होनेवाले संशयको दूर करनेवाले ज्ञानको ईहा कहते हैं, जैसेकि अवग्रहसे निश्चित पुरुष रूप अर्थमें इस प्रकार संशय होने पर कि " यह पुरुष दाक्षिणात्य है अथवा औदीच्य (उत्तरमें रहनेवाला) " इस संशयके दूर करनेके लिये उत्पन्न होनेवाले ' यह दाक्षिणात्य होना चाहिये ' इस प्रकारके ज्ञानको ईहा कहते हैं ॥ (३) भाषा आदिकका विशेष ज्ञान होने पर उसके यथार्थ स्वरूपको

पूर्व ज्ञान (ईहा) की अपेक्षा विशेष रूपसे दृढ़ करनेवाले ज्ञानको अवाय कहते हैं जैसेकि " यह दाक्षिणात्य ही है " इस प्रकारका ज्ञान होना ॥ (४) उसी पदार्थका इस योग्यतासे (दृढ़ रूपसे) ज्ञान होना कि जिससे कालान्तरमें भी उस विषयका विस्मरण न हो उसको धारणा कहते हैं। अर्थात् जिसके निमित्तसे उत्तर कालमें भी "वह" ऐसा स्मरण हो सके उसको धारणा कहते हैं ॥ और मतिज्ञानसे ही चार प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न होती है, जैसेकि उत्पत्तिया १ विणइया २ कम्मिया ३ परिणामिया ४॥ उत्पत्तिया बुद्धि उसका नाम है जो वार्त्ता कभी सुनी न हो और नाही कभी उसका अनुभव भी किया हो, परंतु प्रश्नोत्तर करते समय वह वार्त्ता शीघ्र ही उत्पन्न हो जाये और अन्य पुरुषोंको उस वार्त्तामें शंकाका स्थान भी प्राप्त न होवे ऐसी बुद्धिका नाम उत्पात्तिका है १। और जो विनय करनेसे बुद्धि उत्पन्न हो उसका नाम विनायिका है २। अपितु जो कर्म करनेसे प्रतिभा उत्पन्न होवे और वह पुरुष कार्यमें कौशल्यताको शीघ्र ही प्राप्त हो जावे उसका नाम कम्मिका बुद्धि है ३। जो अवस्थाके परिवर्त्तनसे बुद्धिका भी परिवर्त्तन हो जाता है जैसे बालावस्था युवावस्था वृद्धावस्थाओंका अनुक्रमतासे परिवर्त्तन होता है उसी प्रकार बुद्धिका भी परिवर्त्तन हो

जाता है क्योंकि इन्द्रिय निर्बल होनेपर इन्द्रियजन्य ज्ञान भी प्रायः परिवर्त्तन हो जाता है, अपितु ऐसे न ज्ञात कर लिजीये इन्द्रियें शून्य होनेपर ज्ञान भी शून्य हो जायगा। आत्मा ज्ञान एक ही है किन्तु कर्मोंसे शरीरकी दशा परिवर्त्तन होती है, साथ ही ज्ञानावर्णी आदि कर्म भी परिवर्त्तन होते रहते है परंतु यह वार्त्ता मतिज्ञानादि अपेक्षा ही है न तु केवलज्ञान अपेक्षा। सो इसको परिणामिका बुद्धि कहते हैं ४। सो यह सर्व बुद्धियें मतिज्ञानके निर्मल होनेपर ही प्रगट होती हैं, किन्तु सम्यग् दृष्टि जीवोंकी सम्यग् बुद्धि होती है मिथ्यादृष्टि जीवोंकी बुद्धि भी मिथ्यारूप ही होती है अर्थात् सम्यग् दर्शीको मतिज्ञान होता है मिथ्या-दर्शीको मतिअज्ञान होता है, इसका नाम मतिज्ञान है ॥

और श्रुतज्ञानके चतुर्दश भेद हैं जैसेकि—अक्षरश्रुत १,अन-क्षरश्रुत २, संज्ञिश्रुत ३, असंज्ञिश्रुत ४, सम्यग्श्रुत ५, मिथ्यात्व श्रुत ६, सादिश्रुत ७, अनादिश्रुत ८, सान्तश्रुत (सपर्यवसानश्रुत) ९, अनंतश्रुन १०, गमिकश्रुत ११, अगमिकश्रुत १२, अंगप्र-विष्टश्रुत १३, अनंगप्रविष्टश्रुत १४ ॥

भाषार्थः—अक्षरश्रुत उसका नाम है जो अक्षरोंके द्वारा . नकर ज्ञान प्राप्त हो, उसका नाम अक्षरश्रुत है ॥ (२) अनक्षर

श्रुत उसका नाम है जो शब्द सुनकर पदार्थका ज्ञान तो पूर्ण हो जाये अपितु वह शब्द उस भांति लिखनेमें न आवे जैसे छींक, मोरका शब्द इत्यादि ॥ (३) संज्ञिश्रुत उसे कहते हैं जिसको कालिक उपदेश (सुनके विचारनेकी शक्ति) हितोपदेश (सुनकर धारणेकी शक्ति) दृष्टिवादोपदेश (क्षयोपशम भावसे वस्तुके जाननेकी शक्तिका होना तथा क्षयोपशम भावसे संज्ञि भावका प्राप्त होना) यह तीन ही प्रकार शक्ति प्राप्त हो उसका नाम संज्ञिश्रुत है ॥ (४)असंज्ञिश्रुत उसका नाम है जिन आत्माओंमें कालिक उपदेश और हितोपदेश नहीं है केवल दृष्टिवादोपदेश ही है अर्थात् क्षयोपशमके प्रभावसे असंज्ञि भावको ही प्राप्त हो रहे हैं ॥ (५) सम्यग्श्रुत—जो द्वादशाङ्ग सूत्र सर्वज्ञ प्रणीत हैं अथवा आप्त प्रणीत जो वाणी है वे सर्व सम्यग्श्रुत है ॥ (६) मिथ्यात्वश्रुत—जो सम्यग् ज्ञान सम्यग् दर्शन सम्यग् चारित्रसे वार्जित ग्रंथ हैं जिनमें पदार्थोंका यथावत् वर्णन नहीं किया गया है और अनाप्त प्रणीत होनेसे वे ग्रंथ मिथ्यात्वश्रुत है ॥ (७) सादिश्रुत उसको कहते हैं जिस समय कोई पुरुष श्रुत अध्ययन करने लगे उस कालकी अपेक्षा वे सादिश्रुत है । क्षेत्रकी अपेक्षासे पंच भरत पंच ऐरवत क्षेत्रोंमे द्वादशांग सादि हैं, तीर्थकरोंका विरह आदिका होना कालसे उत्सर्प्पिणि अवसर्प्पिणिका

वर्तना इस अपेक्षासे भी सादिश्रुत है भावसे अर्हन्के मुखसे पदार्थोंका श्रवण करना वे भी एक अपेक्षा सादिश्रुत है ॥ (८) अनादिश्रुत उसका नाम है जो द्रव्यसें वहुतसे पुरुष परंपरागत श्रुत पढ़ते आये हैं । क्षेत्रसे द्वादशाङ्गरूप श्रुत महाविदेहोंमें अनादि हैं क्योंकि महाविदेहोंमें तीर्थकरोंका अभाव नही होता और द्वादशाङ्गरूप श्रुत व्यवच्छेद नही होते । कालसे जहांपर उत्सर्पिणि आदि कालचक्रोंका वर्तना नही है वहां भी अनादिश्रुत है जैसे महाविदेहोंमें ही । भावसे क्षयोपशम भावकी अपेक्षा अनादिश्रुत है अर्थात् क्षयोपशम भाव सदैवकाल जीवके साथ ही रहता है (चेतनगुण) ॥ (९) सान्तश्रुत पूर्ववत् ही जान लेना; जैसे एक पुरुषने श्रुताध्ययन आरंभ किया, जव वे श्रुत अध्ययन कर चुका तव वे सान्तश्रुत हो गया १ क्षेत्रसे पंचभरतादि सान्तश्रुत है २ कालसे उत्सर्पिणी आदि कालसे भी सान्तश्रुत है ३ भावसे जो अर्हन् भगवानके मुखसे श्रुत प्रतिपादन किया हुआ है वे व्यवच्छेदादि अपेक्षा सान्तश्रुत है ४ ॥ (१०) अनंत श्रुत—द्रव्यसे वहुतसे आत्मा श्रुत पढ़थे वा पढ़ेगे। अनादि अनंत संसार होनेसे श्रुत भी अपर्यवसान है १ क्षेत्रसे ५ महाविदेहोंकी अपेक्षासे भी श्रुत अपर्यवसान ही है २ कालसे उत्सर्पिणि आदिके न होनेसे अनंत है ३ भावसे क्षयोपशम भावकी

अपेक्षा श्रुत अनंत ही है क्योंकि क्षयोपशम भाव आत्मगुण है इस लिये श्रुत भी अपर्यवसान है ४ ॥ (११) गमिकश्रुत दृष्टिवाद है ॥ (१२) अगमिकश्रुत आचारांगादि श्रुत हैं ॥ (१३) अंगप्रविष्टश्रुत द्वादशाङ्ग सूत्र हैं ॥ (१४) अनंगप्रविष्ट श्रुत अंगोंसे व्यतिरिक्त आवश्यकादि सूत्र है ॥ इनका पूर्ण वृत्तान्त नंदी आदि सिद्धान्तोंमेंसे जानना ॥

अवधि ज्ञानका यह लक्षण है कि जो प्रमाणवर्ती पदार्थों-को देखता है वा जो रूपि द्रव्य है उनके देखनेकी शक्ति रखता है जिसके सूत्रमें षट् भेद वर्णन किये गये हैं जैसेकि आनु-गामिक (सदैव काल ही जीवके साथ रहनेवाले) अनानु-गामिक (जिस स्थानपे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है यदि वहां ही बैठा रहे तो जो इच्छा हो वही ज्ञानमें देख सक्ता है, जब वे ऊठ गया फिर कुछ नही देखता) वृद्धिमान (जो दिनप्रतिदिन वृद्धि होता है) हायमान (जो हीन होनेवाला है) प्रतिपाति (जो होकर चला जाता है) अप्रतिपाति (जो होकर नहीं जाता है) यह भेद अवधिज्ञानके हैं ॥ और मनःपर्यवज्ञान उ-सका नाम है जो मनकी पर्यायका भी ज्ञाता हो। इसके दो भेद है जैसेकि–ऋजुमति अर्थात् सार्द्ध द्वीपमें जो संज्ञि पंचिंद्रिय जीव

वर्तना इस अपेक्षासे भी सादिश्रुत है भावसे अर्हन्के मुखसे पदार्थोंका श्रवण करना वे भी एक अपेक्षा सादिश्रुत है ॥ (८) अनादिश्रुत उसका नाम है जो द्रव्यसें बहुतसे पुरुष परंपरागत श्रत पढ़ते आये हैं । क्षेत्रसे द्वादशाङ्गरूप श्रुत महाविदेहोंमें अनादि हैं क्योंकि महाविदेहोंमें तीर्थंकरोंका अभाव नही होता और द्वादशाङ्गरूप श्रुत व्यवच्छेद नही होते । कालसे जहांपर उत्सर्प्पिणि आदि कालचक्रोंका वर्तना नही है वहां भी अनादिश्रुत है जैसे महाविदेहोंमें ही । भावसे क्षयोपशम भावकी अपेक्षा अनादिश्रुत है अर्थात् क्षयोपशम भाव सदैवकाल जीवके साथ ही रहता है (चेतनगुण) ॥ (९) सान्तश्रुत पूर्ववत् ही जान लेना; जैसे एक पुरुषने श्रुताध्ययन आरंभ किया, जब वे श्रुत अध्ययन कर चुका तब वे सान्तश्रुत हो गया १ क्षेत्रसे पंचभरतादि सान्तश्रुत है २ कालसे उत्सर्प्पिणी आदि कालसे भी सान्तश्रुत है ३ भावसे जो अर्हन् भगवान्के मुखसे श्रुत प्रतिपादन किया हुआ है वे व्यवच्छेदादि अपेक्षा सान्तश्रुत है ४ ॥ (१०) अनंत श्रुत—द्रव्यसे वहुतसे आत्मा श्रुत पढ़थे वा पढ़ेगे । अनादि अनंत संसार होनेसे श्रुत भी अपर्यवसान है १ क्षेत्रसे ५ महाविदेहोंकी अपेक्षासे भी श्रुत अपर्यवसान ही है २ कालसे उत्सर्प्पिणि आदिके न होनेसे अनंत है ३ भावसे क्षयोपशम भावकी

अपेक्षा श्रुत अनंत ही है क्योंकि क्षयोपशम भाव आत्मगुण है इस लिये श्रुत भी अपर्यवसान है ४ ॥ (११) गमिकश्रुत दृष्टिवाद है ॥ (१२) अगमिकश्रुत आचारांगादि श्रुत हैं ॥ (१३) अंगप्रविष्टश्रुत द्वादशाङ्ग सूत्र हैं ॥ (१४) अनंगप्रविष्ट श्रुत अंगोंसे व्यतिरिक्त आवश्यकादि सूत्र है ॥ इनका पूर्ण वृत्तान्त नंदी आदि सिद्धान्तोंमेंसे जानना ॥

अवधि ज्ञानका यह लक्षण है कि जो प्रमाणवर्ती पदार्थों-को देखता है वा जो रूपि द्रव्य है उनके देखनेकी शक्ति रखता है जिसके सूत्रमें षट् भेद वर्णन किये गये हैं जैसेकि आनु-गामिक (सदैव काल ही जीवके साथ रहनेवाले) अनानु-गामिक (जिस स्थानपे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है यदि वहां ही बैठा रहें तो जो इच्छा हो वही ज्ञानमें देख सक्ता है, जब वे ऊठ गया फिर कुछ नही देखता) वृद्धिमान (जो दिनप्रतिदिन वृद्धि होता है) हायमान (जो हीन होनेवाला है) प्रतिपाति (जो होकर चला जाता है) अप्रतिपाति (जो होकर नहीं जाता है) यह भेद अवधिज्ञानके हैं ॥ और मनःपर्यवज्ञान उ-सका नाम है जो मनकी पर्यायका भी ज्ञाता हो । इसके दो भेद है जैसेकि–ऋजुमति अर्थात् सार्द्ध द्वीपमें जो संज्ञि पंचिंद्रिय जी

हैं सार्द्ध द्वि अंगुल न्यून प्रमाण क्षेत्रवर्त्ती उन जीवोंके मनके पर्यायोंका ज्ञाता होना उसका ही नाम ऋजुमति है । और विपुलमति उसे कहते हैं जो समय क्षेत्र प्रमाण ही उन जीवोंके पर्यायोंका ज्ञाता होना उसका ही नाम विपुलमति है; और केवलज्ञानका एक ही भेद है क्योंकि वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी है, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सब कुछ जानता है और सब कुछ ही देखता है, उसका ही नाम केवलज्ञान है । किन्तु यह सम्यग्दर्शीको ही होते हैं अपितु मिथ्यादर्शीको तीन अज्ञान होते हैं जैसेकि—मतिअज्ञान १ श्रुतअज्ञान २ विभंगज्ञान ३। ज्ञानसे जो विपरीत होवे उसका ही नाम अज्ञान है ॥ और सम्यग्दर्शन भी द्वि प्रकारसे प्रतिपादन किया गया है जैसेकि—वीतराग सम्यग्दर्शन १ और छद्मस्थ सम्यग्दर्शन २ । अपितु दर्शनके अंतरगत ही दश प्रकारकी रुचियें है जिनका वर्णन निम्न प्रकारसे है ॥

जीवाजीवके पूर्ण स्वरूपको जानकर आस्रवके मार्गोंका वेत्ता होना, जो कुछ अर्हन् भगवान्ने स्वज्ञानमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे पदार्थोंके स्वरूपको देखा है वे कदापि अन्यथा नहीं है ऐसी जिसकी श्रद्धा है उसका ही नाम निसर्गरुचि है १ ॥ जिने उक्त स्वरूप गुर्वादिके उपदेशद्वारा ग्रहण किया हो उसका

ही नाम उपदेशरुचि है २ ॥ फिर जिसका राग द्वेष मोह अज्ञान अवगत हो गया हो उस आत्माको आज्ञारुचि हो जाती है ३ ॥ जिसको अंगसूत्रों वा अनंगसूत्रोंके पठन करनेसे सम्यक्त्व रत्न उपलब्ध होवे उसको सूत्ररुचि होती है अर्थात् सूत्रोंके पठन करनेसे जो सम्यक्त्व रत्न प्राप्त हो जावे उसका ही नाम सूत्ररुचि है ४ ॥ एक पदसे जिसको अनेक पदोंका बोध हो जावे और सम्यक्त्व करके संयुक्त होवे पुनः जलमें तैलबिंदुवत् जिसकी बुद्धिका विस्तार है उसका ही नाम बीजरुचि है ५ ॥ जिसने श्रुतज्ञानको अंग सूत्रोंसे वा प्रकीर्णोंसे अथवा दृष्टिवादके अध्ययन करनेसे भली भांति जान लिया है अर्थात् श्रुतज्ञानके पूर्ण आशयको प्राप्त हो गया है तिसका नाम अभिगम्यरुचि है ६ ॥ फिर सर्व द्रव्योंके जो भाव है वह सर्व प्रमाणों द्वारा उपलब्ध हो गये हैं और सर्व नयोंके मार्ग भी जिसने जान लिये हैं उसका ही नाम विस्ताररुचि है ७ ॥ और ज्ञान दर्शन चारित्र तप विनय सत्य समित गुप्तिमें जिसकी आत्मा स्थित है सदाचारमें मग्न है उसका ही नाम क्रियारुचि है ८ ॥ जिसने परमतकी श्रद्धा नही ग्रहण की अपितु जिन शास्त्रोंमें भी विशारद नही हैं किन्तु भद्रपरिणामयुक्त ऐसे जीवको संक्षेपरुचि होती है ९ ॥ षट् द्रव्योंका स्वरूप जिसने भलिभां-

तिसे जान लिया है और श्रुतधर्म चारित्रधर्ममें जिसकी पूर्ण निष्ठा है जो कुछ अर्हन् देवने पदार्थोंका वर्णन किया है वे सर्व यथार्थ हैं ऐसी जिसकी श्रद्धा है उसका ही नाम धर्मरुचि है १० ॥ और परमार्थको सेवन करना, फिर जो परमार्थी जन है उन्हीकी सेवा सुश्रुषा करके ज्ञान प्राप्त करना और कुदर्शनोंकी संगत वा जिन्होंने सम्यक्त्वको परित्यक्त कर दिया है उनका संसर्ग न करना यह सम्यक्त्वका श्रद्धान है अर्थात् सम्यक्त्व-का यही लक्षण है। सो सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शनके होनेपर स-म्यग्चारित्र अवश्य ही धारण करना चाहिये ॥

द्वितीय सर्ग समाप्त ।

॥ तृतीय सर्गः ॥



॥ अथ चारित्र वर्णन ॥

आत्माको पवित्र करनेवाला, कर्ममलके दूर करनेके लिये क्षारवत्, मुक्तिरूपि मंदिरके आरूढ़ होनेके लिये निःश्रेणि समान, आभूषणोंके तुल्य आत्माको अलंकृत करनेवाला, पापकर्मोंके निरोध करनेके वास्ते अर्गल, निर्मल जल सदृश्य जीवको शीतल करनेवाला, नेत्रोंके समान मुक्तिमार्गके पथमें आधारभूत, समस्त प्राणी मात्रका हितैषी श्री अर्हन् देवका प्रतिपादन किया हुआ तृतीय रत्न सम्यग् चारित्र है॥ मित्रवरो ! यह रत्न जीवको अक्षय सुखकी प्राप्ति कर देता है। इसके आधारसे प्राणी अपना कल्याण कर लेते हैं सो भगवान्‌ने उक्त चारित्र मुनियों वा गृहस्थों दोनोंके लिये अत्युपयोगी प्रतिपादन किया है। मुनि धर्ममें चारित्रको सर्ववृत्ति माना गया है गृहस्थ धर्ममें देशवृत्तिके नामसे प्रतिपादन किया है; सो मुनियोंके मुख्य पांच महाव्रत है जिनका स्वरूप किंचित् मात्र निम्न प्रकारसे लिखा जाता है, जैसेकि—

(१) सव्वाउ पाणाइवायाउ वेरमणं ॥

सर्वथा प्रकारसे प्राणातिपातसे निवृत्ति करना अर्थात् सर्वथा प्रकारसे जीवहिंसा निर्वर्त्तना जैसेकि मनसे १ वचनसे २ कायासे ३, करणेसे १ करानेसे २ अनुमोदनसे ३ क्योंकि यह अहिंसा व्रत प्राणी मात्रका हितैषी है और दया सर्व जीवोंको शान्ति देनेवाली है ॥ फिर दया तप और संयमका मूल है, सत्य और ऋजु भावको उत्पन्न करनेवाली है, दुर्गतिके दुःखोंसे जीवकी रक्षा करनेवाली है अपितु इतना ही नही किंतु कर्मरूपि रज जो है, उससे भी आत्माको विमुक्ति कर देती है, शत सहस्रों दुःखोंसे आत्माको यह दया विमोचन करती है, महर्षियों करके सेवित है, स्वर्ग और मोक्षके पथकी दया दर्शक है, ऋधि, सिद्धि, क्षान्ति, मुक्ति इनके दया देनेवाली है ॥ पुनः प्राणियोंको दया आधारभूत है जैसे क्षुधातुरको भोजनका आधार है, पिपासेको जलका, समुद्रमें पोतका, रोगीको औषधिका, भयभीतको शूरमेका आधार होता है । इसी प्रकार सर्व प्राणियोंको दयाका आधार है, फिर सर्व प्राणि अभयदानकी प्रार्थना करते रहते हैं, जो सुख है वे सर्व दयासे ही उपलब्ध होते हैं ॥

यथा—

मातेव सर्वभूतानां अहिंसा हितकारिणी ।
अहिंसैव हि संसारमरावमृतसारणिः ॥ १ ॥
अहिंसा दुःखदावाग्नि प्रावृषेण्य घनावली ।
भवभ्रमिरुगार्त्तानामहिंसा परमौषधी ॥ २ ॥
दीर्घमायुः पररूपमारोग्यं श्लाघनीयता ।
अहिंसा याः फलं सर्वं किमन्यत्कामदैवसा ॥ ३ ॥

भाषार्थः—सज्जनों ! अहिंसा माताके समान सर्व जीवोंसे हित करनेवाली है और अमृतके समान आत्माको तृप्ति देनेवाली है और जो संसारमें दुःखरूपि दावाग्नि प्रचंड हो रही है उसके उपशम करने वास्ते मेघमालाके समान है। फिर जो भव-भ्रमणरूपि महान् रोग है उसके लिये यह अहिंसा परमौषधी है तथा मित्रो ! जो दीर्घ आयु, नीरोग शरीर, यशका प्राप्त होना सौम्यभावका रहना अर्थात् जितने संसारी सुख हैं वे सर्व अहिंसाके ही द्वारा प्राप्त होते हैं। इस वास्ते सर्वज्ञ सर्वदर्शी अर्हन् भगवान्ने मुनियोंके लिये प्रथम व्रत अहिंसा ही वर्णन किया है, सो सर्व वृत्तिवाला जीव सर्वथा प्रकारसे हिंसाका परित्याग करे इसका नाम अहिंसा महाव्रत है ॥

(२) सव्वाउ मुसावायाउ वेरमणं ॥

सर्वथा प्रकारसे मृषावादसे निर्वृति करना जैसेकि आप असत्य भाषण न करे औरोंसे न करावे असत्य भाषण करता-ओंका अनुमोदन भी न करे, मन करके, वचन करके, काया करके, क्योंकि असत्य भाषण करनेसे विश्वासताका नाश हो जाता है और असत्य वचन जीवोंकी लघुता करनेवाला होता है, अधोगतिमें पहोंचा देता है, वैर विरोधके करनेवाला है तथा कौनसे कष्ट हैं जिसका असत्यवादीको सामना नही करना पड़ता ॥ इस लिये सत्य ही सेवन योग्य है। सत्यके ही महात्म्यसे सर्व विद्या सिद्ध हो जाती हैं ॥ तप नियम संयम व्रतोंका सत्य मूल हैं परमश्रेष्ठ पुरुषोंका धर्म है, सुगतिके पथका दर्शक है, लो-गमें उत्तम व्रत है॥ सत्यवादीको कोई भी पराभव नही कर सक्ता, यथार्थ अर्थोंका ही सत्यवादी प्रतिपादक होता है और सत्य आत्मामें प्रकाश करता है, परिणामोंके विषवादको हरण करने-वाला है और अनेक विकट कष्टोंसे जीवकों विमुक्त करके सुखके मार्गमें स्थापन करता है तथा देव सदृश शक्तियें खानेमें भी सत्यवादी समर्थ हो जाता है । और में सारभूत है । सर्व विद्या सत्यमें निवास करती

है और सत्यके द्वारा ही पदार्थोंका निर्णय ठीक हो जाता है। अपितु सत्य द्रव्य गुण पर्यायों करके युक्त होना चाहिये। पूर्वषट् द्रव्योंका स्वरूप वा सत्य असत्य नित्यानित्य स्यादस्ति नास्ति आदि पदार्थोंका स्वरूप लिखा गया है उनके अनुसार भाषण करे तो भाव सत्य होता है, अन्यत्र द्रव्य सत्य है, सो महात्मा भाव सत्य वा द्रव्य सत्य अर्थात् सर्वथा प्रकारे ही सत्य भाषण करे यही महात्माओंका द्वितीय महाव्रत है ॥

(३) सव्वाउ अदिन्नादाणाउ वेरमणं ॥

तृतीय महाव्रत चौर्य कर्मका तीन करणों तीन योगोंसे परित्याग करना है जैसेकि आप चोरी करे नही (विना दीए लेना), औरोंसे करावे नही, चौर्यकर्म करताओंका अनुमोदन भी न करे, मन करके वचन करके काया करके, क्योंकि इस महाव्रतके धारण करनेवालोंको सदैव काल शान्ति, तृष्णाका निरोध, संतोष, आत्मज्ञान निरास्रव पदार्थों गतिकी इन पदार्थोंका भलिभान्तिसे बोध हो जाता है। और जो चौर्य कर्म करनेवालोंकी दशा होती है जैसेकि अंगोका छेदन वध दोर्भाग्य दीनदशा निर्लज्जता असंतोष परवस्तुओंको देखकर मनमें कलुषित भावोंका होना दोनों लोगोंमें दुःखोंका भोगना अविश्वासपात्र बनना

सज्जनों करके धिक्कारपात्र होना अनंत कर्मोंकी प्रकृतिओंको एकत्र करना संसारचक्रमें परिभ्रमण करना कारागृहोंमें विहार अनेक दुर्वचनोंका सहन करना शस्त्रोंके सन्मुख होना इत्यादि कष्टोंसे जीव विमुक्त होते हैं जो तृतीय महाव्रतको धारण करते हैं, क्योंकि योगशास्त्रमें लिखा है कि–

वरं वन्हिशिखा पीता सर्पास्यं चुम्बितं वरम् ।
वरं हालाहलं लीढं परस्य हरणं न तु ॥ १ ॥

अर्थात् अग्निकी शिखाका पान करना, सर्पके मुखका स्पर्श, पुनः विषका भक्षण सुंदर है किन्तु परद्रव्यको हरण करना सुंदर नहीं है क्योंकि इन क्रियाओंसे एकवार ही मृत्यु होती है अपितु चौर्यकर्म अनंतकाल पर्यन्त जीवको दुःखी करता है, इस लिये सर्व दुःखोंसे छुटनेके लिये मुनि तृतीय महाव्रत धारण करे ॥

(४) सव्वाउ मेहुणाउ वेरमणं ॥

सर्वथा मैथुनका परित्याग करे तीन करणों तीन ही योगोंसे, क्योंकि यह मैथुन कर्म तप संयम ब्रह्मचर्य इनको विघ्न करनेवाला है, चारित्ररूपी ग्रहको भेदन करनेवाला है, प्रमादोंका [illegible] है, बालपुरुषोंको आनंदित करनेवाला है, सज्जनों करके [illegible]गनीय है और शीघ्र ही जराके देनेवाला है, क्योंकि का-

मीको वृद्ध अवस्था भी शीघ्र ही घेर लेती है; मृत्युका मूल है कामी जन शीघ्र ही मृत्युके मुखमें प्राप्त हो जाते हैं तथा कामियोंकी संतति भी (संतान) शीघ्र ही नाश हो जाती है, क्योंकि जिनके मातापिता ब्रह्मचर्यसे पतित हुए गर्भाधान संस्कारमें प्रवृत्त होते है वे अपने पुत्रोंके प्रायः जन्म संसारके साथ ही मृत्यु संस्कार भी कर देते हैं तथा यदि मृत्यु संस्कार न हुआ तो वे पुत्र शक्तिहीन दौर्भाग्य मुख कान्तिहीन आलस्य करके युक्त दुष्ट कर्मोंमें विशेष करके प्रवृत्तमान होते हैं। यह सर्व मैथुनकर्मके ही महात्म्य है तथा इस कर्मके द्वारा विशेष रोगोंकी प्राप्ति होती है जैसेकि राजयक्ष्मादि रोग हैं वे अतीव विषयसे ही प्रादुर्भुत होते हैं और कास श्वास ज्वर नेत्रपीडा कर्णपीडा हृदयशूल निर्बलता अजीर्णता इत्यादि रोगों द्वारा इस परम पवित्र शरीर विषयी लोग नाश कर बैठते हैं। कइयोंको तो इसकी कृपासे अंग छेदनादि कर्म भी करने पड़ते हैं। पुनः यह कर्म लोग निंदनीय वध बंधका मूल है परम अधर्म है चित्तको भ्रममें करनेवाला है दर्शन चारित्ररूपि घरको ताला लगानेवाला है वैरके करनेवाला है अपमानके देनेवाला है दुर्नामके स्थापन करनेवाला है। अपितु इस कामरूपि जलसे आजपर्यन्त इन्द्र, देव, चक्रवर्ती वासु-

देव राजे महाराजे शेठ सेनापति जिनको पूर्ण सामान मिले हुए थे वे भी तृप्तिको प्राप्त न हूए और उन्होंने इसके वशमें होकर अनेक कष्टोंको भोगन सहन किया । कतिपय जनोंने तो इसके वश होकर प्राण भी दे दिये । हा कैसा यह कर्म दुःखदायक है और शोकका स्थान है क्योंकि विषयीके चित्तमें सदा ही शोकका निवास रहता है, इसलिये इन कष्टोंसे विमुक्त होनेका मार्ग एक ब्रह्मचर्य ही है । ब्रह्मचर्यसे ही उत्तम तप नियम ज्ञान दर्शन चारित्र समस्त विनयादि पदार्थों प्राप्त होते हैं । और यमनियमकी वृद्धि करनेवाला है, साधुजनों करके आसेवित है, मुक्तिमार्गके पथको विशुद्ध करनेहारा है और मोक्षके अक्षय सुखोंका दाता है, शरीरकी कांति सौम्यता प्रगट करनेवाला है, यतियों करके सुरक्षित है, महापुरिसों करके आचरित है, भव्य जनोंके अनुमत है, शान्तिके देनेवाला है, पंचमहाव्रतोंका मूल है, समित गुप्तियोंका रक्षक है, संयमरूपि घरके कपाट तुल्य है, मुक्तिके सोपान है, दुर्गतिके मार्गको निरोध करनेवाला है, लोगमें उत्तम व्रत है, जैसे तड़ागकी रक्षा करनेवाली वा तड़ागको सुशोभित करनेवाली सोपान होती है, इसी प्रकार संयमकी रक्षा करनेवाला ब्रह्मचर्य है तथा जैसे शकटके चक्रकी तूंबी होती है, महानगरकी रक्षाके लिये

कपाट होते हैं तथावत् ब्रह्मचर्य आत्मज्ञानकी रक्षा करने-वाला है। अपितु जिस प्रकार शिरके छेदन हो जानेपर कटि भूजादि अवयव कार्यसाधक नही हो सक्ते इसी प्रकार ब्रह्मचर्यके भग्न होनेपर और व्रत भी भग्न हो जाते हैं। फिर ब्रह्मचर्य सर्व गुणोंको उत्पादन करता है। अन्य व्रतोंको इसी प्रकारसे सुशोभित करता है जैसे तारोंको चन्द्र आभूषणोंको मुकुट वस्त्रोंको कपासका वस्त्र पुष्पोंको अरविंद पुष्प वृक्षोको चं-दन सभाओंको स्वधर्मीसभा दानोंको अभयदान ज्ञानोंको केव-ल ज्ञान मुनियोंको तीर्थंकर वनोंको नंदनवन। जैसे यह वस्तुयें अन्य वस्तुयोंको सुशोभित करती हैं इसी प्रकार अन्य नियमोंको ब्रह्मचर्य भी सुशोभित करता है क्योंकि एक ब्रह्मचर्यके पूर्ण आसेवन करनेसे अन्य नियम भी सुखपूर्वक सेवन किए जा सक्ते हैं। फिर जिसने इसको धारण किया वे ही ब्राह्मण है मुनि है ऋषि है साधु है भिक्षु है और इसीके द्वारा सर्व प्रकारकी सु-खोंकी प्राप्ति है॥

यथा—

प्राणभूतं चरित्रस्य परब्रह्मैक कारणम्॥
समाचरन् ब्रह्मचर्यं पूजितैरपि पूज्यते॥ १॥

वृत्ति–प्राणभूतं जीवितभूतं चरित्रस्य देशचारित्रस्य सर्व-चारित्रस्य च परब्रह्मणो मोक्षस्य एकमद्वितीयं कारणं समाचरन् पालयन् ब्रह्मचर्यं जितेन्द्रियस्योपस्थनिरोधलक्षणं पूजितैरपि सुरासुरमनुजेन्द्रैः न केवलमन्यैःपूज्यते मनोवाक्कायोपचारपूजाभिः॥

भावार्थः–यह ब्रह्मचर्य व्रत चारित्रका जीवितभूत है, मोक्ष-का कारण है, जितेन्द्रियता इसका लक्षण है, देवों करके पूज्यनीय है ॥

चिरायुषः सुसंस्थाना दृढं संहनना नरा ॥
तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः ॥ २ ॥

वृत्ति–चिरायुषो दीर्घायुषोऽनुत्तरसुरादिषूत्पादात् शोभनं संस्थानं समचतुरस्रलक्षणं येषां ते सुसंस्थानाः अनुत्तरसुरादि-षूत्पादादेव दृढं बलवत् संहनमस्थिसंचयरूपं वज्रऋषभनाराचा-ख्यं येषां ते दृढसंहननाः एतच्च मनुजभवेषूत्पद्यमानानां देवेषु संहननाभावात् तेजः शरीरकान्तिः प्रभावो वा विद्यते येषां ते तेजस्विनः महावीर्या बलवत्तमाः तीर्थंकरचक्रवर्त्यादित्वेनोत्पादात् भवेयुर्जायेरन ब्रह्मचर्यतो ब्रह्मचर्यानुभावात् ॥

भावार्थः—दीर्घआयु सुसंस्थान दृढ संहनन (पूर्ण शक्ति) रीरकी कान्ति महा पराक्रम यह सर्व ब्रह्मचर्यके धारण से ही

होते हैं, तथा जो इस पवित्र ब्रह्मचर्य रत्नको प्रीतिपूर्वक आ सेवन नही करते हैं तथा इससे पराङ्मुख रहते हैं, उनकी नि प्रकारसे गति होती है ॥

यथा—

कम्पः स्वेदः श्रमो मूर्च्छा, भ्रमिर्ग्लानिर्बलक्षयः ॥
राजयक्ष्मादि रोगाश्च, भवेयुर्मैथुनोत्थिताः ॥ १ ॥

अर्थः—कम्प स्वेद (पसीना) थकावट मूर्च्छा भ्र ग्लानि बलका क्षय राजयक्ष्मादि रोग यह सर्व मैथुनी पुरुषोंको ही उत्पन्न होते हैं, इस लिये सत्य विद्याके ग्रहण करनेके लिये आत्मतत्त्वको प्रगट करनेके वास्ते और समाधिकी इच्छा रखता हुआ इस ब्रह्मचर्य महाव्रतको धारण करे यही मुनियोंका चतुर्थ महाव्रत है, और सर्व प्रकारके सुख देनेवाला है ॥

सव्वाउ परिग्गहाउ वेरमणं ॥

सर्वथा प्रकारसे परिग्रहसे निवृत्ति करना तीन करणों तीन योगोंसे वही पंचम महाव्रत है, क्योंकि इस परिग्रहके ही प्रतापसे आत्मा सदैवकाल दुःखित शोकाकुल रहता है, और संसारचक्रमें नाना प्रकारकी पीड़ाओंको प्राप्त होता है। पुनः

इसके वशवर्तियोंको किसी प्रकारकी भी शान्ति नही रहती अपितु क्लेशभाव, वैरभाव, ईर्ष्या, मत्सरता इत्यादि अवगुण धनसे ही उत्पन्न होते हैं और चित्तको दाह उत्पन्न करता है। प्रत्युतः कोई २ तो इसके वियोगसे मृत्युके मुखमें जा वैठते हैं और असह्य दुःखोंको सहन करते हैं और जितने सम्बन्धि हैं वे भी इसके वियोगसे पराङ्मुख हो जाते हैं, और इसके ही महात्म्यसे मित्रोंसे शत्रुरूप वन जाते हैं, तथा जितने पापकर्म हैं वे भी इस धनके एकत्र करनेके लिये किये जा रहे हैं। धनसे पतित हुए प्राणि दुष्टकर्मोंमें जा लगते हैं। फिर यह परिग्रह रागद्वेषके करनेवाला है, क्रोध मान माया लोभकी तो यह वृद्धि करता ही रहता है, धर्मसे भी जीवोंको पाराङ्मुख रखता है। और धनके लालचियोंके मनमें दयाका भी प्रायः अभाव रहता है, क्योंकि न्याय वा अन्याय धनके संचय करनेवाले नही देखते हैं, वह तो केवल धनका ही संचय करना जानते हैं, और इसके लिये अनेक कष्टोंको सहन करते हैं। किन्तु इस धनकी यह गति है कि यह किसीके भी पास स्थिर नही रहता। चोर इसको लूट ले जाते हैं, राजे लोग छीन लेते हैं, अग्नि और जलके द्वारा भी इसका नाश हो जाता है, सम्बन्धि वांट लेते हैं तथा व्यापारादि क्रियायोंमें भी विना इच्छा

इसकी हानी हो जाती है अर्थात् लाभकी इच्छा करता हुआ व्यय हो जाता है, और इसके वास्ते दीन वचन बोलते हैं, नीचोंकी सेवा की जाती है अर्थात् ऐसा कौनसा दुःख है जो परिग्रहकी आशावान्को नहीं प्राप्त होता ? चित्तके संक्लेष मनकी पीड़ाओंको भी येही उत्पन्न करता है, इसलिये सूत्रोंमें लिखा है कि (मुच्छा परिग्गहो वुतो) मूर्च्छाका नाम ही परिग्रह है। सो मुनि किसी भी पदार्थ पर ममत्व भाव न करे और शुद्ध भावोंके साथ पंचम महाव्रतको धारण करे, और अपरिग्रह होकर पापोंसे मुक्त होवे, मणि मोती आदि पदार्थोंको वा तृणादिको सम ज्ञात करे और मान अपमानको भी सम्यक् प्रकारसे सहन करे, सर्व जीवोंमें समभाव रक्खे, अपितु सर्व जीवोंका हितैषी होता हुआ संसारसे विमुक्त होवे। और अष्ट प्रकारके कर्मोंके क्षय करनेमें कुशल जिसके मन वचन काया गुप्त है, सुख दुःखमें हर्ष विषवाद रहित है, क्षान्ति करके युक्त है, वा दान्त है, जिसको शंखकी नांइ राग द्वेष रूपि रंग अपना फल प्रगट नहीं कर सक्ता, जिसके चन्द्रवत् सौम्य भाव है और दर्पणवत् हृदय पवित्र है, और शून्य स्थानोंमें जिसका निवास है, इत्यादि गुणयुक्त ही मुनि इस व्रतको धारण कर सक्ते हैं ॥

और षष्टम रात्रीभोजन त्यागरूप व्रत है, यथा—

सव्वाउ राउभोयणाउ वेरमणं ।।

सर्वथा रात्रीभोजनका त्यागरूप षष्टम व्रत है जैसेकि अन्न १ पाणी २ खाद्यम[1] ३ स्वाद्यम[2] ४ यह चार ही प्रकारका आहार तीनों करणों और तीनों योगोंसे परिहार करे, क्योंकि रात्रीभोजनमें अनेक दोष दृष्टिगोचर होते हैं। जीवोंकी रक्षा वा किसी कारणसे जूं आदि यदि आहारमें भक्षण हो जाये तो जलोदरादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। फिर जिस दिनसे रात्रीभोजन त्यागरूप व्रत ग्रहण किया जाता है, उसी दिनसे शेष आयुमेंसे अर्द्ध आयु तपमें ही लग जाती है तथा रात्रीभोजनके त्यागियोंको रोगादि दुःख भी विशेष पराभव नहीं करसक्ते क्योंकि रात्रीमें दिनका किया हुआ भोजन सुखपूर्वक परिणत हो जाता है और रात्रीको विशेष आलस्य भी उत्पन्न नही होता। जीवोंकी रक्षा, आत्माको शान्ति, ज्ञान ध्यानकी वृद्धि इत्यादि अनेक लाभ रात्रीभोजनके त्यागियोंको प्राप्त होते हैं, इस लिये यह व्रत भी अवश्य ही आदरणीय है। इसका ही नाम षष्टम व्रत है, सो

१ खानेवाले पदार्थ जैसे मिष्टान्नादि।

२ आस्वादनेवाले पदार्थ जैसे चूर्णादि।

मुनि *पांच महाव्रत षष्ठम रात्रीभोजनरूप व्रतको धारण करे ॥
अपितु भावनाओं द्वारा भी महाव्रतोंको शुद्ध करता रहे क्योंकि प्रत्येक २ महाव्रतकी पांच २ भावनायें हैं। भावना उसे कहते हैं जिनके द्वारा पांच महाव्रत सुखपूर्वक निर्वाह होते हैं, कोई भी विघ्न उपस्थित नही होता, सदैव काल ही चित्तके भाव व्रतोंके पालनेमें लगे रहते हैं ॥ सो भावनाओंका स्वरूप निम्न प्रकारसे है ॥

प्रथम महाव्रतकी पंच भावनायें ॥

प्रथम भावना—महाव्रतके धारक मुनि जीवरक्षाके वास्ते विना यत्न ऊठ बैठ गमणागमण कदापि न करें और नाहि किसी आत्माकी निंदा करें क्योंकि निंदादि करनेसे उन आत्माओंको पीड़ा होती है, पीड़ा होनेसे महाव्रतका शुद्ध रहना कठिन हो जाता है ॥

द्वितीय भावना—मनको वशमें रखना और हिंसादि युक्त मन कदापि भी धारण न करना अर्थात् मनके द्वारा किसीकी

---

* पाच महाव्रतोंका षष्ठम रात्रीभोजन त्यागरूप व्रतका स्वरूप श्री दशवैकालिक सूत्र, श्री आचाराग सूत्र, श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र इत्यादि सूत्रोंसे जान लेना ॥

भी हानि न चिंतवन करना क्योंकि मनका शुभ धारण करना ही महाव्रतोंकी रक्षा है ॥

तृतीय भावना–वचनको भी वशमें करना । जो कटुक, दुःखप्रद वचन है उसका न उच्चारण करना, सदा हितोपदेशी रहना ॥

चतुर्थ भावना–निर्दोष ४२ दोषरहित अन्न पाणी सेवन करना, अपितु निर्दोषोपरि भी मूर्च्छित न होना, गुरुकी आज्ञानुसार भोजनादि क्रियायोंमें प्रवृत्ति रखना ॥

पंचम भावना–पीठफलक, संस्तारक, शय्या, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण, चोल, पट्टक (कटिबंधन), मुहपत्ति, आसनादि जो उपकरण संयमके निर्वाह अर्थे धारण किया हुआ है उस उपकरणको नित्यम् प्रति प्रतिलेखन करता रहे और प्रमादसे रहित हो कर प्रमार्जन करे, उक्त उपकरणोंको यत्नसे ही रक्खे, यत्नसे ही धारण करे, यत्नपूर्वक सर्व कार्य करे, सो यही पंचमी भावना है । प्रथम महाव्रतको पंचभावनायों करके पवित्र करता रहे क्योंकि इनके ग्रहणसे जीव अनास्रवी हो जाता है, और यह भावना सर्व जीवोंको शिक्षाप्रद हैं ॥

द्वितीय महाव्रतकी पंच भावनायें ॥

प्रथम भावना—सत्य व्रतकी रक्षा वास्ते शीघ्र, वा कटुक,

सावद्य, कुतुहलयुक्त वचन कदापि भी भाषण न करे क्योंकि इन वचनोंके भाषण करनेसे सत्य व्रतका रहना कठिन हो जाता है और यह नाहीं वचनव्रतियोंको भाषण करनेयोग्य है ॥

द्वितीय भावना—क्रोधयुक्त वचन भी न भाषण करे क्योंकि क्रोधसे वैर, वैरसे पैशुनता, पैशुनतासे क्लेष, क्लेषसे सत्य शील विनय सबका ही नाश हो जाता है, क्योंकि क्रोधरूपि अग्नि किस पदार्थको भस्म नही करता अर्थात् क्रोधरूपि अग्नि सर्व सत्यादिका नाश कर देता है ॥

तृतीय भावना—सत्यवादी लोभका भी परिहार करे क्योंकि लोभके वशीभूत होता हुआ जीव असत्यवादी वन जाता है, तो फिर व्रतोंकी रक्षा कैसे हो ? इस लिये लोभको भी त्यागे ॥

चतुर्थ भावना—भयका भी परित्याग करे क्योंकि भय-युक्त जीव संयमको भी त्याग देता है, सत्य और शीलसे भी मुक्त हो जाता है, अपितु भययुक्त आत्माके भाव कभी भी स्थिर नही रहते ॥

पंचम भावना—सत्यवादी हास्यका भी परित्याग करे । हास्यसे ही विरोध, क्लेष, संग्राम, नाना प्रकारके कष्ट उत्पन्न